महानगरीय संस्कृति के आईने में झुम्पा लाहिड़ी की कोलकाता केंद्रित कहानियाँ हिन्दी अनुवाद एवं सांस्कृतिक विमर्श

एम0 फिल0 (हिन्दी अनुवाद) उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध

शोध--निर्देशक
डॉ. रणजीत कुमार साहा

शोधार्थी
सूरज कुमार

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067

2007

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
Centre of Indian Languages
School of Language, Literature, & Culture Studies
NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 30/07/2007

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation entitle "**MAHANAGARIYA SANSKRITI KE AAINE MEIN JHUMPA LAHIRI KI KOLKATA KENDRIT KAHANIYAN HINDI ANUVAD AVAM SANSKRITIK VIMARSH**" by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

SURAJ KUMAR
(Research scholar)

Dr. RANJIT SAHA
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

VIR BHARAT TALWAR
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

अपने परिवार को समर्पित...

अनुक्रम

	पृष्ठ सं.
भूमिका	I - III
अध्याय : एक झुम्पा लाहिड़ी : एक परिचय	1 – 4
अध्याय : दो तीसरा और अंतिम महादेश	5 – 31
अध्याय : तीन मिसेज़ सेन की कहानी	32 – 59
अध्याय : चार असली दरबान	60 – 75
अध्यायः पाँच सेक्सी	76 – 106
अध्याय : छह महानगरीय संस्कृति के आईने में झुम्पा लाहिड़ी की कोलकाता केन्द्रित कहानियाँ - सांस्कृतिक विमर्श	107 – 124
संदर्भ सूची	125 – 127
परिशिष्ट : मूल पाठ (A Real Durwan, Sexy, Mrs. Sen's & The Third and Final Continent)	

भूमिका

I reorganise my living room
asking each piece
where it would like to placed
I give a new spot to the Sofa and the lamp,
Change the drapes, and
Replace the old rug with a wall-to-wall carpet
When everything is just right
I begin to wonder:
where among these
Should I place myself?

Panna Naik, 'The Living Room'
Journal of south Asian Literature,
Vol.21, No.1, Winter, Spring, 1986

अपने अस्तित्व का प्रश्न आदमजात के लिए सबसे बड़ा होता है। वह इस जीती–जागती दूनिया में अपनी जगह बनाने की ज़द्दोजहद में लगा रहता है। इस ज़द्दोहदत में वह कभी अपने गाँव, शहर, राज्य और देश की सीमा लाँध कर अनजाने ठिकाने की ओर भी रूख कर लेता है।

लेकिन कुछ पाने की इस कोशिश में बहुत सारी चीज़े छूट जाती हैं जो उसे कचोटती हैं। यह कचोट नयी दुनिया में बहुत ही अजीब लगती है। इसी कचोट के साथ वहाँ के नये मूल्यों को आत्मसात करना होता है। आत्मसातीकरण की यह प्रक्रिया बहुत जटिल होती है क्योंकि पुरानी आदतें आप पर हावी होती हैं। स्पष्ट है कि विस्थापन की कहानी लिखना और उसका अनुवाद भी एक जटिल काम है और साथ

ही रुचिकर भी। यही कारण है कि मैंने एम.फ़िल के लघु शोध प्रबंध के विषय के रूप में झुम्पा लाहिड़ी और उनकी कहानियों को चुना।

सबसे पहले कहानियों के चुनाव का प्रश्न था चूँकि लघु शोध-प्रबंध के नाते आकार का ध्यान रखना था। इसलिए मैंने अपने निदेशक डॉ. रणजीत साहा के सलाह से ऐसी चार कहानियों का चुनाव किया, जिनमें कोलकाता प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में मौजूद था साथ ही परिस्थितियाँ एक दूसरे से थोड़ी हट कर थीं। 'असली दरवान' शीर्षक कहानी की पृष्ठभूमि कलकत्ते की है जहाँ सीढ़ियों को बुहारने वाली 'बूढ़ी माँ' मुख्य पात्रा है। वह पूर्वी बंगाल से विस्थापित है और बातें बनाकर और अपने काम से अपने को स्थापित करने के लिए प्रयासरत होती है, लेकिन हो नहीं पाती। 'मिसेज सेन की कहानी' कुछ अलग नहीं है। वह एक प्रोफेसर की पत्नी है। लेकिन नए माहौल में अपने आप को ढाल पाने में वह पुरी तरह नाकामयाब रहती है। मिसेज़ सेन के लिए वहाँ भी 'घर' का मतलब उनका 'अपार्टमेंट' नहीं होता बल्कि सुदूर स्थित बंगाल का ही 'घर' होता है।

'तीसरा और अंतिम महादेश' कथा के मुख्य पात्र के कलकत्ता से लंदन फिर यु.एस.ए. तक के सफ़र की कथा है। अपने हर पड़ाव में वह अपने आप को परिस्थिति के अनुसार ढाल लेता है। यही कारण है कि उसकी दूसरी पीढ़ी पूरे आत्मविश्वास के साथ अपने परिवेश की चुनौतियों से दो-दो हाथ करने को तैयार है।

'सेक्सी' एक मार्मिक कहानी है जिसकी मुख्य पात्रा मिरांडा का दृष्टिकोण अपने बचपन और युवावस्था के अलग–अलग अनुभव से गुज़रते हुए बदलता है। हालाँकि कहानी मुख्य तौर पर स्त्री–पुरुष के देहाकर्षण एवं संबंधित भावनात्मक जटिलताओं पर आधारित है पर बचपन में दीक्षित परिवार का अनुभव और युवावस्था में देव के साथ उसका संपर्क भारतीयों के प्रति उसे रवैया बदलने पर मजबूर करता है।

यह देरिदा का चर्चित कथन है कि अनुवाद उतना ही आवश्यक है जितना कि असंभव। भाषिक और सांस्कृतिक अनन्यता के कारण यह बात ठीक भी जान पड़ती है। उपयुक्त शब्द और मुहावरों का सही चुनाव, लक्ष्य भाषा में सामान्यतया प्रयुक्त होने वाले भाव जिन्हें लक्ष्य भाषा के अधिकांश पाठकों तक संप्रेषित होना है और उपयुक्त समरूप विशेषण, शीर्षक ढूँढ़ना निश्चित रूप से मेरे लिए चुनौती भरा काम रहा चूँकि इन कहानियों में कई संवाद और सांस्कृतिक उपादान बांग्ला

भाषा–भाषी के हैं। इसलिए बांग्ला भाषा के लहज़े और उसमें निहित संगीत को लक्ष्य भाषा (हिन्दी) में यथावत सुरक्षित रख पाना न तो अंग्रेजी (मूल) के लिए संभव था और न ही मेरे अनुवाद में। इसी तरह कहानी में कई अमेरिकन चीजों के नाम जिनका हिन्दी में कोई पर्याय नहीं है अनुवाद के क्रम में उसी तरह प्रयोग में लाया गया है।

अनुवाद एवं विश्लेषण के क्रम में मुझे अपने आदरणीय निदेशक डा. रणजीत साहा का निरंतर सहयोग मिला। उन्होंने मेरा पथ–प्रदर्शन किया, ख़ूबियों के लिए सराहा और ग़लतियों के लिए मीठी झिड़की भी देते रहे लेकिन निरुत्साहित कभी नहीं किया। यह कहना तनिक भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि उनमें एक आदर्श निदेशक के आवश्यक गुण भरे हैं। उनके निर्देशन के लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

निशांत, पशुपति और प्रणव जी ने प्रूफरीडिंग में सहायता की। आलोक जी ने प्रूफ रीडिंग के साथ–साथ गुणात्मक संशोधन मे भी सहयोग किया। सुधा, संचिता और हर्षिता के निरंतर सहयोग एवं सुझाव ने मुझे निरंतर चलायमान रखा। इन सबको मेरा आभार।

सूरज कुमार

भारतीय भाषा केन्द्र

ज.ने.वि.,

नई दिल्ली–110067

30.07.2007

अध्याय : एक

झुम्पा लाहिड़ी : एक परिचय

झुम्पा लाहिड़ी: एक परिचय

प्रवासी लेखकों में झुम्पा लाहिड़ी आज एक हस्ताक्षर हैं। अब तक कुल दो साहित्यिक कृतियाँ हीं उनके खाते में हैं लेकिन दोनों ही कृतियों की लोकप्रियता उनकी श्रेष्ठता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। झुम्पा का लेखन एक अलग दृष्टिकोण को दर्शाता है जो उन्हें अन्य प्रवासी लेखकों से अलग करता है। यह प्रवासियों की दूसरी या तीसरी पीढ़ी का दृष्टिकोण है पहली का नहीं–

"....The experience of the second generation or third generation migrant is very different from that of the first generation migrant: home becomes unreal to them, just a space of imagination rather than of nostalgic recollection".[1]

इस दृष्टिकोण को समझने के लिए संक्षेप में झुम्पा के लेखन की पृष्ठभूमि समझ लेना अनिवार्य होगा। भारतीय माता–पिता की संतान झुम्पा लाहिड़ी का जन्म 1967 में लंदन में हुआ। उनके जन्म के बाद उनका उसका परिवार युनाइटेड स्टेट्स आ गया जहाँ रोड्स आइलैंड और न्यूयॉर्क में वह पली–बढ़ी। उनके पिता पुस्तकाध्यक्ष थे और माँ शिक्षिका। वह अपने परिवार के साथ कलकत्ते आती–जाती रहती थी। इसी क्रम में उन्हें चीजों को देखने की एक दृष्टि मिली। एक साक्षात्कार में यह पूछने पर कि उनकी कुछ कहानियों की पृष्ठभूमि भारत की है और कुछ यू.एस.ए. की, ऐसा क्यों? इसका जवाब देते हुए वे कहती हैं:

" When I began writing fiction seriously, my first attempt, for some reason, were always set in Calcutta, which is a city I know quite well from repeated visits with my family. These trips to a vast, unruly, fascinating city so different from the small New England town where I was raised shaped my perceptions of world and of people from a very early age. I learned that there was a another side, a vastly different version to everything. I learned to observe things as an outsider and yet I also knew that as different as Calcutta is from Rhode Island, I belonged there in some fundamental ways, in the way I didn't seem to belong in USA. As I gained a bit more confidence, I

began to set stories in the US and wrote about situation close to my own experience".[2]

इसी अवलोकन और अभिव्यक्ति का साकार रूप 'इंटरप्रेटर ऑफ मैलॅडीज़' के रूप में आया। वर्ष 2000 में इस कृति को पुलित्ज़र अवार्ड मिला। इस संकलन की तीन कहानियाँ पूर्व में ही 'न्यूयॉर्कर' में छप चुकी थीं। जिसमें झुम्पा को चालीस वर्ष से कम उम्र के श्रेष्ठ बीस लेखकों को जगह दी गयी थी। इसके अलावे इस कृति को हेनफील्ड फाउंडेशन द्वारा 'ट्रास–एटलांटिक रिव्यू अवार्ड, लुईसविलारिव्यू का श्रेष्ठ गल्प पुरस्कार, ओ हेनरी अवार्ड' और'द बेस्ट अमेरिकन शार्ट स्टोरीज़' पुरस्कार भी मिले हैं। उक्त कहानी संकलन का अब तक तैंतीस भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

झुम्पा लाहिड़ी ने 'रिनेसां स्टडीज़' में पी.एच.डी. किया है। वे कुछ समय के लिए प्रोविन्सटाउन, मेसाच्यूसेट्स के फ़ाईन आर्ट्स सेंटर की फ़ेलौ भी रहीं। यहाँ उन्हें लगा कि उनकी मंजिल लेखन है न कि अकादमी। तब से उन्होंने लेखन को गंभीरता से लिया।

'इंटरप्रेटर ऑफ मैलॅडीज' नौ लघु कहानियों का संकलन है जिसकी तीन कहानियाँ भारतीय पृष्ठभूमि पर एवं शेष छह अमेरिकी पृष्ठभूमि पर आधारित है। इस संकलन के मूल में विस्थापन और उसका दर्द है– "Emotional pain and nostalgia form the basic ingredient of Interprter of Maladies".[3] इस संकलन का शीर्षक उन्हें कैसे सूझा उसके बारे में झुम्पा खुद बताती है:

" In 1991, I met a student who working at a doctors office, interpreting for a doctor who had a number of Russian patients who has difficulty explaining their ailments in English.........., I thought continueously about what a unique position it was, and by the time I reached my home, the phrase 'Interpreter of maladies' was planted in my head. I told myself, one day I will write a story with that title. About five years passed. Then one day I jostled down a para containing the base bones of Interpreter in my notebook".[4]

इससंकलन के मूल कथ्य की ओर संकेत करते हुए झुम्पा कहती हैं: "I knew from the beginning that this had to be the title story, because it best expresses, thematically, the predicament at the heart of the book-the dilemma, the difficulty and often the impossibility of communicating emotional pain and affliction to others. as well as expressing it to ourselves. In some senses I view my position as a writer, insofar as I attempt to articulate these emotions, as a sort of interpreter as well.[5]
झुम्पा की दूसरी साहित्यिक कृति एक उपन्यास है – द नेमसेक। यह उपन्यास विदेश में रह रहे गांगुली परिवार के तीन दशकों के जीवन संघर्ष को दिखाता है। गांगुली दम्पति अवश्य ही भारत से हैं लेकिन बाद में अमेरिका में बस गए हैं। तीस साल तक वहाँ रहने पर भी उसके लिए उनका घर भारत ही है। उनके बच्चों का.जन्म अमेरिका में होता है। उनका बेटा गोगोल जैसे–जैसे बड़ा होता है उसके सामने अपनी पहचान का संकट पैदा होता है। उसे परेशानी इसलिए होती है कि उसके ऊपर दोहरी ज़िंदगी और मूल्यों का दबाव थोप दिया जाता है। वह जन्म से अमेरिकी है लेकिन ख़ून से भारतीय। यह तनाव हर उस दूसरी या तीसरी पीढ़ी के प्रवासी भारतीयों की है जिनसे उन्हें जूझना पड़ता है। दूसरी तरफ़ पहली पीढ़ी बालों को यह लगता है कि उनकी सांस्कृतिक विरासत खतरे में हैं क्योंकि उनकी अगली पीढ़ी इनकी ख़ास परवाह नहीं करती।

द नेम सेक उपन्यास पर आधारित मीरा नायर निर्देशित इसी शीर्ष से एक फ़िल्म भी बनी थी कि सिनेमा जगत में विशेष चर्चा हो रही है।

आशा है आगे भी हमें झुम्पा लाहिड़ी से इस तरह अपने पाठकों एवं आलोचकों को सोचने पर विवश करने वाली गंभीर रचनाएँ मिलती रहेंगी और वे अपनी रचनात्मक निरंतरतता बताए रखेंगी।

[1] That third space: Interrogating the Diaspora Paradigm - page 53.

[2] www.rigrin.treeservers.com

[3] Interpreter of Maladies by Jhumpa Lahiri South Asian Literature in English An Encyclopaedia Green wood Press, p.167

[4] www.rigrin.treeservers.com

[5] Ibid.

अध्याय : दो

तीसरा और अंतिम महादेश

तीसरा और अंतिम महादेश

1964 में, जब मैंने भारत छोड़ा, तब मेरे पास कॉमर्स की डिग्री थी। उन दिनों मेरे पास कुल दस डॉलर थे। तीन सप्ताह तक एक इटालियन मालवाहक जहाज़, एस. एस. रोमा के तीसरे दर्जे में (जो जहाज़ के इंजन के बिल्कुल पास था) सफर करता हुआ मैं इंग्लैंड पहुँचा था। वहाँ मैं उत्तरी लंदन के फिन्सबरी पार्क के एक ऐसे घर में रहा, जो पूरी तरह से मेरे जैसे तंगहाल बंगाली युवकों से भरा था। कम-से-कम दर्जन भर लोग और कभी-कभी उससे भी ज़्यादा; सभी विदेश में पढ़ने एवं खुद को किसी लायक बनाने की जद्दोजहद में लगे।

मैं एल.एव.ई. में लेक्चर सुनता और गुज़ारे के लिए यूनिवर्सिटी की लाईब्रेरी में काम करता। एक कमरे में हम तीन या चार लोग रहते, जिनके लिए इकलौता और बेहद सर्द शौचालय था। हमें अंडे की करी पकाने के लिए अपनी बारी का इंतजार करना होता था, जिसे हम अख़बार से ढँकी मेज़ पर रखकर हाथों से ही खाया करते थे। अपने काम के अलावा हमारी कुछ दूसरी ज़िम्मेदारियाँ भी थीं। सप्ताहांत में हम या तो खाली पैर पायजामे में घूमते, चाय पीते, रॉथमन्स की कश लेते या लार्ड्स में क्रिकेट देखने चल पड़ते। कुछ सप्ताहांतों पर घर और भी कुछेक बंगालियों से भर जाता। ये वैसे बंगाली थे जो या तो हमें सब्ज़ी वाले की दुकान पर मिले थे या ट्यूब में। तब हम और ज्यादा अंडा करी बनाते, मुकेश के गाने बजाते और गंदे प्लेटों को नहाने वाले टब में डाल आते। अक्सर इस घर से कोई एक विदा होता, उस स्त्री के साथ रहने के लिए जिसे कलकत्ते में बसे उसके परिवार वालों ने उससे शादी करने के लिए पसंद किया होता था। 1969 में, जब मैं छत्तीस वर्ष का था, मेरी शादी तय हुई थी। ठीक उसी समय मुझे अमेरिका में पूर्णकालिक नौकरी का प्रस्ताव मिला, एम. आई.टी. के पुस्तकालय के संसाधन विभाग में। सपत्नीक निर्वाह के लिए वेतन कम भी नहीं था। साथ ही, मुझे एक विश्वविख्यात विश्वविद्यालय से नियुक्ति का सम्मान मिल रहा था। इसलिए मुझे छठी वरीयता वाला ग्रीनकार्ड मिला और मैं और अधिक दूर की यात्रा के लिए तैयार हो रहा था।

अब मेरे पास हवाई जहाज़ से सफ़र के लायक़ काफ़ी पैसे थे। मैंने पहली उड़ान कलकत्ते के लिए भरी, अपनी शादी के लिए और एक सप्ताह बाद बोस्टन के लिए, अपनी नई नौकरी की शुरूआत के लिए। उड़ान के दौरान मैंने 'स्टूडेंट गाइड टू नार्थ अमेरिका' पढ़ी, जो इसका पेपरबैक संस्करण था। इसे मैंने लंदन छोड़ने से पहले सात शिलिंग छह पेंस में टॉटनइम कोर्ट रोड से खरीदा था। गाइड बुक से मैंने जाना कि अमेरिकन सड़क के दाहिनी तरफ़ गाड़ी चलाते हैं, न कि बाईं तरफ। वे लिफ़्ट को 'इलेवेटर' और 'इंगेज़्ड' फ़ोन को 'बिजी' बताते हैं। गाइड बुक के अनुसार, "उत्तर अमेरिका में जीवन की गति ब्रिटेन से अलग है, इसका पता आपको जल्द ही लगेगा। यहाँ सभी को शिखर ही चाहिए, अंग्रेज़ियत वाली नफ़ासत यहाँ नहीं है।" विमान जैसे ही बोस्टन हवाई अड्डे पर उतरने लगा पायलट ने मौसम और समय के बारे में बताया और साथ ही यह भी बताया कि राष्ट्रपति निक्सन ने दो दिन की राष्ट्रीय छुट्टी की घोषणा की है– इसलिए कि अमेरिकी अंतरिक्ष यात्री चाँद पर उतरने में सफल हुए। सारे यात्री खुशी से झूम उठे। उनमें से एक चिल्लाया, "ईश्वर अमेरिका की रक्षा करे!" गलियारे के पार, मैंने देखा एक महिला प्रार्थना कर रही है।

मैंने अपनी पहली रात सेन्ट्रल स्क्वायर, कैम्ब्रिज़ के वाई.एम.सी.ए. में गुज़ारी। यह एक सस्ती जगह थी, जिसकी जानकारी मुझे अपने गाइडबुक से मिली थी। यहाँ से सबकुछ नज़दीक था; एम.आई.टी., पोस्ट ऑफिस और सुपर मार्केट 'प्यूरिटी सुप्रीम'। इस कमरे में एक खटिया और एक मेज थी। दीवार पर एक छोटा-सा लकड़ी का क्रॉस टँगा था। दरवाज़े के ऊपर टँगा संकेत बता रहा था कि यहाँ खाना बनाना सख़्त मना है। एक खुली खिड़की थी, जिससे मेसाचुसेट्स की सड़के दिखती थीं। उनसे होकर दोनों दिशाओं में गाड़ियाँ आती-जाती थीं। कार के तेज़ और लंबे हार्न एक-के-बाद-एक तेज़ आवाज़ में बजते थे। पूरी रात सायरन वाली गाड़ियाँ, बसों के काफ़िले गुज़रते थे। उनके दरवाज़ों के खुलने और बंद होने, उनके इंजन गड़गड़ाने का शोर लगातार आता रहता था। यह शोर लगातार परेशान करने वाला था, कभी-कभी इससे घुटन सी होती थी। इसे मैं अपने अंदर बड़ी गहराई तक महसूस करता था, जैसा मैंने एस.

एस. रोमा पर उस के इंजन के क्रुद्ध चीत्कार में महसूस किया था। लेकिन यहाँ जहाज का कोई डेक नहीं था, जिसपर मैं भाग जाता। यहाँ चमकीला समुद्र भी नहीं था, जिससे मेरा मन आह्लादित होता। यहाँ न तो मेरे चेहरे को छूने वाली ठंडी हवा थी और न ही कोई ऐसा था, जिससे मैं बात कर सकूँ। मैं इस तेज़ रफ़्तार से इतना थका था कि मुझे वाई.एम.सी.ए. के वीरान गलियारे में अपने ढीले धारीदार पायजामें में टहलने की भी इच्छा नहीं हो रही थी।

इसलिए मैं मेज पर बैठकर खिड़की से कैम्ब्रिज का सिटी हॉल और छोटी-छोटी दुकानों की क़तारें देखता रहा। सुबह डेवी पुस्तकालय में अपने काम पर हाज़िर हुआ जो मेमोरियल ड्राइव की मटमैली क़िलेनुमा इमारत थी। मैंने बैंक में अपना खाता खुलवाया, डाक घर में अपने नाम एक पी ओ बॉक्स किराये पर लिया, एक प्लास्टिक का प्याला और एक चम्मच उलवर्थ्स से लिया, जो उस स्टोर (दूकान) का नाम था, जिसे मैं लंदन से जानता था। मैं प्यूरिटी सुप्रीम गया, यहाँ-वहाँ गलियों में घूमता रहा, आउंस को ग्राम में बदलता, इंग्लैड के दामों और चीज़ों से तुलना करता हुआ। अंत में मैंने दूध का एक छोटा सा डब्बा और एक कार्नफ़्लैक्स का डब्बा लिया। अमेरिका में यह मेरा पहला खाना था। इसे मैंने अपनी मेज़ पर खाया। यह मुझे हॅमबर्गर या हॉट डॉग से अच्छा लगा। और यही एक विकल्प था, जिसे मैं मेसाच्यूसेट्स के कॉफ़ी शॉप पर ले सकता था। इसके अलावा अभी तक मेरे लिए कोई मांस खाना बाक़ी ही था। यहाँ तक कि दूध ख़रीदने-जैसा साधारण काम भी मेरे लिए नया था। लंदन में हर सुबह हमारे दरवाज़े पर दूध की बोतलें मिल जाती थीं।

कमोबेश एक सप्ताह में मैं व्यवस्थित हो चला था। मैं सुबह-शाम कॉर्नफ़्लैक्स और दूध लेता और बदलाव के लिए कुछ केले ले आता। इन्हें मैं चम्मच की किनारी से काटकर प्याले में डाल लेता। इसके अलावे मैंने टी बैग्स और फ़्लास्क भी ले ली थीं, जिसे बुलवर्थ्स का सेल्समैन थर्मस बता रहा था (उसने मुझे बताया, फ्लास्क ह्विस्की रखने के लिए होती है; जो मैंने कभी नहीं पी)। हर सुबह काम पर जाते समय कॉफी शॉप से एक प्याली चाय के बराबर दाम चुकाकर मैं अपने फ्लास्क में गरम पानी भर लेता और पूरे दिन उससे चार

प्याली चाय बंनाकर पीता। मैंने दूध का पहले से बड़ा डब्बा लिया और ख़ाली होने पर इसे खिड़की के दहलीज के छायादार हिस्से के नीचे छोड़ देता-यह मैंने वाई.एम.सी.ए. में रहने वाले दूसरे लोगों को करते देखकर सीखा था। समय गुज़ारने के लिए मैं शाम में नीचे, जहाँ धुँधले शीशों वाली खिड़कियों वाला बड़ा-सा कमरा था, 'बोस्टन ग्लोब' पढ़ा करता था। मैं इसके सभी लेख और विज्ञापन पढ़ जाता, जिससे कि मैं वहाँ की चीज़ों से वाकिफ़ हो सकूँ। जब मेरी आँखें थक जातीं तब मैं सो जाता। हालाँकि मैं ठीक से सो नहीं पाता था। हर रात मुझे खिड़की खुली रखनी पड़ती थी। उस दमघोंटू कमरे में यह हवा का अकेला जरिया था। लेकिन इससे आने वाला शोर भी असहनीय था। मैं बिस्तर पर लेटते समय कानों में अपनी उँगलियाँ डाल लेता, लेकिन जब नींद आ जाती, तब उंगलियाँ निकल आतीं और ट्रैफ़िक का शोर दोबारा मुझे जगा देता। कबूतर के पर खिड़की के ऊपर तिर आते। एक शाम जब मैंने कॉर्नफ़्लैक्स के ऊपर दूध उड़ेला, तब मैंने पाया कि वह ख़राब हो चुका है। तो भी मैंने छह हफ़्ते तक वाई.एम.सी.ए. में रहने का निश्चय किया, जब तक कि मेरी पत्नी का पासपोर्ट और ग्रीनकार्ड तैयार नहीं हो जाते। एक बार जब यह सब हो जाए तब मुझे कोई ठीक-ठीक अपार्टमेंट लेना था। इसके लिए मैं अख़बार के वर्गीकृत विज्ञापनों को देखता और कभी अपने दोपहर के खाने की छुट्टी में एम.आई.टी. के हाउसिंग ऑफिस के चक्कर लगाता; यह देखने के लिए कि मेरी पहुँच में कौन-कौन से विकल्प मौजूद हैं। इसी क्रम में मुझे एक ऐसे मकान का पता चला, जिसे जितनी जल्द हो किरायेदार चाहिए था। यह मकान एक शांत गली में था, जिसका किराया विज्ञापन के अनुसार आठ डॉलर प्रति सप्ताह था। मैंने अपनी गाईडबुक में उसका नंबर नोट किया और उसे एक पे-बूथ से फ़ोन किया। ऐसा सिक्का डालकर जिससे मैं अभी तक अपरिचित ही था, शिलिंग से छोटी और हल्की, लेकिन पैसे से भारी और चमकीली।

"कौन बोल रहा है ?" महिला ने पूछा। उसकी आवाज़ दमदार और तीखी थी।

"हाँ, गुड आफ़्टरनून मैडम! मैंने किराये के कमरे के लिए फोन किया है।"

"हार्वड या टेक ?"

"माफ़ कीजिएगा ?"

"तुम हार्वर्ड से हो या टेक से ?"

जैसे ही मेरी समझ में आया कि टेक मेसाच्युसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के लिए है; मैंने जवाब दिया,

"मैं डेवे पुस्तकालय में काम करता हूँ," जानबूझ कर यह जोड़ते हुए, "टेक में।"

"मैं केवल टेक या हार्वर्ड के लड़कों को कमरे किराये पर देती हूँ !"

"जी मैडम।"

उसने मुझे घर का पता बताया और शाम में सात बजे मिलने का समय दिया। समय से आधे घंटे पहले मैं गाईडबुक को अपनी जेब में रखकर निकल गया। मेरी साँसें लिस्ट्रिन के इस्तेमाल से ताज़ा-तरीन थीं। मैं पेड़ों से घिरी गली की ओर मुड़ गया जो मेसाच्यूसेट्स एवेन्यू से सीधी जाती थी। घास की नुकीली पत्तियाँ फुटपाथ के दरारों के बीच उग आयीं थीं। गर्मी के बावजूद मैंने कोट और टाई पहन रखी थी; इस घटना को किसी साक्षात्कार की तरह महत्त्वपूर्ण मानते हुए। मैं कभी ऐसे व्यक्ति के घर में नहीं रहा जो भारतीय न हो।

क़तारदार बाड़ से घिरे हुए इस मकान का रंग मक्खनी था और इसके छज्जे भूरे थे। गचकारी किए हुए कतारदार मकानों से अलग (जहाँ मैं लंदन में रहता था) यह मकान सबसे हटकर था। यह पूरी तरह लकड़ी की पट्टियों से घिरा था।

जब मैंने घंटी बजायी तो वही महिला, जिससे मैंने फ़ोन पर बात की थी, चिल्लाई, "बस एक मिनट!" ऐसा लगा कि वह दरवाज़े के दूसरे छोर से बोल रही थी।

कई मिनट बाद एक छोटी-सी और बेहद बूढ़ी महिला ने दरवाजा खोला। सफ़ेद वालों का गुच्छा उसके सिर के ऊपर छोटे-से ढूह का रूप ले चुका था। जब मैं घर के अंदर आया, वह एक लकड़ी की बेंच पर बैठ गयी जो एक सँकरी

कालीन डली सीढ़ी के नीचे पड़ी थी। जब वह इस बेंच पर पूरी तरह जम गयीं, तब रोशनी के एक छोटे से टुकड़े में उसने पूरी एकाग्रता से मेरी ओर देखा।

उस महिला ने लंबी काली स्कर्ट पहन रखी थी जो फ़र्श पर तने हुए तंबू जैसी लग रही थी और एक माड़ीदार सफ़ेद शर्ट, जिसका गला और आस्तीन के किनारे झालरदार थे। लंबी पीली उँगलियों पर पड़ी सूजी हुई गाँठें सख़्त पीले नाख़ून वाले दोनों जुड़े हाथ गोद पर रखे थे। उम्र ने उसकी शक्ल को ऐसा बना दिया था कि वह क़रीब-क़रीब मर्द जैसी ही लग रही थी, तीखी सिकुड़ी हुई आँखें और नाक के दोनों ओर गहरी झुर्रियाँ। उसके होठ, कसे लगभग ओझल थे। उसकी भौंहें ग़ायब थीं। ऊपर से वह कुछ उग्र लगती थी।

"बंद कर दो!" उसने आदेश दिया। उसने बेंच की बग़ल वाली खाली जगह को एक हाथ से थपथपाया और मुझे बैठने को कहा। एक पल के लिए वह एकदम ख़ामोश रही उसके बाद ऐसे स्वर में बुदबुदाई माने केवल उसे ही इस बात की जानकारी हो– "चाँद पर अमेरिका का झंडा है!"?

"जी, मैडम।"

तब तक मैंने चाँद वाली घटना के बारे में कभी ज़्यादा सोचा भी नहीं था। हालाँकि अख़बार में उसके बारे में लगातार लेख आ रहे थे। अंतरिक्ष यात्री 'सी ऑफ ट्रॅन्क्विलिटी' के किनारे खाली ज़मीन पर उतरे थे, ऐसा मैंने पढ़ा था। सभ्यता के इतिहास में किसी भी मानव की यह सबसे दूर की यात्रा थी। कुछ घटों तक उन्होंने चन्द्रमा की सतह का अन्वेषण किया। अपनी जेबों में वहाँ के पत्थर भरे और वहाँ के वातावरण का विवरण दिया (एक अंतरिक्ष यात्री के अनुसार वहाँ अपूर्व एकांत था) और फ़ोन से राष्ट्रपति से बाते कीं और चाँद की सतह पर एक झण्डा गाड़ा। उस अभियान को मानव जाति की सबसे विस्मित कर देने वाली उपलब्धि माना गया। मैंने 'ग्लोब' में फूले हुए परिधानों में अंतरिक्ष यात्रियों के पूरे पन्ने की तस्वीर देखी थी। मैंने पढ़ा था कि जिस रविवार की दोपहर अंतरिक्ष यात्री वहाँ उतरे उस समय बोस्टन में कुछ लोग क्या कर रहे थे। एक आदमी ने बताया कि वह अपने कान में रेडियो लगाकर अपनी नौका

चला रहा था; एक महिला अपने पोते-पोतियों के लिए खाने के कुछ पका रही थीं।

महिला चिल्लाई, "चाँद के उपर झंडा। मैंने रेडियो पर सुना। क्या यह हैरतअंगेज नहीं है ?"

"हाँ, मैडम !"

लेकिन वह मेरे जवाब से संतुष्ट नहीं थी। इसके बदले उसने कहा, "बोलो कि 'शानदार' है!"

मैं उसके इस तरह कहने पर हैरान भी था और एक तरह से अपमानित भी महसूस कर रहा था। इस पर मुझे याद आया कि जब मैं छोटा था तो कैसे मुझे पहाड़ा सिखाया जाता था।

टॉलीगंज के एक कमरे वाले स्कूल में, बिना किसी जूते या पेंसिल के, पालथी मारकर बैठे, मास्टर द्वारा बताए पाठ को दुहराते हुए। इससे मुझे अपनी शादी भी याद आती है, जब मैं पुरोहित द्वारा उच्चरित संस्कृत श्लोकों को दुहरा रहा था। वो श्लोक, जिसे मैं शायद ही जानता था, मुझे अपनी पत्नी के साथ जोड़ रहा था। मैंने कुछ नहीं कहा।

"कहो 'शानदार !" महिला फिर चिल्लाई।

"शानदार", मैंने धीरे से कहा। मुझे फिर से दूसरी बार उसी शब्द को पूरे ज़ोर से दुहराना पड़ा, ताकि वह सुन सके। मैं स्वभाव से मृदुभाषी हूँ और ख़ास कर मुझे उस बूढ़ी महिला से ऊँची आवाज़ में बात करता बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था, जिससे मैं थोड़ी ही देर पहले मिला था। लेकिन उसे इस बात का बुरा नहीं लगा था। यदि कुछ लगा हो, तो शायद वह जवाब से ख़ुश थी क्योंकि उसका अगला आदेश था– "जाओ कमरा देख लो!"

मैं बेंच से उठा और क़ालीन डली सँकरी सीढ़ी पर चढ़ने लगा। वहाँ पाँच दरवाज़े थे, दो-दो दरवाज़े सँकरे गलियारे की दोनों तरफ और एक उल्टी दिशा में। केवल एक दरवाज़ा थोड़ा-सा खुला था। उस कमरे में ढलवाँ छत के नीचे एक डबल बेड, एक भूरी दरी, साधारण-सा बेसिन और एक दराज़ वाली बॉक्स थी। एक दरवाज़ा, जो सफ़ेद रंग से पुता था, कमरे की तरफ़ ले जाता था,

दूसरा गुसलख़ाने और टब की तरफ़। दीवारें भूरे और सफेद धारीदार कागज़ों से ढँकी थीं। खिड़की खुली थी; जालीदार पर्दा हवा से हिल रहा था। मैंने उसे उठाया और बाहर की ओर देखा– एक छोटी-सी बालकनी के पार कुछ फल के पेड़ दिखे और एक ख़ाली अलगनी। मुझे अच्छा लगा। सीढ़ी के नीचे से मैंने सुना, महिला पूछ रही थी, "तुमने क्या सोचा ?"

बाहरी बैठक में लौटकर मैंने अपनी सहमति जताई, तब उसने चमड़े का बटुआ मेज़ पर से उठाया, उसे खोला, अपनी उँगलियों से कुछ टटोला और पतले तार के छल्ले में लगी एक चाबी निकाली। उसने मुझे बताया, घर के पिछले हिस्से में एक रसोईघर है, जिसका रास्ता बैठक से होकर जाता है। स्टोव को इस्तेमाल करने की अनुमति थी लेकिन तभी तक मैं उसका इस्तेमाल कर सकता था जब तक यहाँ रहूँ। चादर और तौलिया भी दिया गया, लेकिन इन्हें साफ़ रखना मेरी अपनी ज़िम्मेदारी थी। किराया हर शुक्रवार की सुबह चुकाना था, जिसे पिआनो के पटरे पर रखना था। "और कोई महिला आगंतुक नहीं!"

"मैं शादीशुदा हूँ मैडम !" यह पहली बार था, जब मैंने इस तथ्य को किसी और को बताया हो।

लेकिन उसने सुना नहीं। "कोई महिला आगंतुक नहीं !" उसने अपना परिचय मिसेज़ क्रॉफ़्ट के रूप में दिया।

माला मेरी पत्नी का नाम था। मेरे बड़े भाई और उनकी पत्नी ने उससे मेरी शादी तय की थी। मैंने बिना किसी विरोध या उत्साह के इस प्रस्ताव का सम्मान किया। यह मेरा कर्तव्य था, जिसकी मुझसे आशा की जाती थी और यह सभी पुरुषों से अपेक्षित होता है। वह बेलेघाटा के एक स्कूल टीचर की बेटी थी। मुझे बताया गया कि वह खाना बना सकती है, सिलाई-कढ़ाई का सकती है, आल्पना आँक सकती है, और रवीन्द्रनाथ की कविताओं का पाठ कर सकती है। लेकिन ये सारी प्रतिभाएँ उसके साँवले रंग की कमी को पूरा नहीं कर सकती थीं। उसके सामने ही कई पुरुषों ने उसे नकार दिया था। उसकी उम्र सताईस साल की थी, ऐसी उम्र, जहाँ माता-पिता यह सोचने लगते हैं कि इसकी शादी कभी नहीं होगी। इसलिए उन्होंने अपनी अकेली संतान को सात समुन्दर पार

एक अनजान दुनिया में भेज दिया, ताकि वह आजन्म क्वाँरेपन के अभिशाप से बच जाए।

पाँच रातें हमने एक साथ बिस्तर पर काटीं। वह हर रात, कोल्ड क्रीम लगाती, अपने बाल को काले फ़ीते से गूँथती, उसका अंतिम सिरा कसकर बाँधती और मुझसे दूसरी ओर मुँह करके रोती। उसे अपने माता-पिता की याद सताती। हालाँकि कुछ ही दिन में मैं देश छोड़ने वाला था, लेकिन रिवाज के मुताबिक वह मेरी गृहस्थी का एक हिस्सा थी। अगले छह हफ़्ते तक उसे मेरे भाई और उनकी पत्नी के साथ रहना था, खाना बनाते हुए, सफ़ाई करते हुए मेहमानों का चाय और मिठाइयों से सत्कार करते हुए। मैंने उसे ढाढ़स भी नहीं बँधाया। मैं अपनी ओर बिस्तर पर लेटा-लेटा बत्ती में गाइडबुक पढ़ता रहता और अपनी भावी यात्रा के बारे में सोचता रहता। कुछ समय मैं दीवार की दूसरी तरफ़ उस छोटे-से कमरे के बारे में सोचता रहा था, जो कभी मेरी माँ का कमरा हुआ करता था। वास्तव में वह कमरा अब ख़ाली था; वहाँ एक लकड़ी की चौकी थी, जिस पर कभी वह सोया करती थी, उस पर आज बक्सों और बिस्तरों के ढेर थे। छह साल पहले जब मैं लंदन जाने वाला था, तब मैंने उसी बिस्तर पर उसे मरते हुए देखा था। और देखा कि अपने अंतिम दिनों में वह अपनी टट्टी से खेला करती थी। दाह संस्कार से पूर्व मैंने उसके नाख़ूनों को हेयरपिन से साफ़ किया था और तब मैंने बड़े बेटे की भूमिका निभायी। मेरे भाई से यह सब झेला नहीं जा रहा था। मैंने उसके कपाल से अग्निपुंज को छुआया ताकि उसकी पीड़ित आत्मा का स्वर्गारोहण हो सके।

अगली सुबह मैं मिसेज क्राफ़्ट के घर, उस कमरे में चला आया। मैंने दरवाज़ा खोला और देखा, वह पिआनो बेंच पर बैठी है, ठीक उसी जगह जहाँ, वह कल बैठीं थी। वह वही काली स्कर्ट पहने थी, वही कलफ़दार सफ़ेद क़मीज़ डाले और उनके हाथ वैसे ही उनकी गोद पर रखे थे। वह इतनी ज़्यादा वैसी ही दिख रही थी मानो उन्होंने सारी रात उसी बेंच पर बिता दी हो। मैंने सूटकेस को ऊपर सीढ़ियों पर रखा, रसोई से अपने फ़्लास्क में गरम पानी लिया और

काम के लिए निकल गया। उस शाम जब मैं यूनिवर्सिटी से घर लौटा, तब भी वह वहीं थीं।

"बैठ जाओ बच्चे!" उसने अपनी बग़ल की जगह को थपथपाया। मैं बेंच पर उसकी बग़ल में बैठ गया। मेरे पास खाने-पीने के सामान का एक पूरा थैला था-काफ़ी सारा दूध, ढेर सारे क़ार्नफ़्लैक्स और बेहिसाब केले। क्योंकि दिन की शुरूआत में जब मैंने रसोई देखी तब मैंने पाया कि वहाँ कोई खाली बरतन या पकाने का कोई समान नहीं पड़ा था। वहाँ रेफ्रिज़रेटर में केवल दो भगोने रखे थे, दोनों में संतरे का रस था और एक ताँबे की केतली थी, जो स्टोव पर रखी थी।

"नमस्ते, मैडम!"

उसने मुझसे पूछा कि क्या मैंने दरवाज़ा ठीक से बंद कर दिया था। मैंने बताया, हाँ, कर दिया।

कुछ समय के लिए वह मौन रही। फिर एकाएक, पहले वाली रात की तरह ही आश्चर्यमिश्रित खुशी से कहने लगी, "वहाँ चाँद पर अमेरिकन झंडा है, बच्चे!"

"हाँ, मैडम!"

"चाँद पर झंडा! क्या यह शानदार नहीं है ?"

मैंने सिर हिला दिया इस आशंका के साथ कि क्या होने वाला है।

"हाँ मैडम!"

"कहो कि शानदार है!"

इस बार मैं रुका, दोनों तरफ़ देखा कि कोई सुन तो नहीं रहा, जबकि मैं अच्छी तरह जानता था कि घर पूरी तरह ख़ाली है।

मुझे अपनी बेवकूफ़ी का एहसास हो रहा था। लेकिन यह कोई इतनी बड़ी बात नहीं थी, जिसके बारे में पूछा जाए।

"शानदार !" मैं चिल्लाया।

कुछ ही दिनों में यह हमारी दिनचर्या हो गयी। सुबह में जब मैं पुस्तकालय के लिए निकलता तब मिसेज क्रॉफ़्ट या सीढ़ियों के दूसरी तरफ़

अपने कमरे में होती या रेडियो पर समाचार या शास्त्रीय संगीत सुनते बेंच पर बैठी हुई होती, मेरी उपस्थिति से बेख़बर। लेकिन हर शाम जब मैं लौटता वही बातें दोहराई जातीं– वो बेंच थपथपातीं, मुझे बैठने के लिए कहती, बताती कि चाँद पर झंडा है, और इसे शानदार घोषित करती। मैं भी कहता कि यह शानदार है। और तब हम चुपचाप बैठ जाते। अजीब-सी बात तो थी ही और मुझ पर भारी भी पड़ती थीं, लेकिन रात की यह मुलाक़ात दसेक मिनट की होती थी। निश्चित रूप से वो इसके बाद सो जाती होगी। जब उनका सिर उनके सीने की ओर बार-बार झुकने लगता, तब मैं अपने कमरे पर आ जाता। और तब तक निस्संदेह चाँद पर कोई झंडा नहीं होता था। मैंने अख़बार में पढ़ा कि उसे पृथ्वी पर वापस लौटने से पहले उतार लिया गया था। लेकिन मुझमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि यह बात मैं उनको बता सकूँ।

शुक्रवार की सुबह, जब मुझे अपने पहले हफ़्ते का किराया चुकाना था, मैं बैठक में पिआनो के फ़लक पर पैसा रखने गया। पिआनो की कुंजियाँ ज़र्द और बदरंग हो गयी थी। जब मैंने एक को दबाया, इससे कोई आवाज़ नहीं आयी। मैंने एक डॉलर के आठ नोट एक लिफ़ाफ़े में रखकर और उसके ऊपर मिसेज क्रॉफ्ट का नाम लिख दिया था। पैसों को चिन्हित किए और किसी को सुपुर्द किए बग़ैर ऐसे ही छोड़ देने की मेरी आदत नहीं थी। जहाँ मैं खड़ा था, वहाँ से उसके तंबू-जैसे स्कर्ट का पिछला हिस्सा दिख रहा था। वह बेंच पर बैठ कर रेडियो सुन रही थी। मुझे इसके लिए उसे पिआनो तक बुलाना अनावश्यक लग रहा था। मैंने कभी उसे चलते हुए नहीं देखा था और जिस तरह से चलने की छड़ी हमेशा उसके बगल के गोल टेबल के किनारे टिकी दिखती थी, मैं अनुमान लगा सकता था कि उसे इसमें बहुत कठिनाई होती होगी। जब मैं बेंच के पास गया, उसने मुझे घूरा और पूछा–

"तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?"

"किराया है, मैडम !"

"उसे पिआनों के फ़लक पर रख दो।"

"ये यही हैं" -मैंने लिफ़ाफ़े को उनकी तरफ़ बढ़ाया, लेकिन उसकी उँगलियाँ, जिसे मोड़कर उसने एक साथ अपनी गोद में रखा हुआ था, नहीं हिलीं। मैं थोड़ा झुका और लिफ़ाफ़े को और नीचे किया, जो ठीक उनके हाथों से बस थोड़ा ही ऊपर था। कुछ क्षण बाद उसने इसे ले लिया और सहमति में अपना सिर हिलाया।

उस रात जब मैं घर लौटा, उन्होंने बेंच को नहीं थपथपाया। लेकिन आदतन मैं पहले की ही तरह उनकी बग़ल में बैठ गया। उसने मुझे दरवाज़े के बारे में पूछा, लेकिन चाँद के ऊपर के झंडे के बारे में कुछ नहीं कहा। उसके बदले कहा–

"इसके लिए तुम्हें धन्यवाद !"

"आपने कुछ कहा, मैडम ?"

"इसके लिए धन्यवाद !"

लिफ़ाफ़ा अभी भी उनके हाथ में ही था।

रविवार को मेरे दरवाज़े पर दस्तक हुई। एक बुज़ुर्ग महिला ने अपना परिचय दिया, वह हेलेन थी, मिसेज़ क्रॉफ्ट की बेटी। वह कमरे में आयी और चारों तरफ़ देखा कि क्या कुछ बदला है। वह मेरे टँगे हुए कपड़े, दरवाज़े के हत्थे से लटकी टाई, दराज़ के उपर कॉर्नफ़्लैक्स के डब्बे और बेसिन में पड़ी गंदी कटोरी चम्मच वगैरह को देख रही थी। वह छोटी और मोटी थी, उसके छोटे चमकीले बाल थे और उसने गुलाबी लिपस्टिक लगा रखी थीं। उसने गर्मी में पहने जाने वाले बिना बाँह वाले कपड़े डाल रखे थे, मोतियों की माला पहन रखी थी और उसका चश्मा उसकी छाती के ऊपर झूल रहा था। उसके पैर के पिछले हिस्सों की नीली नसें उभर आयीं थी और उसके ऊपरी बाँह फूले हुए एगप्लांट की तरह लटक रही थीं। उसने बताया कि वह आरलिंग्टन में रहती थी, जो मेसाच्युसेट्स एवेन्यू से आगे कुछ दूरी पर है।

"मैं हर हफ़्ते एक बार अपनी माँ के लिए खाने-पीने का सामान लेकर आती हूँ। उसने तुम्हें अब तक जाने के लिए नहीं कहा ?"

"ऐसा कुछ नहीं है, मैडम !"

"कुछ लड़के तो यहाँ से बेदम होकर भाग चुके हैं लेकिन मुझे लगता है कि वह तुम्हें चाहती है। तुम पहले ऐसे नौजवान हो जिसका उसने एक भद्रपुरुष के रूप में परिचय दिया।"

"ऐसा नहीं है, मैडम!"

उसने मेरी ख़ाली पैरों की तरफ़ देखा (मुझे घर के अंदर जूते पहनना बड़ा अजीब लगता है, मैं कमरे में आने से पहले हमेशा अपने जूते उतार दिया करता था।)

"तुम बोस्टन में नए हो?"

"मैं अमेरिका के लिए ही नया हूँ, मैडम !"

अपनी भौंह चढ़ाते हुए उसने पूछा, "कहाँ से हो ?"

"मैं कलकत्ता भारत से हूँ ।"

"सच ! एक साल पहले यहाँ एक ब्राजीलियन लड़का था। तुम पाओगे कि कैम्ब्रिज़ एक अंतर्राष्ट्रीय शहर है।"

मैंने सहमति में अपना सिर हिलाया और सोचने लगा कि हमारी बात-चीत और कितनी लंबी चलेगी।

लेकिन ठीक उसी समय सीढ़ियों से मिसेज क्रॉफ़्ट की तेज़ आवाज़ हम तक आई। हम गलियारे तक आए ही थे कि उनकी आवाज़ आई–

"तुम लोग तुरंत नीचे आओ!"

"क्या है ?" हेलेन भी चिल्लाई।

"तुरंत !"

मैंने जल्दी से अपने जूते डाले। हेलेन उसाँसे भर रही थी। हम सीढ़ियों से नीचे आ रहे थे। सीढ़ी इतनी सँकरी थी कि दोनों एक साथ नहीं आ सकते थे, इसलिए मैं हेलेन के पीछे था। हेलेन धीरे-धीरे उतर रही थी, उसने बताया कि उसके घुटने में तकलीफ़ है।

"क्या तुम बिना अपनी छड़ी के चल रही थीं ?" हेलेन चिल्लाई।

"तुम्हें पता है कि तुम्हें बिना छड़ी के नहीं चलना चाहिए।"

वह रुकी, अपने हाथ को सीढ़ियों के जँगले पर टिकाते हुए और मेरी ओर पलटते हुए कहा– "कभी-कभी वह फिसल जाती है।"

पहली बार मिसेज क्रॉफ़्ट मुझे असहाय लगी। मुझे लगा कि वह बेंच की बग़ल की फ़र्श पर चित लेटी हुई, छत को देख रही होगी, उसके दोनों पैर एक दूसरे से उल्टी दिशा में होंगे। लेकिन जब हम सीढ़ी से उतरे तब वह पहले जैसी ही बैठी थी, अपने हाथ को मोड़कर अपनी गोद में रखे हुए। सामानों से भरे दो थैले उसके पैरों के पास थे। जब हम उनके पास आए तो उसने बैठने के लिए बेंच नहीं थपथपायी और न ही बैठने को कहा। वह घूर रही थी।

"माँ, क्या बात है ?"

"यह ठीक नहीं है।"

"क्या ठीक नहीं है ?"

यह ठीक नहीं है, कोई महिला और पुरुष, जो एक दूसरे से विवाहित नहीं हो, अकेले में बात करें; और वह भी बिना किसी संरक्षिका के।"

हेलेन अड़सठ वर्ष की थी, मेरी माँ-जैसी। लेकिन मिसेज़ क्राफ़्ट का कहना था कि हेलेन और मुझे नीचे बैठक में ही बात-चीत करनी चाहिए। उसने यह भी कहा यह बात भी ठीक नहीं कि हेलेन-जैसी महिला अपनी उम्र बताए साथ ही, एड़ी से इतना ऊपर कपड़े पहनना यह भी ठीक नहीं है।

"माँ, तुम्हारी जानकारी के लिए बता दूँ, यह 1969 ई. है। तुम्हारा क्या होगा जब तुम घर से बाहर निकलो और ऐसी लड़की को देखो जिसने मिनी स्कर्ट पहनी हो।"

मिसेज क्राफ़्ट झुँझला कर बोली, "मैं उसे गिरफ़्तार करवा दूँगी।"

हेलेन ने अपना सिर हिलाया और सामान का एक थैला उठा लिया। मैंने दूसरे को उठाया, और उसके पीछे-पीछे बैठक से होते हुए रसोई तक आया। थैला सूप के कैन से भरा था, जिसे हेलेन ने एक-एक करके खोला। उसने सॉसपैन में पड़े बासी सूप को सिंक में उलट दिया, नल के नीचे पैन को धोया, नए कैन से सूप को उसमें भरा और वापस रेफ्रिज़रेटर में रख दिया। "कुछ साल पहले तक वह खुद ही कैन खोल लेती थी।" हेलेन ने कहा, "उसे बुरा लगता है

कि यह सव मैं उसके लिए करती हूँ। लेकिन पिआनो के चलते उसकी उँगलियाँ बेकार हो गयीं।" उसने अपना चश्मा पहन लिया और आलमारी की तरफ़ नज़र डाली। उसे मेरा टी-बैग दिख गया। "चाय के बारे में क्या ख़याल है?"

मैंने केतली को स्टोव पर चढ़ा दिया। "मैडम, आप पिआनो के बारे में कुछ कह रही थीं।"

"वह पिआनो सिखाया करती थी। चालीस सालों तक लगातार। पिता जी के मरने के बाद उसने हमें इसी तरह पाला।" हेलेन ने अपने कमर पर हाथ रख कर खुले रेफ्रिज़रेटर की तरफ़ देखा। अंदर झाँका, मक्खन का एक टुकड़ा काग़ज में आड़े तिरछे पड़ा था, उसे निकाला। देखकर मुँह बनाया और कूड़े में फेंक दिया। "यही करना चाहिए था उसने कहा, और सूप के अनखुले कैन को आलमारी में रख दिया। मैं टेबल पर बैठा हेलेन को देख रहा था– गंदे बरतन धोते, कूड़े ठिकाने लगाते, सिंक के ऊपर 'स्पाइडर प्लांट' में पानी डालते और उबले हुए पानी को दो कप में डालते। उसने एक मुझे बग़ैर दूध के (टी बैग का धागा बाहर हिल रहा था) दिया और टेबल पर बैठ गयी।

"माफ़ कीजिएगा, मैडम, लेकिन क्या यह ज़्यादा नहीं है ? हेलेन ने अपनी चाय की एक घूँट ली। उसकी लिपस्टीक से चाय के कप के अंदरूनी कोने पर मुस्कुराता हुआ एक गुलाबी धब्बा पड़ गया था।

"क्या ज़्यादा है?"

"पैन में जो सूप पड़ा है क्या यह मिसेज क्रॉफ़्ट के लिए ज़्यादा नहीं है ?"

"वह और कुछ नहीं खाती है। सौ साल पूरे होने पर उसने ठोस आहार लेना छोड़ दिया है। यह तीन साल पहले की बात है।"

मैं बिल्कुल ठगा-सा रह गया। मुझे लगा था मिसेज क्रॉफ़्ट अस्सी के आस-पास की होगी या ज़्यादा-से-ज़्यादा नब्बे की। मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानता था, जिसने पूरे सौ साल पूरे किए हों और वह भी ऐसी विधवा महिला, जो अकेली रह रही थी, उस बात ने मुझे और भी चकित कर दिया। यह विधवा जीवन ही था, जिस कारण मेरी माँ पागल हुई थी। मेरे पिता की मृत्यु मस्तिष्क-शोथ से हुई थी। तब मैं सोलह साल का था। वे कलकत्ता के एक पोस्ट

ऑफिस में क्लर्क थे। उनके विना मेरी माँ का जीना मुश्किल हो गया। इस सदमे से उबरने की जगह दिनों-दिन उसकी हालत बद से बदतर होती चली गयी। उसे न तो मैं; न मेरा भाई, न मेरे रिश्तेदार, न मनोचिकित्सक और न ही रासबिहारी एवेन्यू स्थित क्लिनिक ही इससे बचा सके। उसे इस तरह से असहाय देखकर मुझे बड़ी तकलीफ़ होती थी। उसकी दिमाग़ी हालत ऐसी हो गयी थी कि दूसरों के सामने खाकर डकार लेने या लोगों के सामने उदर वायु छोड़ने में उसे ज़रा भी झिझक नहीं होती थी। मेरे पिता की मौत के बाद मेरे भाई ने पढ़ाई छोड़ दी और जूट के मिल में काम करना शुरू कर दिया ताकि घर-गृहस्थी चल सके। और मेरा काम था माँ के पास बैठना और परीक्षा के लिए पढ़ाई करना। वह अपनी बाँह के बाजूबंद को गिना करती थी, मानों वह जयमाला का मनका हो। हमारी कोशिश होती थी कि वो हमारी नजरों से दूर न हो। एक बार तो वो ट्राम डिपो में अधनंगी हालत में घूम रही थी, फिर हम घर वापस ले कर आए।

"मुझे मिसेज क्राफ़्ट के लिए शाम में सूप गर्म करने में खुशी होगी"– मैंने सुझाया। अपने प्याले से ही बैग निकाल कर निचोड़ते हुए कहा, "मुझे इसमें कोई परेशानी नहीं है।"

हेलेन ने अपनी घड़ी देखी, उठी और अपनी बची-खुची चाय को सिंक में उड़ेल दिया। "मुझे परेशानी होती, अगर मैं तुम्हारी जगह होती। यही सारी चीज़े उसे मार सकतीं हैं।"

उस शाम, जब हेलेन वापस आरलिंग्टन चली गयी तब मिसेज क्रॉफ़्ट और मैं फिर से अकेले हो गए। मुझे चिंता होने लगी। अब मुझे यह पता चल गया था कि वह कितनी बूढ़ी है। मुझे चिंता होने लगी कि बीच रात में था जब मैं दिन में बाहर होऊँ, उसे कुछ हो न जाए। चाहे उसकी आवाज़ कितनी भी कड़क हो, या फिर चाहे वह कितनी ही रोबदार दिखती हो, मुझे पता था कि एक छोटी-सी खरोंच उसकी जान ले सकता था। उसके जीवन का एक-एक दिन एक चमत्कार की तरह था। हालाँकि हेलेन का व्यवहार काफ़ी दोस्ताना था, लेकिन कहीं-न-कहीं मुझे ऐसा लगता था अगर उसे (मिसेज़ क्रॉफ्ट को) कुछ हो हवा गया, तब उसे ऐसा न लगे कि यह सब मेरी लापरवाही के कारण हुआ हो। लेकिन हेलेन

चिंतित नहीं दिखती थी। वह एक के बाद एक हर रविवार को आती रही और मिसेज क्रॉफ़्ट के लिए सूप लाती रही।

इस तरह से वे छह हफ़्ते गुज़र गए। पुस्तकालय के काम के बाद मैं हर शाम घर लौटता, कुछ देर मिसेज़ क्रॉफ़्ट के साथ बैठता, उसका साथ देता उसे भरोसा दिलाता कि मैंने दरवाज़ा देख लिया है। मैं बताता कि चाँद पर झंडे का होना अपने आप में बड़ा शानदार था। एक शाम मैं उसके सो जाने के बाद भी काफ़ी देर तक वहीं बैठा रहा, इस बात पर हैरान होते हुए कि इस सरज़मीन पर उसने कितने साल बिता दिए। कभी-कभी मैं सोचता उस 1866 की दुनिया के बारे में जिसमें उसने जन्म लिया था - एक ऐसी दुनिया, जिसमें औरतें काली लंबी स्कर्ट पहनती होगी, वहाँ बैठक में वह सलीक़ेदार तरीक़े से बात-चीत करती होगी। अब, जब मैं उन गाँठदार उँगलियों, जिसे वह मोड़कर अपनी गोद में रखी होती; को देखकर सोचता कभी वे नर्म और मुलायम रही होंगी, पिआनो की पटरियों पर फिरती हुई। कभी-कभार सोने से पहले मैं नीचे आकर देख लिया करता कि वह बेंच पर ठीक से बैठी है या अपने सोने के कमरे में सुरक्षित तो है।

हर शुक्रवार को, मैं याद से किराया दे दिया करता। इन छोटी-छोटी बातों के अलावा मैं और कर ही क्या खातिर सकता था। मैं उसका बेटा नहीं था, आठ डॉलर के अलावा, मेरा कुछ और उससे नाता नहीं था।

अगस्त के अंत में माला का पासपोर्ट और ग्रीन कार्ड तैयार हो गया था। उसके उड़ान के बारे में मुझे टेलिग्राम से ख़बर मिली; कलकत्ते में मेरे भाई के घर पर टेलिफ़ोन नहीं था। लगभग उसी समय मुझे उसकी चिट्ठी मिली, जो हमारे अलग होने के कुछ ही दिन बाद लिखी गयी थी। इसमें कोई अभिवादन नहीं था; सीधे मेरे नाम से थी, जो ऐसी अंतरंगता जता रही थी जो अब तक शायद हम दोनों के बीच नहीं थी। इसमें केवल कुछ पंक्तियाँ थीं। "मैं सफ़र के लिए तैयार होने के लिए अंग्रेज़ी में लिख रही हूँ। यहाँ मुझे बहुत अकेलापन लग रहा है। क्या वहाँ बहुत सर्दी है। बर्फ़ भी पड़ती है– तुम्हारी माला।"

TH-14321
Library

TH/Hin
891.4308
K9606 Ma
TH14321

चिट्ठी पढ़कर मुझे कोई अनुभूति नहीं हुई। हमलोगों ने एक साथ कुछ गिने-चुने दिन ही गुज़ारे थे। फिर भी हम लोग एक दूसरे के हो गए थे। छह हफ़्ते तक उसने अपनी कलाई में लोहे की चूड़ी पहनी थी, अपनी माँग में सिंदूर डाला था, दुनिया को यह बताने के लिए कि अब वह किसी की दुल्हन है।

उन छह हफ़्तों में मैंने उसके आने का इस तरह से इंतज़ार किया जैसे आने वाले महीने का करते हैं या आने वाले मौसम की तरह कुछ ऐसा, जो अनिवार्य था। लेकिन कभी-कभी यह बेकार लगता था। मैं उसे इतना कम जानता था, जब मैं उसके चेहरे को याद करता था, तब उसका पूरा चेहरा मेरी कल्पना में नहीं आ पाता था।

उसकी चिट्ठी मिलने के कुछ दिनों बाद, जब सुबह में मैं काम के लिए जा रहा था, तब मैंने मेसाच्युसेंट्स एवेन्यू की दूसरी तरफ़ एक भारतीय महिला को देखा, जिसकी साड़ी का ऑचल फुटपाथ पर लगभग लोट रहा था। वह अपने बच्चे को हाथगाड़ी में ले जा रही थी। एक अमेरिकन महिला उसकी बग़ल में काले पट्टे से बँधे अपने काले पिल्ले के साथ टहल रही थी। अचानक वह पिल्ला भौंकने लगा। मैंने सड़क की दूसरी तरफ़ देखा कि वह भारतीय महिला एकाएक चौंककर अपनी जगह पर खड़ी हो गयी। उस काले पिल्ले ने उछलकर उसके साड़ी के आँचल को दाँतों से पकड़ लिया था। अमेरिकन महिला ने कुत्ते को डपटा, माफी माँगी और तेज़ी से निकल गयी; उस भारतीय महिला को बीच सड़क पर अपनी साड़ी संभालते और बच्चे को चुप कराते हुए छोड़कर। उसने मुझ पर ध्यान नहीं दिया, और बाद में अपने रास्ते चल दी। उस सुबह मुझे ऐसा लगा कि इस तरह की दुर्घटना, जल्द ही मेरे लिए चिंता का विषय बननेवाली है। माला का ध्यान रखना मेरी ज़िम्मेदारी थी। उसकी अगुवानी करना, उसकी हिफाज़त करना भी। मुझे उसके लिए बर्फ़ वाले नए बूट सर्दी के लिए बनवा लेने थे। उसे यह समझाना था कि किस राह पर वह न चले, यातायात के नियम क्या हैं, कि कैसे वह साड़ी पहने कि जिससे उसका सिरा सड़क पर न घिसटे। कभी-कभी यह सोच कर अजीब लगता है कि कैसे अपने माँ-बाप से महज़ पाँच मील की दूरी ही उसके रोने-धोने के लिए काफ़ी थी।

माला के विपरीत, मुझे अब तक यहाँ हर चीज़ की आदत हो गयी थी कार्नफ़्लेक्स और दूध की आदत, हेलेन की आ धमकने की आदत, मिसेज़ क्रॉफ़्ट के साथ बेंच पर बैठने की आदत। जिस चीज़ की मुझे आदत नहीं पड़ी थी वह थी माला। फिर भी मैने वही किया जो मुझे करना था। मैं एम.आई.टी. के हाउसिंग ऑफिस में गया और वहीं थोड़ी दूरी पर मुझे एक तैयार अपार्टमेंट मिल गया, जिसमें एक डबल बेड कमरा, एक रसोई और एक निजी स्नानघर था, जिसका किराया था चालीस डॉलर प्रति सप्ताह। उस आखिरी शुक्रवार को मैंने लिफ़ाफ़े में आठ डालर डालकर मिसेज क्रॉफ़्ट को थमाया, अपना सूटकेस नीचे ले आया और उसे बताया कि मैं जा रहा हूँ। अंतिम बात जो उसने मुझसे कही वह यह कि मैं टेबल से टिकी उनकी छड़ी, उसे दे दूँ, ताकि वह दरवाज़े तक चल सके और मेरे जाने के बाद दरवाज़ा बंद कर सके। "तब, विदा"– उसने कहा और घर के अंदर लौट गयीं। मुझे किसी भावुकता की उम्मीद नहीं थी। लेकिन साथ में मुझे निराशा भी हुई। मैं एकमात्र ऐसा आगंतुक था जिसने उसे कुछ पैसे दिए और छह हफ़्ते उनके घर पर गुज़ारे। एक पूरी सदी के अनुपात में यह समय कुछ भी नहीं था।

एयरपोर्ट पर मैं माला को तुरंत पहचान गया। उसकी साड़ी का आँचल ज़मीन पर नहीं लेट रहा था। उसका आँचल उसके सिर के उपर था, दुल्हन की तरह घूँघट काढ़े। मेरी माँ भी सिर पर आँचल लेती थी, जब तक मेरे पिता जीवित थे। उसकी पतली भूरी बाँह पर सोने के बाजूबंद सज्जित थे, उसके माथे पर छोटी-सी लाल बिन्दी थी और उसके पैरों के किनारे पर लाल आलता लगा हुआ था। मैंने न तो उसे गले लगाया, न चूमा और न ही उसके हाथ को अपने हाथ में लिया। इसके बदले मैंने उससे अमेरिका में पहली बार बांग्ला में बोलते हुए पूछा कि वह भूखी तो नहीं है।

पहले वह सकुचाई, फिर हाँ में सिर हिलाया।

मैंने उसे बताया कि मैंने घर पर थोड़ी-सी अंडा करी बना रखी है।

"हवाई जहाज़ में खाने को क्या मिला था ?"

"मैंने नहीं खाया।"

"कलकत्ते से यहाँ तक कुछ भी नहीं ?"

"मेनू में बैल की पूँछ का शोरबा था।"

"लेकिन और भी चीज़ें होंगी।"

"बैल की पूँछ खाने के ख़याल से ही मेरी भूख मर गयी।"

जब हम घर पहुँचे, माला ने अपना सूटकेस खोला और उसने मुझे दो पुलोवर दिए, जिसे उसने पिछले छह हफ़्तों में तैयार किया था। दोनों चटक नीले रंग के थे, एक 'वी' आकार गले का दूसरा धागे से कढ़ा हुआ। मैंने पहन कर देखा, दोनों की बाँह नीचे से तंग थी। वह मेरे लिए दो नए डोरियों वाले पायजामे, भाई की चिट्ठी और दार्जलिंग की खुली चाय का पैकेट लायी थी। मेरे पास सिवाय उस अंडा करी के उसे देने के लिए कुछ नहीं था। हम लोग एक नंगी टेबल पर बैठे, दोनों अपने प्लेटों को घूरते हुए। हमने अपने हाथों से खाना खाया, यह दूसरी चीज़ थी, जिसे अभी तक मैंने अमेरिका में नहीं किया था। "अच्छा घर है"– उसने कहा "और अंडा करी भी।" बाएँ हाथ से उसने साड़ी को ठीक किया ताकि उसके सिर से पल्लू न गिर जाए।

"मुझे बहुत ज़्यादा कुछ बनाना नहीं आता।" मैंने बताया।

उसने सिर हिलाया, खाने से पहले आलू के छिलके उतारते हुए। एक बार उसका पल्लू कंधे पर सरक आया। उसने तुरंत उसे ठीक किया।

"यहाँ सर ढँकने की ज़रूरत नहीं है," मैंने कहा- "इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, फ़िक्र मत करो।"

लेकिन उस पर कोई असर नहीं हुआ।

उसके होने का मुझे अहसास हो, इसका मैं इंतज़ार करता रहा, अपनी बग़ल में, टेबल पर, अपने बिस्तर पर, लेकिन हफ़्ते भर बाद भी हम अजनबी ही बने रहे। मुझे अब तक इसकी आदत नहीं हुई थी कि घर आने पर भात की सोंधी खुशबू मिले, बाथरूम में बेसिन हमेशा चमकता मिले, टूथब्रश अपनी जगह पर, साबुनदानी पर रखा पीयर्स साबुन (जो भारत से लाया गया था)। मुझे इसकी भी आदत नहीं थी– उसके सिर पर लगाए हुए नारियल तेल की ख़ुशबू की, जिसे वह हर दूसरे दिन अपने सिर पर डालकर घिसा करती या फिर घर

में चलते समय उसके पायल के मधुर खन-खन की हर सुबह वह हमेशा मुझसे पहले उठ जाती थी। पहली सुबह जब मैं रसोई में आया तब वह बचा हुआ चावल गरम कर प्लेट में नमक के साथ परोस रही थी, यह सोचते हुए कि मैं सुबह के नाश्ते में चावल खा लूँगा। जैसा कि आम बंगाली पति करते है। मैंने उसे बताया सुबह-सुबह अनाज भारी करता है। अगली सुबह जब मैं रसोई में आया तब मेरे कटोरे में उसने कॉर्नफ़्लैक्स डाल रखा था। एक सुबह वह मेरे साथ मेसाच्युसेट्स एवेन्यू से एम.आई.टी. तक गयी, मैंने उसे थोड़ी देर कैम्पस में घुमाया। रास्ते में हमलोग हार्डवेयर की दुकान पर रुके, दूसरी चाबी बनवाई, ताकि उसे सुविधा रहे। दूसरी सुबह जब मैं काम के लिए निकल रहा था तब उसने मुझसे कुछ डॉलर्स माँगे। मैंने अनमने मन से उसे दे दिया, लेकिन मुझे पता था कि अब यह सामान्य बात थी। जब मैं काम के बाद घर लौटा तब मैंने देखा रसोई के दराज में आलू छीलनी पड़ी थी, टेबल के ऊपर टेबल क्लॉथ पड़ा था। स्टोव के ऊपर लहसुन और अदरख की खुशबू वाली चिकन करी रखी थी।

उन दिनों हमारे पास टेलिविज़न नहीं हुआ करता था। रात में खाना खाने के बाद मैं अख़बार पढ़ता और माला वहीं पर बैठकर या तो अपने लिए कार्डिगन बुनती या घर के लिए चिट्ठियाँ लिखती।

अपने पहले सप्ताहांत पर, शुक्रवार को, मैंने कहीं बाहर घूमने का प्रस्ताव रखा। माला अपनी बुनाई छोड़कर बाथरूम में ग़ायब हो गयी। जब वह तैयार होकर बाहर आई तब मुझे खीझ हुई, कि मैंने ऐसी बात क्यों छेड़ी। उसने सिल्क की साड़ी पहन रखी थी और ऊपर से और भी चूड़ियाँ डाल ली थी। सिर पर बालों को वेणी की तरह गूँथकर दोनों तरफ़ फुग्गा-सा काढ़ रखा था। वह ऐसे सजी थी मानो किसी पार्टी में जाना हो या कम-से-कम सिनेमा जाना हो। जबकि मेरे दिमाग़ में ऐसी कोई जगह नहीं थी। शाम सुहावनी थी। हम मेसाच्युसेट्स एवेन्यू पर दुकानों और रेस्तराओं को देखते हुए काफ़ी आगे निकल गए। तब, अनायास ही, मैं उसे उन गलियों में ले आया, जहाँ कई बार रातों में मैं अकेला घूमा करता था।

मैंने मिसेज क्रॉफ़्ट के घर की बाड़ पर रुकते हुए कहा, "तुम्हारे आने से पहले मैं यहीं रहा करता था।"

"इतने बड़े घर में ?"

"इस घर के पिछवाड़े में, ऊपर मेरा छोटा-सा कमरा था।"

"यहाँ और कौन रहता है ?"

"एक बेहद बूढ़ी महिला।"

"अपने परिवार के साथ ?"

"नहीं, अकेले।"

"तब उनका ख़याल कौन रखता है ?"

मैंने गेट खेलते हुए कहा, "ज़्यादातर वह खुद ही अपना ख़याल रखती थी।"

मुझे डर था कि मिसेज क्रॉफ़्ट कहीं मुझे भूल न गयी हो। मुझे आश्चर्य होता अगर कोई नया किरायेदार वहाँ होता, जो उनके साथ शाम में बैठा करता। जब मैंने घंटी बजायी तब मुझे लगा कि दरवाजा खुलने में कुछ समय लगेगा। क्योंकि पहली बार ऐसा ही हुआ था, जब मेरे पास चाबी नहीं थी। लेकिन इस बार दरवाज़ा बहुत जल्दी खुल गया, क्योंकि दरवाज़े पर हेलेन थी। मिसेज़ क्रॉफ़्ट उस बेंच पर नहीं बैठीं थीं। बेंच वहाँ था ही नहीं।

"हलो, कैसे हो?" हेलेन ने कहा, गुलाबी लिपस्टिक लगाए हुए माला की ओर देखकर मुस्कुराते हुए। "माँ बैठक में है। तुम थोड़ी देर रुकोगे न ?"

"जैसा आप कहें मैडम!"

"अगर तुम बुरा न मानो तो मैं जल्दी से स्टोर हो आऊँ। माँ के साथ एक छोटी-सी दुर्घटना घट गयी है। इन दिनों हम उसे अकेला नहीं छोड़ सकते, एक मिनट के लिए भी नहीं।"

हेलेन के जाने के बाद मैंने दरवाज़ा बंद किया और बैठक आ गया। मिसेज़ क्राफ़्ट पीठ के बल लेटी हुई थीं। उनके सिर के नीचे तकिया था और शरीर पर हल्की सफ़ेद कम्बल। उन्होंने अपनी छाती पर अपने हाथ मोड़कर रखे थे। जब उन्होंने मुझे देखा तब मुझे सोफ़े की तरफ़ इशारा किया और मुझसे

बैठने को कहा। मुझसे जहाँ कहा गया, वहाँ मैं बैठ गया लेकिन माला पिआनो के पास घूम रही थी और बेंच पर बैठ गयी। बेंच अब वहाँ था, जहाँ उसे होना चाहिए था।

"मेरे कूल्हे की हड्डी टूट गयी।" मिसेज क्रॉफ़्ट ने बताया, जैसे अभी-अभी टूटी हो।

"अरे रे... यह क्या मैडम !"

"मैं बेंच से गिर गयी।"

"बड़े अफसोस की बात है मैडम !"

"यह सब आधी रात को हुआ! जानते हो बच्चे मैंने क्या किया ?"

मैंने सिर हिला दिया।

"मैंने पुलिस को बुलाया।"

उसकी निगाह छत पर टँग गयी और अपने पूरे भूरे दाँत बाहर निकाल कर धीरे से खीसें निपोर दी। सारे दाँत अपनी जगह पर थे। "तुम्हारा क्या कहना है बच्चे ?"

मैं अवाक् रह गया, मुझे पता था कि मुझे क्या कहना चाहिए था। बिना किसी संकोच के, मैं चिल्लाया "ओह शानदार !"

तब माला हँसी। उसकी हँसी उन्मुक्त और हृदय से निकली थी। मैंने उससे पहले उसकी हँसी नहीं सुनी थी और वह इतनी ज़ोर से हँसी कि मिसेज क्रॉफ़्ट ने भी सुना। वह माला की तरफ़ घूमी और घूर कर देखा।

"बच्चे, यह कौन है ?"

"यह मेरी पत्नी है मैडम!"

मिसेज क्रॉफ़्ट ने अपने सिर को तकिए पर कुछ इस तरह घुमाया कि वह उसे ठीक से देख सके! "तुम्हें पिआनो बजाना आता है ?"

"नहीं, मैडम", माला ने जवाब दिया।

"खड़ी हो जाओ !"

माला अपनी पैरों पर खड़ी हो गयी, अपने सिर के पल्लू को ठीक करते हुए। उसके यहाँ आने के बाद, पहली बार मुझे उसके प्रति सहानुभूति हुई मुझे

अपने लंदन के शुरूआती दिन याद आए कि कैसे मैंने रसेल स्क्वायर तक के लिए ट्यूब लेना सीखा था, और पहली बार एस्केलेटर पर चढ़ना जाना था। तब मेरी समझ में नहीं आया था कि वहाँ के लोग 'पेपर' को 'पीपर' कहते हैं। मुझे इस बात को समझने में पूरा एक साल लगाया था कि जब ट्रेन एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन के लिए रवाना होती थी, तब कंडक्टर के 'माइंड द गैप' कहने का क्या मतलब था। मेरी ही तरह, माला भी अपने घर से इतनी दूर चली आयी है, यह बिना जाने कि वह कहाँ जा रही है, उसे क्या मिलेगा, किसी और कारण से नहीं बस इसलिए कि वह मेरी पत्नी है। वैसे तो यह अजीब लगता है कि इसकी मौत कभी मुझे प्रभावित करेगी, और यह भी अजीब है, कि मेरी मौत भी उसे प्रभावित करेगी। मैं किसी तरह यह सब मिसेज क्रॉफ़्ट को बताना चाहता हूँ जो अभी तक माला को सिर से पैर तक निहार रही थी। मुझे लगता है मिसेज़ क्रॉफ्ट ने शायद ही ऐसी महिला को देखा हो जो साड़ी पहने, सिर पर बिंदी लगाए, कलाइयों में ढेर सारे कंगन पहने हो। मुझे लग रहा था कि उसे यह सब पसंद नहीं आएगा। मुझे लगा कि अगर वह माला के पैरों में आलता लगा देख पाती तो उसे क्या लगता! अभी भी वह फीका नहीं पड़ा था और साड़ी की किनारी से ढँका था। अंत में मिसेज क्रॉफ्ट ने घोषित किया, हैरानीभरी ख़ुशी के साथ, जिससे मैं परिचित था–

"यह पूरे तौर पर महिला है !"

इस बार मैं हँस पड़ा लेकिन इतने धीरे से कि मिसेज क्रॉफ़्ट ने नहीं सुना। लेकिन माला ने सुना, और पहली बार हमने एक दूसरे को देखा और मुस्कुरा पड़े।

मुझे यह याद करना अच्छा लगता कि यह मिसेज़ क्रॉफ़्ट के बैठक का वही क्षण था जब मेरे और माला के बीच की दूरियाँ कम होती शुरू हो गयीं थीं। हालाँकि हम दोनों अब भी पूरी तरह प्यार में नहीं बँधे थे, लेकिन आगे के महीने हमारे लिए हनीमून जैसे थे। हम साथ-साथ शहर घूमते उन दूसरे बंगालियों से मिले, जो आज भी हमारे दोस्त हैं। हमने यह पाया कि प्रॉस्पेक्ट स्ट्रीट पर बिल नाम का आदमी ताज़ी मछलियाँ बेचता है और हार्वर्ड स्क्वायर की एक दुकान

'कारडूलो'स' पर मसाले और देशी सब्ज़ियाँ मिलती हैं। शाम में हम लोग चार्ल्स नदी में नाव को खेते हुए देखते या हार्वर्ड यार्ड पर आइसक्रीम खाते। हमने एककैमरा ख़रीदा ताकि अपने जीवन के यादगार पलों को उसमें क़ैद कर सकें। मैंने प्रूडेन्सियल बिल्डिंग के बाहर उसकी तस्वीर ली, जिसे वह अपने माता-पिता के पास भिजवा सके।

रात में हमने एक दूसरे का चुंबन लिया, पहले वह शरमाई फिर सहज हो गयी। एक दूसरे की बाँहों में आनंदित होते हुए और सुकून पाते हुए, मैंने उसे 'एस.एस. रोमा' की यात्रा के बारे में बताया, फिर फिन्सबरी पार्क और वाई.एम.सी. ए. के बारे में; साथ ही, मिसेज क्रॉफ़्ट के साथ बिताई गई शामों के बारे में। जब मैंने उसे अपनी माँ की कहानी बताई, तब वह खूब रोई। यह माला ही थी जिसने मुझे ढाढ़स बँधाया, जब मैंने 'ग्लोब' पलटते हुए मिसेज़ क्रॉफ़्ट के निधन का शोक संदेश देखा। मैंने कई महीनों से उसके बारे में सोचा भी नहीं था - गर्मी के वे छह सप्ताह मेरे लिए अब काफ़ी दूर की बात हो गई थी लेकिन उसकी मौत से मैं हिल गया था। इतना अधिक कि जब माला ने स्वेटर बुनते हुए सिर उठाकर जब मेरी तरफ़ देखा तब मैं दीवार पर नज़र गड़ाए हुए था - अख़बार मेरी गोद पर वैसे ही पड़ा हुआ था, ख़ामोश। यह मिसेज़ क्राफ़्ट की मृत्यु थी, जिसका शोक मुझे अमेरिका में पहली बार हुआ था। यह पहली ज़िन्दगी थी जिसे मैं सराहता रहा था। अंत में उसने इस प्राचीन और अकेली दुनिया को छोड़ दिया, जो दोबारा नहीं लौटने वाली।

जहाँ तक मेरी बात है, मैं इससे ज़्यादा नहीं जा पाया। माला और मैं बोस्टन से करीब बीस मील दूर एक ऐसे शहर में रहे, जिसकी सड़क पर लगे पेड़ मिसेज क्रॉफ्ट के घर का एहसास जगाते थे। यह हमारा घर था। इसमें लगी फुलवारी से गर्मियों में हम टमाटर ख़रीदने से बच जाते थे, और इसमें मेहमानों के लिए भी जगह थी। अब हम अमेरिकी नागरिक थे। इसलिए हम वहाँ पर वक़्त पड़ने पर सामाजिक सुरक्षा की सुविधाएँ भी पा सकते थे। हालाँकि हम हर दूसरे तीसरे वर्ष कलकत्ता जाते रहे थे, वहाँ से पायजामे और दार्जलिंग चाय लाते रहे, लेकिन हमने अपना जीवन यहीं बिताने की सोची। मैं एक छोटे से

कॉलेज के पुस्तकालय में काम करता था। हमारा लड़का अब हार्वर्ड में पढ़ रहा था। माला अब अपने सिर पर पल्लू नहीं रखती थी और न ही अपनी माता-पिता की याद में रात में रोती थी, लेकिन कभी-कभी वह हमारे बेटे के लिए ज़रूर रोती थी।

तब हम उसे मिलने कैम्ब्रिज़ जाते, या सप्ताहांत पर उसे घर ले आते, जिससे वह हमारे साथ बैठकर अपने हाथों से चावल खा सके और बांग्ला में बात कर सके। यह ऐसी चीज़ थी जिसके बारे में हम चिंतित थे कि हमारी मृत्यु के बाद वह शायद ही ऐसा करे।

हम जब भी उस रास्ते जाते, तब ट्रैफ़िक होने के बावजूद हम मेसाच्यूसेट्स एवेन्यू से होकर गुज़रते। अब मैं मकानों को शायद ही पहचान पाता था, लेकिन हर बार मुझ उन छह हफ़्तों की याद आती थी, जैसे वह कल ही की बात हो। मैं मिसेज क्रॉफ़्ट की सड़क के कोने पर गाड़ी धीरे कर देता, अपने बेटे को बताता कि यह अमेरिका में मेरा पहला घर था, जहाँ मैं ऐसी महिला के साथ रहता था जिसकी उम्र 103 वर्ष की थी। "याद है– माला कहती और मुस्कुराती। मुझे आश्चर्य होता, कभी ऐसा भी था जब हम एक दूसरे के लिए अजनबी थे। मेरे बेटे को आश्चर्य होता, मिसेज क्रॉफ़्ट की उम्र के लिए नहीं, इसके लिए कि मुझे कितना कम किराया देना पड़ता था। यह उसके लिए उतना ही अविश्वसनीय था जितना कि 1866 में जन्मी एक महिला के लिए चाँद पर झंडा। मैं अपने बेटे की आँखों में उसी आत्मविश्वास की चमक देखता, जिसने मुझे पहली बार दुनिया के इस छोर तक पहुँचाया। अगले कुछ वर्षों में वह ग्रेजुएट हो जाएगा और अपनी मंजिल ढूँढ़ेगा, अकेले और असुरक्षित। लेकिन मुझे याद आया कि उसका पिता अभी ज़िंदा है माँ भी ख़ुश और सही सलामत है। अगर तब भी वह कमज़ोर पड़ेगा, मैं उसे बताऊँगा कि जब मैंने तीन महादेशों से पार पा लिया, तब उसके रास्ते में कोई बाधा ही नहीं है। जहाँ अंतरिक्ष यात्री चाँद पर महज़ कुछ घंटे बिता कर लोकनायक बन जाते हैं, मैं इस नयी दुनिया में तक़रीबन तीस साल गुज़ार चुका हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी यह उपलब्धि बहुत साधारण है। केवल मैं ही ऐसा नहीं हूँ जो अपनी तकदीर

आज़माने घर से इतनी दूर निकला हो और ऐसा करनेवाला मैं कोई पहला आदमी भी नहीं हूँ। फिर भी, मुझे हर वह मील, जिस पर मैं चलता रहा हूँ, हर वह खाना, जो मैं खाता हूँ, हर वह आदमी, जिसे मैं जानता हूँ, हर वह कमरा, जहाँ कभी सोया था, मुझे चकित करता है। भले ही यह कितना भी मामूली लगे, लेकिन किसी समय यह सब मेरी कल्पना से परे था।

अध्याय : तीन

मिसेज़ सेन की कहानी

सितम्बर में स्कूल खुलने के बाद, एलियट मिसेज़ सेन के पास लगभग एक महीने से जा रहा था। एक साल पहले उसकी देखभाल एब्बी नाम की युनिवर्सिटी की एक छात्रा कर रही थी। एक छरहरी-सी लड़की जो हमेशा ऐसी किताबें पढ़ा करती जिनके ऊपर कोई तस्वीर नहीं होती। उसकी त्वचा पर हल्के भूरे निशान थे और उसने एलियट के लिए ऐसा कोई भी खाना बनाने से मना कर दिया था, जिसमें मांस का इस्तेमाल हो। इससे पहले जब भी वह घर वापस आता एक बुजुर्ग महिला, मिसेज़ लिंडन, हर दोपहर उसका स्वागत किया करती। वह थर्मस की कॉफ़ी की चुस्की लगा रही होती, क्रॉसवर्ड की गुत्थियाँ सुझला रही होती और एलियट खुद अपने खेल में मगन होता। एब्बी को डिग्री मिली और वह दूसरी युनिवर्सिटी में दाख़िले के लिए चली गई और मिसेज़ लिंडेन की छुट्टी तब हुई जब एलियट की माँ को यह पता चला कि मिसेज़ लिंडेन के थर्मस में कॉफ़ी कम, ह्विस्की ज़्यादा होती थी। मिसेज़ सेन का आना यूँ हुआ था। सुपर मार्केट के बाहर इंडेक्स कार्ड पर एक सूचना साफ़-सुथरे और सजीले शब्दों में लगी थी– "एक प्रोफ़ेसर की पत्नी, ज़िम्मेदार और उदार, मैं आपके बच्चे की देख-भाल अपने घर पर करूँगी।" टेलीफ़ोन पर एलियट की माँ ने मिसेज़ सेन को बताया कि पहले की बेबी-सिटर (बच्चे का ख़याल रखनेवाली) उनके घर आया करती थीं। "एलियट ग्यारह साल का है। वह खुद खा सकता है और अपना जी बहला सकता है। मैं चाहती हूँ कि घर में कोई बुजुर्ग हो, अगर एकाएक कुछ हो जाए तो उससे निपटने के लिए। लेकिन मिसेज़ सेन को गाड़ी चलाना नहीं आता था।

"आप देख सकते हैं, हमारा घर बिल्कुल साफ़-सुथरा है, एक बच्चे के लिए बिल्कुल सुरक्षित।" मिसेज़ सेन ने उनसे अपनी मुलाक़ात में कहा था। यह एक युनिवर्सिटी का अपार्टमेंट था, कैम्पस के एक छोर पर।

लॉबी में पीले-भूरे रंग की अनाकर्षक टाइल्स लगी थीं, एक क़तार में उजले लेबल या ढक्कन वाले टेप लगे मेल बॉक्स लगे थे। अंदर में, आडू के

रंग की झालरदार क़ालीन थी जिसके उपर 'वैक्यूम क्लीनर' के इस्तेमाल की छाप नज़र आ रही थी। दूसरी क़ालीनों के अनमेल बचे हुए टुकड़े, सोफ़ा और कुर्सी के आगे रखे थे, पा पोश जैसे, शायद यह सोच कर कि किसी के पैर ज़मीन को न छुए। सोफे के बगल में ड्रम के आकार का उजला लैंपशेड था, जिसपर अभी भी निर्मातावाली प्लास्टिक लिपटी थी। टी.वी. और टेलिफ़ोन पीले रंग के गोटे लगे कपड़े के टुकड़े से, ढँके थे। मग के साथ भूरे रंग के पॉट में चाय पड़ी थी और ट्रे में बटर-बिस्किट। मिस्टर सेन नाटे, मज़बूत काठी के व्यक्ति थे जिनकी आँखें थोड़ी बोझिल थीं और उन पर काला चौकोर चश्मा लगा रहता था। उन्होंने अपने पैरों को थोड़ा ज़ोर लगा कर एक-दूसरे पर चढ़ा रखा था। उन्होंने अपने मग को अपने मुँह के पास-दोनों हाथों से पकड़ रखा था, हालाँकि वे इसे पी नहीं रहे थे, तब भी। मिस्टर सेन और मिसेज़ सेन, दोनों ही ने जूते नहीं पहने थे। एलियट का ध्यान बाहर के दरवाज़े के पास गया, जहाँ छोटे से रैक पर कई जोड़ियाँ क़तार में लगी थीं। उन्होंने 'फ्लिप-फ्लॉप्स' पहन रखे थे। "मिस्टर सेन युनिवर्सिटी में गणित पढ़ाते हैं। मिसेज़ सेन ने परिचय कराने के तौर पर कहा, मानो वे केवल दूर-दराज के परिचित हों।

उसकी उम्र लगभग तीस वर्ष थी। उसके दाँतों के बीच एक छोटा-सा फाँक था और उसकी ठुढ्ढी पर हल्का-सा गड्ढा। जबकि उसकी आँखें सुंदर थीं। मोटी उभरी हुई भौंहें और पलकों में पनियाली चमक। उसने चमकदार सफ़ेद साड़ी पहन रखी थी, जिस पर नारंगी रंग के पंख की आकृति के डिज़ाइन बने थे। यह किसी शाम की पार्टी के लिए ज़्यादा फ़बतीं बनिस्पत उस हल्की रिमझिमाती अगस्त की दोपहर के। उसके होंठ मेल खाते कोरल ग्लॉस से रँगे थे, जिसके रंग कहीं-कहीं किनारे से बाहर हो गए थे।

एलियट ने सोचा उसकी माँ ही थोड़ी अजीब-सी दिख रही थी। उसने हल्के पीले भूरे-रंग की शार्ट्स पहन रखे थे और पैरों में 'रोप-सोल' की जूतियाँ। उसके कटे हुए बाल, जिसका रंग उसके शार्ट्स से मेल खा रहा था, कुछ ज़्यादा ही सीधे और सौम्य दिख रहे थे। उस कमरे में जहाँ हर चीज़ इतनी सावधानी से ढँक कर रखी थी, वहाँ उसके शेव किए हुए घुटने और जाँघ कुछ ज़्यादा ही

खुले हुए दिख रहे थे। वह बिस्कुट के लिए मना कर रही थी, जिसे बार-बार मिसेज़ सेन उसकी तरफ़ बढ़ा रही थी। उसने सवालों की झड़ी लगा दी, जिसके जवाब वह अपने स्टेनो पैड पर लिखती जा रही थी। क्या अपार्टमेंट में और बच्चे होंगे ? क्या इससे पहले मिसेज़ सेन ने कभी बच्चों की देखभाल की है ? इस देश में रहते हुए उसे (मिसेज़ सेन को) कितने साल हो गए ? सबसे बड़ी बात कि वह इस बात को लेकर पसो-पेश में थी कि मिसेज़ सेन को गाड़ी चलाना नहीं आता। एलियट की माँ का दफ़्तर पचास मील उत्तर में था, जहाँ वह काम करती है, और उसके पिता, जो उसकी अंतिम जानकारी थी, दो हज़ार मील दूर पश्चिम में रहते थे।

"दरअसल, मैं इसे सिखा रहा हूँ," मिस्टर सेन ने "मेरे हिसाब से मिसेज़ सेन को दिसंबर तक ड्राइविंग लाइसेंस मिल जाएगा।" अपनी कॉफ़ी मग टेबल पर रखते हुए कहा। पहली बार उन्होंने कुछ कहा था।

"ऐसा है ?" एलियट की माँ ने इस सूचना को अपने पैड पर नोट किया।

"हाँ, मैं सीख रही हूँ", मिसेज़ सेन ने कहा, "लेकिन मेरे सीखने की रफ़्तार थोड़ी धीमी है। वैसे मैं बताऊँ -हमारे घर ड्राइवर है।"

"आपका मतलब शॉफर से है ?

मिसेज़ सेन ने मिस्टर सेन की तरफ़ देखा, उन्होंने सिर हिलाकर हामी भरी।

एलियट की माँ ने भी सिर हिलाया, पूरे कमरे पर नज़र दौड़ाते हुए। "और ये सब....भारत में ही न ?"

"जी", मिसेज़ सेन ने उत्तर दिया। उस शब्द के साथ उसके अंदर का कुछ गुबार बाहर आया। उसकी साड़ी का किनारा बिल्कुल सलीकेदार था और जो उसके वक्ष से तिरछे उभरता था। उसने भी, कमरे के चारों ओर देखा, जैसे उसे लैंपशेड्स में देखा जा रहा हो, टी-पॉट में, क़ालीन पर जमी छाया में, बाक़ी दूसरी चीज़ों में, जिन्हें हर कोई नहीं देख सकता था।

"सब कुछ है यहाँ।"

एलियट को स्कूल के बाद मिसेज़ सेन के पास जाना बुरा नहीं लगा। सितंबर तक वो छोटा-सा 'बीच-हाउस' पहले ही ठंडा हो चुका था जहाँ एलियट और उसकी माँ साल भर रहते थे। एलियट और उसकी माँ को एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने पर एक छोटा हीटर अपने साथ लेकर चलना होता था। खिड़कियों को प्लास्टिक के टुकड़े और 'हेयर ड्रायर' की मदद से सीलबंद करना पड़ता था। सागर तट बिल्कुल सुनसान होता था, जहाँ खेलने का कोई मतलब नहीं था। उनके एकमात्र पड़ोसी पिछले 'श्रमिक दिवस' पर वहाँ रहने आए थे। यह एक नवविवाहित युवा जोड़ा था– जिसके कोई बच्चा नहीं था। और एलियट को अब अपनी बाल्टी में टूटे सीपियों को जमा करना आकर्षित नहीं करता था और न ही बालू पर सी-वीड्स को सजाना, जो मणिमाला की कड़ी-जैसा जान पड़ता था। मिसेज़ सेन का अपार्टमेंट गर्म होता था, कभी-कभी कुछ ज़्यादा ही। रैडियेटर लगातार प्रेशर कुकर की तरह उफनता रहता था।

एलियट ने मिसेज़ सेन के यहाँ जो पहली बात सीखी, वह था दरवाज़े पर चप्पल उतारना और उसे 'बुककेस' पर मिसेज़ सेन की चप्पलों वाली क़तार में रख देना। मिसेज़ सेन की चप्पलें अलग-अलग रंग की थीं, उनकी तली काडबोर्ड जैसी सपाट थी उनमें चमड़ का छल्ला बना होता था जो पैरों के बड़े पंजे में समा सके।

मिसेज़ सेन को देखने में तब उसे ख़ास तौर पर मज़ा आता था, जब वह बैठक की ज़मीन पर अख़बार के ऊपर बैठकर चीज़ों को काटा करती थी। चाकू के बदले वह हँसुए का प्रयोग करती थी, जो वाइकिंग जहाज़ (सुदूर समुद्र में लड़ाई के काम आने वाली) के अगले हिस्से की तरह मुड़ी थी। हँसुआ का एक सिरा लकड़ी के पतले पटरे से जुड़ा था। इसका इस्पात चाँदी से ज़्यादा कुछ भी काला था, जिसपर एक समान पॉलिश नहीं थी। इसमें दाँतेदार कटाव था, जिससे कुछ भी कतरा जा सकता था, मिसेज़ सेन ने एलियट को बताया। हर दोपहर मिसेज़ सेन यह हँसुआ उठाकर अपनी जगह पर बंद कर देती थी, इस तरह कि एक सिरे पर यह अपने पटरे से मिल जाए। धारदार किनारे को छुए बिना वह इसका इस्तेमाल कर लेती थी। वह साबुत सब्ज़ी को अपनी हाथों

के बीच-बीच लेकर अलग-अलग काट लेती थी : फूलगोभी, बंदगोभी, बटरनट स्क्वाश।

वह चीजों को आधा काटती, फिर चौथाई, फिर फटाफट लम्बे और चौकोर छोटे-छोटे टुकड़ों में (फूलगोभी के)। वह कुछ सेकेंड में एक आलू छील सकती थी। कभी वह पालथी मार के बैठती, कभी पैरों को फैलाकर; पानी से भरे छोटे-बड़े बर्तनों से घिरी, जिनमें कटी सब्ज़ियाँ डुबो दी जातीं।

जब वह ये सब काम करती, तब अपनी एक आँख टेलीविज़न पर जमाए रखती और एक एलियट पर लेकिन कभी उसे अपने हँसुए पर आँख रखने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई। हालाँकि जब वह कटाई का काम कर रही होती थी तब एलियट को आस-पास घूमने से मना कर देती थी। "बैठ जाओ, ईश्वर के लिए बैठ जाओ। इसमें बस दो मिनट और लगेंगे।" उसने सोफ़े की तरफ़ इशारा करते हुए कहा। यह सोफ़ा हमेशा हरे और काले रंग वाले 'बेडकवर' से ढँका रहता था, जिसपर हाथियों की छपी क़तार थी जिनकी पीठ पर पालकियाँ थीं। हर रोज़ इस काम में एक घंटा लगता। एलियट को व्यस्त रखने के लिए उसे अख़बार में कॉमिक्स वाला हिस्सा दे देती और साथ में मूँगफली का मक्खन लगे पतले सूखे बिस्किट और कभी-कभी पॉपसिक्ल, या उसके हँसुए से तराशे गाजर के टुकड़े। अगर उसके ब्रश में होता तब वह जरूर उस हिस्से को रस्सी से घेर देती।

हालाँकि, एक बार, उसने खुद अपने नियम को तोड़ा था; जब कुछ और चीज़ों की ज़रूरत पड़ी। और वह खुद उस ज़बरदस्त जंजाल से, जो उसे घेरे हुए था, उठना नहीं चाह रही थी। उसने रसोई से एलियट को कुछ लाने को कहा।

"अगर तुम बुरा न मानो, फ्रिज़ के पास वाले कैबिनेट में रखा एक प्लास्टिक का कटोरा उठा लाओ। वह इतना बड़ा है कि उसमें यह पूरा पालक आ जाएगा। सँभल कर प्यारे, सँभल के।" जैसे वह वहाँ पहुँचा वैसे ही मिसेज सेन ने कहा "शुक्रिया, बस छोड़ दो, वहीं कॉफी की मेज़ पर, मैं ले लूँगी।"

यह हँसुआ वह भारत से ले आयी थी, जहाँ शायद हर घर में कम-से-कम एक यह चीज़ तो होती ही थी। एक दिन उसने एलियट से कहा था, "जब भी परिवार में कोई शादी होती थी या कोई बड़ा आयोजन होता, मेरी माँ शाम में पड़ोस की सभी औरतों को संदेशा भिजवा देती कि वे अपना-अपना हँसुआ लेकर आएँ, ठीक इसी के जैसा। और तब वे सब मकान की छत पर बड़ा-सा घेरा बनाकर बैठ जातीं और हँसते बोलते रात भर में पचास-एक किलो सब्ज़ियाँ काट डालतीं।" उसका ब्योरा पूरे तौर पर उसके काम से भी ज़ाहिर होता, उसके चारों ओर कटे हुए खीरे, एगप्लांट, प्याज के ढेर खड़े हो जाते। "उनकी बातों को सुनते हुए, उन रातों में सोना असंभव था। बैठक की खिड़की के फ्रेम में उभरते पाईन के पेड़ को देखती वह थोड़ी रुकी, "यहाँ इस जगह, जहाँ मिस्टर सेन मुझे ले आए है, ऐसी ख़ामोशी में भी मैं कभी-कभी सो नहीं पाती।"

अगले दिन उसने अनमने ढंग से बैठकर मुर्गे से पीले दाने चर्बी को देखा, फिर उसे जाँघ और पैर के बीच अलग किया। जब हँसुए से हड्डी टूट कर अलग हो गयी तब उसके सोने के कंगन खनके और उसकी बाँहें चमक उठी थीं। उसने अपनी नाक से इतनी ज़ोर से साँस ली कि उसे सुना जा सकता था। एक बार वह ठहरी, फिर मुर्गे को दोनों हाथो से पकड़े रही-उसकी नज़र खिड़की से बाहर कहीं टिकी हुई थी। चर्बी और मांस के टुकड़े उसकी उँगलियों से चिपके थे।

"एलियट, अगर मैं अभी पूरे ताक़त से भी चिल्लाऊँ तो क्या कोई आएगा?"

"मिसेज़ सेन, क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं! मैं बस पूछ रही हूँ कि कोई आ सकता है ?"

एलियट ने कंधे उचकाकर कहा, "हो सकता है।"

"घर पर तुम्हें बस यही करना होता है। सबके पास फ़ोन नहीं है। बस अपनी आवाज़ थोड़ी ऊँची करो, चाहे किसी दुःख के चलते या ख़ुशी से, पूरा पड़ोस और कुछ दूसरे लोग भी उस ख़बर को बाँटने आ जाते हैं, दूसरों की तैयारियों में साथ देने के लिए।"

एलियट को अब तक यह बात समझ आ गयी थी कि जब मिसेज़ सेन घर कहती है, तब उसका मतलब भारत से होता है, वह अपार्टमेंट नहीं, जहाँ वह बैठकर सब्ज़ियाँ काटती है। उसने अपने घर के बारे में सोचा, जो महज़ पाँच मील की दूरी पर था। और वह नवविवाहित युवा युगल, जो तट पर सूर्यास्त के समय जॉगिंग करते हुए कभी-कभी हाथ हिलाकर अभिवादन करता था। 'श्रमिक दिवस' को उनके यहाँ पार्टी हुई थी। लोग डेक पर इकट्ठे होकर खा-पी रहे थे। उनकी हँसी की आवाज़ लहरों की थकी-चुकी उसाँसों को दबा दे रही थी। एलियट और उसकी माँ आमंत्रित नहीं थे। यह उन कुछ विरल दिनों में से एक था, जब उसकी माँ ने छुट्टी ली थी, लेकिन वे कहीं गए नहीं। उसकी माँ ने कपड़े धोए, चेकबुक का हिसाब-किताब किया और एलियट की मदद से कार के अंदर की सफ़ाई की। एलियट का सुझाव था कि वे कार की धुलाई के लिए कुछ मील की दूरी पर शहर की तरफ़ जाएँ, जैसा वे अक्सर करते हैं, ताकि वे कार के अंदर बैठे रहें। बिल्कुल सुरक्षित बिना भीगे, तब साबुन, पानी और कैनवस का बड़ा रिबन वाला छल्ला विंडशील्ड पर थपेड़ा देता रहता। लेकिन उसकी माँ ने कहा, वह बहुत थकी है और उसने पाइप से कार धोई। जब शाम को पड़ोसी के डेक पर हुजूम नाचने लगा तब उसने फ़ोनबुक में उनका नंबर देखा और उन्हें आवाज़ कम करने को कहा।

"वे आपको फ़ोन कर सकते हैं", यह सोचकर कि ऐसा हो सकता है, एलियट ने मिसेज़ सेन से कहा। "लेकिन वे शिकायत कर सकते हैं कि आप बहुत शोर कर रही हैं।"

एलियट जहाँ सोफ़े पर बैठा था, वहाँ से वह उसकी मॉथबॉल गोलियाँ और 'क्यूमिन' की खुशबू पहचान सकता था और बालों के बिल्कुल बीच वह माँग देख सकता था, जिस पर सिंदूर लगा था और इसलिए उसका लाल रंग चमक रहा था। पहली बार एलियट को लगा था कि उसका माथ फूट गया है या फिर किसी चीज़ ने वह जगह काट खाई हो। लेकिन एक दिन उसने देखा, वह बाथरूम के आईने के सामने खड़ी हो एक तीली से बड़े गरिमापूर्ण तरीक़े से सिंदूर लगा रही थी, जिसे उसने एक छोटे-से जैम जार में रखा था। सिंदूर के

कुछ दाने उसकी नाक के ऊपर गिर पड़े क्योंकि वह अपनी भौंहों के ऊपर एक बिंदी भी लगाती थी। "मुझे इसे हर दिन लगाना होता है", उसने एलियट को समझाया, जब उसने पूछा कि वह ऐसा क्यों करती है।

"बाक़ी पूरे दिन के लिए कि मैं विवाहिता हूँ।"

"आपका मतलब है, विवाह की अँगूठी की तरह न!"

"बिल्कुल, एलियट, बिल्कुल विवाह की अँगूठी की तरह। हाँ, इसके बर्तन धोने में खोने का डर नहीं रहता।"

एलियट की माँ के छह बज कर बीस मिनट पर आने से पहले, मिसेज़ सेन आश्वस्त हो जाना चाहतीं थी कि उसकी कटाई-छँटाई वाली गतिविधि का कोई निशान बचा न रहे। हँसुए को धो-रगड़कर, सुखाकर और मोड़कर एक ऊँचे पीढ़े की सहायता से कबर्ड में छुपा दिया जाता था। एलियट की सहायता से तमाम छिलकों और बीजों को अख़बार में ही समेट लिया जाता।

कटावदार प्यालियाँ और टोंटीदार पात्र को ऊपर रख दिया जाता, मसाले और पिसी हुई चीज़ों को मापा जाता, मिलाया जाता और उसके बाद बारीक कटे मांस या फिर मछली के कई तरह के सूप को स्टोव के ऊपर नीले मद्धिम आँच पर पकाया जाता। ऐसा कोई ख़ास आयोजन नहीं होता था और न ही कोई आने वाला था। यह केवल मिस्टर और मिसेज़ सेन के रात के खाने के लिए था। इसका पता बैठक में एक किनारे लगे चौकोर फ़ार्मिका टेबल पर रखे दो प्लेटों और दो गिलासों से लग जाता था, बिना किसी नैपैकिन या चाँदी के बरतन के।

जब वह उस अख़बार को कूड़े दान में गहरे दबा रहा होता था, एलियट को ऐसा लगता जैसे वह और मिसेज़ सेन कुछ अनकहे नियम को तोड़ रहे हों। उसे लगता मिसेज़ सेन अपना हर काम शायद इसी तत्परता के साथ करती है। अपनी उँगलियों के नाख़ूनों के बीच नमक और चीनी रगड़ती, लेंटिल्स (एक तरह का सेम) के ऊपर पानी चलाती, हर संभव सतह को पोंछती, काम के दौरान लगातार आलमारी के ढक्कन को बंद करती। अपनी माँ को एकाएक देखकर उसे थोड़ा झटका लगा। वह पारदर्शी स्टॉकिंग्स और गद्देदार कंधे वाले सूट में थी, जो वह ऑफिस के लिए पहनती थी। वह मिसेज़ सेन के अपार्टमेंट के एक

कोने में झाँक रही थी, वह दरवाज़े की चौखट से दूर से ही उचक कर देखती, एलियट को चप्पल पहनने और अपनी चीज़ों को समेट लेने के लिए बुलाती। लेकिन मिसेज़ सेन माने तब न! हर शाम को वह ज़ोर देकर उसकी माँ को सोफे पर बिठाती, जहाँ उसे कुछ खाने को दिया जाता– गुलाब जल मिला चटक गुलाबी योगर्ट का एक गिलास, किशमिश और डबल रोटी के टुकड़े के साथ पिसा हुआ मांस या एक प्लेट सूजी का हलवा। "सचमुच मिसेज़ सेन मैंने देर से दोपहर का खाना खाया है। आपको इतनी तकलीफ़ करने की ज़रूरत नहीं है।"

"अरे इसमें तकलीफ़ की क्या बात है! जैसे एलियट वैसी ही आप। तकलीफ़ की बात कोई नहीं है।"

उसकी माँ मिसेज़ सेन के पकवान के छोट-छोटे कौर लेती ऊपर देख रही थी और किसी निर्णय की तलाश में उसने अपने घुटनों को एक साथ दबा रखा था। उसके ऊँची हील वाली सैंडिल, जिसे वह कभी नहीं उतारती थी, आड़ू रंग की क़ालीन में धँसी थी।

"बहुत स्वादिष्ट है", एक दो कौर लेकर प्लेट को नीचे रखते हुए वह कहती। एलियट को पता था कि उसे इसका स्वाद अच्छा नहीं लगा होगा– उसने उसे एक बार कार में बताया भी था। वह यह भी जानता था कि उसने काम पर लंच नहीं खाया था, क्योंकि वे जब 'बीच हाउस' पर लौटे तब उसकी माँ सबसे पहले अपने लिए शराब का एक गिलास उठाती और साथ ही ब्रेड और चीज़ खाती। कभी-कभी इतना कि उसे पिज्जा के लिए भी भूख नहीं होती, जिसे रात के खाने के लिए ऑर्डर देकर मँगाया गया होता था। जब वह खाता, तब वह टेबल पर बैठ कर शराब पीती हुई पूछती, दिन कैसा रहा, लेकिन अंत में एलियट को बचे हुए खाने को ख़त्म करने अकेला छोड़, डेक पर सिगरेट पीने चली जाती।

हर दोपहर मिसेज़ सेन मुख्य सड़क के किनारे पाईन पेड़ के झुंड के पास खड़ी होती, जहाँ स्कूल बस एलियट और दो-तीन दूसरे बच्चों को छोड़ देती थी, जो आस-पास रहते थे। एलियट हमेशा की तरह समझ जाता था कि मिसेज़ सेन

कुछ देर पहले से इंतज़ार कर रही है, मानो उस आदमी के इंतज़ार में हो, जिससे सालों से वह मिली न हो। उसकी कनपटी पर की लटें हवा में लहरा रही थीं, माँग में सिंदूर दमक रहा था। उसने नेवी ब्ल्यू रंग का धूप-चश्मा पहन रखा था, जो उसके चेहरे के लिए काफ़ी बड़ा था। उसकी साड़ी, जो हर दिन अलग तरह की होती, चेक डिज़ाइन वाले 'ऑलवेदर कोट' के नीचे फड़फड़ाती रहती थी। ओक के नट और कैटरपिलर बिछी हुई कोलतार की गोल सड़क के घेरे में करीब दर्जन भर एक-जैसी ईंट वाली इमारतें थीं, जो एक जैसी लकड़ी के छापे वाले चिप्पड़ से मढ़ी हुई थीं। जब वे बस स्टॉप से वापस लौटते तब वह अपने पॉकेट से सैंडविच का लिफ़ाफ़ा निकालती और एलियट को छिले हुए संतरे की फाँक या मूँगफली के थोड़े-से नमकीन दाने देती, जो पहले से ही छिले होते थे।

दोनों सीधे कार तक जाते और बीस मिनट तक मिसेज़ सेन कार चलाने का अभ्यास करती। यह टॉफ़ी के रंग वाली सेडान कार थी जिसकी सीटें बिनाइल की थीं। उसमें क्रोम-बटन वाला ए.एम. रेडियो था और पिछली सीट के ऊपर के तख्त पर 'क्लिनेक्स' का डब्बा और बर्फ़ हटाने वाला उपकरण था। मिसेज़ सेन एलियट को बताती कि उसे अपार्टमेंट में अकेला छोड़ना उन्हें अच्छा नहीं लगता। लेकिन एलियट को पता था कि ऐसा करते हुए वह डरती थी, इसलिए उसे अपने पास बिठाती थी। वह गाड़ी चालू करने की आवाज़ से बेहद डर जाती थी, इंजन को चालू रखने के लिए जब अपने चप्पल वाले पैर से एक्सीलेटर दबाती तब आवाज़ से बचने के लिए दोनों हाथ अपने कानों पर रख लेती।

"मिस्टर सेन कहते हैं कि एक बार मुझे जब लाइसेंस मिल जाएगा तब सब कुछ ठीक हो जाएगा। तुम्हें क्या लगता है, एलियट ? सब ठीक हो जाएगा ?"

"फिर आप कई जगह जा सकती हैं?" एलियट ने सुझाव दिया,

"आप कहीं भी जा सकती हैं।"

"क्या मैं ड्राइव करते हुए कलकत्ते तक जा सकती हूँ ? कितना समय लगेगा एलियट ? दस हज़ार मील, पचास मील प्रति घंटे की रफ़्तार से ?"

एलियट मन में कोई हिसाब नहीं लगा पाया। वह मिसेज़ सेन को ड्राइविंग सीट, रियर व्यू मिरर, अपने सिर के ऊपर सनग्लासेज़ को ठीक करते देख रहा था। उसने रेडियो पर एक स्टेशन लगाया जहाँ एक सिम्फ़नी बज रही थी। "यह बीथोवन है न!" उसने एक बार पूछा, संगीतकार के नाम के पहले हिस्से को 'बे' न कहकर 'बी' कह रही थी, 'बी'– (मधुमक्खी वाली)। उसने अपने पास की खिड़की का शीशा नीचे कर लिया और एलियट को भी ऐसा ही करने को कहा। अंत में उसने अपने पैर ब्रेक पैडल पर दबाए, ऑटोमेटिक गियर को इस तरह बदला मानो वह कोई भरपूर लीक करने वाली क़लम हो। और पार्किंग वाली जगह से इंच-पर-इंच बाहर निकलकर उसने अपार्टमेंट कॉम्प्लेक्स का एक चक्कर लगाया और दोबारा एक बार और लगाया।

"मैं कैसा कर रही हूँ, एलियट ? मैं पास हो जाऊँगी ?"

वह लगातार घबराई हुई थी। वह बिना किसी चेतावनी के रेडियो पर कुछ सुनने के लिए या सड़क पर कुछ या कुछ भी देखने के लिए एकाएक कार को रोक देती थी। अगर किसी आदमी को सड़क पार करता देखती तो हाथ हिला देती। अगर किसी चिड़िया को बीस फुट की दूरी से भी देख लेती, वह अपनी तर्जनी से हॉर्न बजाती और उसके उड़ जाने का इंतज़ार करती। वह बताती, भारत में, ड्राइवर बायीं ओर नहीं, दायीं ओर बैठता है। धीरे-धीरे वे रेंगते हुए झूले, लाउंड्री बिल्डिंग, गहरे हरे कूड़ेदान, खड़ी कारों की क़तारों को पार करते। हर बार जब वे पाईन के पेड़ों के झुंड के पास पहुँचते, जहाँ कोलतार की छोटी गोल सड़क मुख्य सड़क से मिलती थी, वहाँ वह आगे झुककर अपना सारा भार ब्रेक पर डाल देती क्योंकि तब कार तेज़ी से बढ़ रहा होता था।

यह एक ठोस पीले रंग की पट्टी से रँगी सँकरी सड़क थी, जिसके दोनों ओर एक ही दिशा में एक लेन वाली ट्रैफ़िक थी।

"यह असंभव है, एलियट, मैं वहाँ कैसे जा सकती हूँ ?"

"आपको तब तक इंतज़ार करना पड़ेगा जब तक कोई आ न रहा हो।"

"कोई धीरे क्यों नहीं चल रहा ?"

"अब कोई नहीं आ रहा।"

"लेकिन उस कार का क्या, जो बायीं ओर से आ रही है, तुमने देखा ? और देखो उसके पीछे ट्रक है। वैसे भी मुझे मुख्य सड़क पर मिस्टर सेन के बिना चलाने की अनुमति नहीं है।"

"आपको मोड़ना है और तेज़ी से रफ़्तार बढ़ानी है," एलियट ने कहा। इसी तरह उसकी माँ भी करती थी ताकि इसके लिए उसे कुछ सोचना ही न पड़े हो। यह कितना आसान होता था जब वह अपनी माँ के बग़ल में बैठा होता था, शाम में वापस 'बीच हाउस' लौटने के समय। तब सड़कें केवल सड़कें होती थीं दूसरी कारें बस नज़ारे भर का हिस्सा लगतीं। लेकिन जब वह मिसेज़ सेन के साथ, शरद की धूप में, जो पेड़ो से छनकर बिना किसी गरमाहट के चमकती थी, वह देखता कि कैसे उन्हीं कारों का काफ़िला उनकी उँगलियों के पोरों को ज़र्द कर देता, कलाइयाँ काँपने लगतीं और उनकी अंग्रेज़ी लड़खड़ाने लगती। "सभी लोग, ये लोग, अपनी ही दुनिया में मस्त हैं।"

एलियट ने जाना, दो चीज़ें, मिसेज़ सेन को खुश कर देती थीं। एक उनके परिवार से जब कोई चिट्ठी आती थी। ड्राइविंग के अभ्यास के बाद मेलबॉक्स देखना उसकी आदत थी। वह बॉक्स खोलती, लेकिन वह एलियट को अंदर झाँकने कहती, यह बताकर कि क्या देखना है। और तब वह अपनी आँखों को बंद कर उसे अपने हाथों से ढँक लेतीं, तब तक वह मिस्टर सेन के नाम से आए हुए बिलों और पत्रिकाओं के बीच ढूँढ़ता रहता। पहली बार मिसेज़ सेन की चिंता एलियट को कल्पना से बाहर लगी; शहर में उसकी माँ का भी एक पी.ओ. बॉक्स था, वह मेल देखने में इतनी अनियमित थी कि एक बार तीन दिनों तक उनकी बिजली कटी रही। मिसेज़ सेन के यहाँ हफ़्तों गुज़र गए जब उसे एक नीला एयरोग्राम मिला था– छूने में दानेदार, टिकट से पटे, जिसमें एक घुटे सिर वाले आदमी को चरखा चलाते दिखाया गया था, और जो पोस्टमार्क्स से काला पड़ गया था।

"पहली बार उसने उसे गले से लगाया था और उसका इसका चेहरा उसकी साड़ी से जा लगा था, जिसमें 'नेप्थलिन' और 'क्यूमिन' की बू बसी हुई थी। उसने उसके हाथ से चिट्ठी ले ली।

जैसे ही वे अपार्टमेंट के अंदर आए उसने अपनी एक चप्पल इधर उछाली और दूसरी उधर, फिर अपने बालों से वायर पिन निकाला और तीन बार में एयरोग्राम के ऊपरी हिस्से में लम्बा चीरा लगाया। उसकी आँखें तेज़ी से आगे-पीछे हो रही थीं, जब वह उसे पढ़ रही थी। जैसे ही उसने ख़त्म किया, टेलिफोन ढँकनेवाा कसीदा कढ़ा कपड़ा एक तरफ़ हटाया और डायल कर पूछा, "जी, मिस्टर सेन से बात हो सकती है? मैं मिसेज़ सेन बोल रही हूँ, बहुत ज़रूरी है।"

उसके बाद उसने अपनी ज़ुबान में बातें कीं, एलियट के कानों को यह आवाज़ तेज़, तल्ख़ और खुशी से भरी लग रही थी। यह स्पष्ट था कि वह चिट्ठी की लिखी बातें शब्दशः पढ़ रही थी। जब वह पढ़ रही थी तब उसकी आवाज़ कुछ ज़्यादा ही ऊँची थी और उसकी तीव्रता में उतार-चढ़ाव था। वैसे तो वह उसके सामने साक्षात् थी, लेकिन एलियट को यही महसूस हुआ कि मिसेज़ सेन उस आडू रंग की क़ालीन वाले कमरे में मौजूद नहीं।

उसके बाद वे दोनों अपार्टमेंट उसकी खुशी को समाने के लिए छोटे पड़ गये। उन्होंने मुख्य सड़क पार की और युनिवर्सिटी चौक तक पैदल आए, जहाँ पत्थर की मीनार पर हर घंटे घंटियाँ बजा करती थीं। वे स्टूडेंट यूनियन से होते हुए, कैफ़ेटेरिया के काउंटर के पास साथ-साथ ट्रे लेकर आराम से आए और गोलाकार मेज़ों पर बतियाते छात्रों के बीच कार्डबोर्ड के प्याले में ढेर सारा फ्रेंच फ्राई खाया। एलियट ने पेपर कप में सोडा लिया, मिसेज़ सेन ने दूध और क्रीम के साथ डिप-चाय पी। खाने के बाद वे आर्ट बिल्डिंग घूमने गए, गीली पेंट और मिट्टी की खुशबू से अटे सर्द गलियारे में कलाकृतियाँ और रेशम के परदे देखे। वे गणित विभाग की बिल्डिंग से भी गुजरे जहाँ मिस्टर सेन पढ़ाते थे।

अंत में वे शोर-शराबे वाले, क्लोरीन की महक वाली एथलेटिक बिल्डिंग गए और वहाँ से चौथे तल्ले की बड़ी-सी खिड़की से, रोशनी की चौंध भरे तरणताल में तैराकों को एक छोर से दूसरे छोर तक तैरते हुए देखा।

मिसेज़ सेन ने अपने पर्स से भारत से आया हुआ एयरोग्राम निकाला और आगे-पीछे देखा। फिर उसे खोला और मन ही मन दोबारा पढ़ा, बार-बार उसाँसें लेते हुए। जब पढ़ लिया तब कुछ देर तक तैराकों को देखती रही।

"मेरी बहन को बेटी हुई है। मैं उसे जब देख पाऊँगी जो मिस्टर सेन की छुट्टी पर निर्भर करता है और तब वह तीन साल की हो चुकी होगी। उसकी अपनी मौसी उसके लिए अजनबी होगी। अगर हम एक ट्रेन में आस-पास भी बैठें, तब भी वह मुझे चेहरे से नहीं पहचान पाएगी।" उसने चिट्ठी रखी और अपना हाथ एलियट के सिर पर फेरा और पूछा– "इन दिनों, जब तुम मेरे पास हो, तुम्हें अपनी माँ की याद आती है, एलियट ?"

यह बात उसके दिमाग़ में अभी आयी ही नहीं।

"तुम्हे ज़रूर आती होगी। मुझे अफ़सोस होता है, जब मैं तुम्हारे बारे में सोचती हूँ। कैसे एक बच्चा पूरे दिन अपनी माँ से अलग रहता है ?"

"रात में हम मिलते तो हैं।"

"जब मैं तुम्हारी उम्र की थी, तब मुझे पता कहाँ था कि एक दिन मैं इतनी दूर हो जाऊँगी। तुम ज़्यादा समझदार हो एलियट। तुमने पहले ही वह सब जान लिया, जो आज नहीं तो कल हो सकता है।

दूसरी बात, जिससे मिसेज़ सेन खुश हो जातीं वह थी -समुद्री मछली। वह हमेशा पूरी की पूरी मछली चाहती थीं। शेलफ़िश या फिलेट्स नहीं, जिसे एलियट की माँ ने पिछले महीने की एक रात को पकाया था, जब उसने अपनी दफ़्तर के एक आदमी को रात के खाने पर बुलाया था। उस आदमी ने उसकी माँ के बेडरूम में रात बिताई थी और एलियट ने उसे दोबारा नहीं देखा था। एक शाम को जब एलियट की माँ उसे लेने आई, मिसेज़ सेन ने उसे टूना (एक ज़ायकेदार मछली) का कोफ़्ता खाने को दिया। यह बताते हुए कि कोफ़्ता 'भोटकी' मछली का होना चाहिए था। "यह बहुत ही निराशाजनक है।" मिसेज़

सेन ने दूसरे शब्द पर ज़ोर देते हुए खेद जताया। "महासागर से इतने नज़दीक रहने पर भी जी भर कर मछली नहीं मिल पाती।" गर्मियों में, वह खुद समुद्र किनारे वाले बाज़ार में जाना पसंद करती थी, उसने बताया। उसने फिर कहा, यहाँ की मछलियों में वह स्वाद नहीं है जो भारत की मछलियों में है, और वे कम-से-कम ताज़ी होती थीं। अब ठंड बढ़ती जा रही है, नावें हमेशा जाती नहीं है और कभी-कभी पूरे हफ़्ते साबुत मछली नहीं मिलती।

"आप सुपर मार्केट में कोशिश कर लीजिए," उसकी माँ ने सुझाव दिया था।

मिसेज़ सेन ने अपना सिर हिलाया। "सुपर मार्केट में मुझे बत्तीस बिल्लियों को खिलाने के लिए बत्तीस टिन मछलियाँ मिल सकती हैं। लेकिन मुझे पूरी-की-पूरी मछली कभी नहीं मिली। एक बार भी नहीं।" मिसेज़ सेन ने बताया कि वह दिन में दो बार मछली खाते हुए बड़ी हुई है। उसने आगे जोड़ा कि कलकत्ते में लोग दिन की शुरूआत मछली से करते हैं और अंत भी मछली खाकर सोने से। अगर आप भाग्यशाली हों तो स्कूल के बाद नाश्ते में भी मछली मिल जाती है। वे इसकी पूँछ, अंडे यहाँ तक मूड़ा भी खाते हैं। वे सब किसी भी मार्केट में मिल जाते थे, सुबह से लेकर आधी रात तक। आपको इतना भर करना होता था, बस किसी समय घर से निकलिए, थोड़ी दूर चलिए और आप पहुँच गए।

हर कुछ दिन पर मिसेज़ सेन 'येलो पेजेज' खोलतीं, उस नंबर पर डायल करती जिसके किनारे पर उसने टिक लगाई होती थी और पूछती कि क्या उनके पास कोई साबूत मछली है। अगर ऐसा होता, तब वह अपने आने तक उसे न बेचने का अनुरोध करती। "सेन के लिए, 'एस', जैसा सैम में है, एन. जैसा न्यूयॉर्क में, मिस्टर सेन वहाँ लेने आएँगे।" तब वह मिस्टर सेन को युनिवर्सिटी फ़ोन करती। थोड़ी देर में मिस्टर सेन आ जाते। वे एलियट का सिर तो थपथपाते थे, लेकिन मिसेज़ सेन को चूमते नहीं थे। जाने से पहले वे फ़ोर्मिका मेज़ पर अपनी चिट्ठियाँ पढ़ते और चाय पीते। आधे घंटे बाद वे लौटते, पेपर बैग लिए हुए, जिस पर मुस्कुराता हुआ लॉबस्टर बना होता। इसे मिसेज़ सेन को

सौंपकर वे अपनी शाम की क्लास लेने के लिए वापस युनिवर्सिटी लौट आते। एक दिन, जब वे मिसेज़ सेन को थैला दे रहे थे, तब उन्होंने कहा, "कुछ दिनों के लिए मछली बंद। फ्रिज़र में चिकन पड़ा है उसे पकाओ। मुझे दफ़्तर के लिए कुछ और घंटे चाहिए।

अगले कुछ दिनों तक, मिसेज़ सेन मछली बाज़ार को फ़ोन करने के बदले मुर्ग़ी की टाँगें किचनसिंक में रखने के बाद फिर अपने हँसुए से काटती। एक दिन उसने हरे सेम और टीन वाली सारडाईन का सालन (स्ट्यू) बनाया। लेकिन अगले हफ़्ते उस आदमी ने, जो मछली बाज़ार चलाता था, मिसेज़ सेन को फ़ोन किया। उसने सोचा कि उन्हें मछली चाहिए होती है, इसलिए उसने बताया कि वह दिन के अंत तक उनके नाम पर मछली बचा रखेगा। मिसेज़ सेन फूली न समाई। "कितना भला आदमी है, है न एलियट ? उस आदमी ने टेलिफ़ोन बुक से मेरा नाम ढूँढ़ा। उसने बताया, वहाँ केवल एक सेन था। तुम्हें पता है, कलकत्ता के फ़ोन बुक में कितने सेन हैं ?"

उसने एलियट को अपने जूते और जैकेट पहनने को कहा और तब उसने मिस्टर सेन को युनिवर्सिटी फ़ोन किया। एलियट ने अपने जूते बाँधे और उसकी चप्पलों की क़तार में से चप्पलें चुनने में उसकी सहायता करने इंतज़ार करता रहा।

कुछ देर बाद मिसेज़ सेन का नाम लेकर उसने पुकारा। जब मिसेज़ सेन ने कोई जवाब नहीं दिया, तब उसने अपने जूते खोले और वापस बैठक में आया। वहाँ वह सोफ़े पर बैठी रो रही थी। उसने अपने हाथों में अपना चेहरा थाम रखा था और उसकी उँगलियों से आँसू टपक रहे थे। उनके बीच वह मिस्टर सेन की किसी मीटिंग के बारे में बुदबुदा रही थी, जिसमें उन्हें जाना था। वह धीरे से उठी और टेलिफ़ोन वाले कपड़े को ठीक किया। एलियट पहली बार अपने जूते में आडू रंग की क़ालीन के ऊपर होते हुए उसके पीछे गया। उसने उसे ग़ौर से देखा। उसकी निचली पलकें सूज गई थीं। उसमें हल्का-सा गुलाबी उभर आया था।" मुझे बताओ, एलियट क्या मैंने पूछ कर अपराध किया ?"

इसके पहले कि वह जवाब दे, वह उसका हाथ पकड़कर उसे बेडरूम ले गयी, जिसका दरवाज़ा आम तौर पर बंद रहता था। बेड के अलावा, जिसपर हेडबोर्ड नहीं था, उस कमरे केवल कुछ ही दूसरी चीज़ें थीं। एक साइड टेबल था, जिस पर टेलिफ़ोन रखा था, एक इस्तरी करने का बोर्ड और एक दराज़ वाली लिखने की मेज़। उसने ब्यूरो के दराज़ और आलमारी के दरवाज़े को जोर से खोला। उसमें सोने और चाँदी के तारों से जड़ी, हर संभव बुनावट और रंग की साड़ियाँ अटी पड़ी थीं। कुछ तो पारदर्शी थीं, बेहद बारीक, कुछ पर्दे-जैसी मोटी, सोने या चाँदी की किनारी जड़ी। आलमारी में वे हैंगर से टँगी थीं, दराज़ में तह करके या कसकर बँधी मोटी कुंडली की तरह। उसने इन्हें दराज़ से छाँटा और बेड के किनारे पड़ी साड़ियों को फैला दिया। "इसे मैंने कभी भी पहना है ? और इसे? इसे? वह दराज में से एक-एक करके साड़ी उछालती रही, फिर बहुत सारे हैंगर में टँगी साड़ियाँ निकाली। बिस्तर पर जैसे उलझे हुए कपड़ों का ढेर दिख रहा था। पूरा कमरा नेप्थलिन की तेज़ बू से भर गया था।

"'तस्वीरें भेजो," वे लिखते हैं "अपनी नई ज़िन्दगी की तस्वीरे भेजो।" मैं उन्हें कौन-सी तस्वीर भेजूँ ?" वह थक कर बिस्तर के किनारे बैठ गई, जहाँ अब शायद ही उसके लिए कोई जगह बची हो। "एलियट, वे समझते हैं कि मैं रानी की तरह जी रही हूँ।" उसने कमरे की सूनी दीवारों की तरफ़ देखा। "वे सोचते हैं कि मैं बटन दबाती हूँ और घर साफ़ हो जाता है। उन्हें लगता है कि मैं महल में रहती हूँ।"

फ़ोन की घंटी बजी। बेड के किनारे लगे एक्सटेंसन फ़ोन को मिसेज़ सेन ने उठाने के पहले इसे कई बार बजने दिया।

साड़ी के आँचल से अपने चेहरे को पोंछते हुए उसकी बातचीत से ऐसा लग रहा था कि वह बस पूछी गइ बातों का जवाब भर दे रही थी। जब वह फ़ोन पर बात कर उठी तब उसने साड़ियों को बिना तह किए कबर्ड में ठूँस दिया। तब वह और एलियट ने अपने जूते पहने और कार तक गए, जहाँ वे मिस्टर सेन से मिलने का इंतज़ार कर रहे थे।

"तुमने आज गाड़ी क्यों नहीं चलायी ?" कार के बोनेट को अपनी उँगलियों से बजाते हुए मिस्टर सेन ने पूछा। वे हमेशा अंग्रेज़ी में बात करते थे जब एलियट होता था।

"आज नहीं। किसी और दिन।"

"तुम कैसे उम्मीद करती हो कि तुम टेस्ट पास कर पाओगी, अगर तुम सड़क पर दूसरी कारों के साथ इसे चलाने से मना करती रही ?"

"एलियट यहीं है आज।"

"यह हर दिन यहीं होगा। यह तुम्हारी भलाई के लिए है। एलियट, मिसेज़ सेन को बताओ यह उनके भले के लिए है।"

उसने मना कर दिया।

वे चुपचाप जा रहे थे, उसी रोड से जिस पर एलियट और उसकी माँ हर शाम वापस बीच हाउस पर लौटते थे। लेकिन मिस्टर और मिसेज़ सेन की कार की पिछली सीट पर की सवारी थोड़ी अलग लग रही थी, और उसने सामान्य से ज़्यादा समय लिया।

'गल्स' (घोमरा) की नीरस कलरव से हर सुबह उसकी नींद खुलती थी, आज उसे रोमांचित कर रहीं थीं जब वे तेज़ आवाज़ के साथ आकाश के आर-पार डूब उतरा रहे थे। वे एक किनारे से दूसरे किनारे पार करते जा रहे थे। इधर वे दुकानें अब बंद हो चुकी थीं, जो गर्मियों में जमे हुए 'लेमोनेड' और 'क्वाहॉग्स' बेचते थे। केवल एक दुकान खुली थी और वह मछली की थी।

मिसेज़ सेन ने दरवाज़ा खोला और मिस्टर सेन की तरफ़ मुड़ी, जिन्होंने अभी तक अपनी सीट बेल्ट नहीं खोली थी, "आप आ रहे हैं न !"

मिस्टर सेन ने अपने बटुए से कुछ पैसे निकाल कर दिए। "बीस मिनट बाद मेरी मीटिंग है", उन्होंने कहा। डैशबोर्ड पर नज़र जमाते हुए उन्होंने कहा, "कृपा करके जितनी जल्दी हो सके, करना।"

उस नम और सर्द पड़ी छोटी-सी दुकान में एलियट उसके साथ गया, जिसकी दीवारें जालों, स्टारफ़िश और प्लावकों से सजी थी। काउंटर के पास पर्यटकों की भीड़ लगी थी। अपने गले में कैमरे लटकाए, कुछ मरे हुए शेलफ़िश

के नमूने ले रहे थे, दूसरे उत्तरी अटलांटिक' में पाए जानेवाली मछलियों की पचास क़िस्मों के लंबे-चौड़े चार्ट को देख रहे थे। मिसेज़ सेन ने काउंटर वाली मशीन से टिकट लिया और क़तार में इंतज़ार करने लगी। एलियट लॉबस्टर के पास खड़ा था, जो अपने अंधेरे टैंक में एक दूसरे के ऊपर चल रहे थे। उनके पंजे पीले रंग के रबर बैंड से बँधे हुए थे। क़तार में जब मिसेज़ सेन की बारी आयी तब एलियट उन्हें पीले दाँत और चमकते लाल चेहरे वाले एक आदमी के साथ, जिसने काला रबर का एप्रन पहन रखा था, हँसते हुए बतिया रही थी। दोनों में से एक हाथ में उसने 'मैकरल' को पूँछ से पकड़ रखा था।

"आपको पक्का यक़ीन है, जो मछली आप मुझे दे रहे हैं वे बिल्कुल ताज़ी है?"

"जो भी ताज़ी होगीं उसका जवाब वे ख़ुद दे देगी।"

तराजू के काँटे के कंपन ने अपना फ़ैसला सुना दिया।

"मिसेज़ सेन क्या आपको यह साफ़ कटा चाहिए ?"

उसने हामी भरी। "कृपा करके इसका 'मुड़ा' रहने दीजिएगा।"

"आपके घर पर बिल्लियाँ हैं ?"

"बिल्लियाँ नहीं। सिर्फ़ एक पतिदेव हैं।"

बाद में, अपार्टमेंट में, उसने अलमारी से हँसुआ निकाला, क़ालीन पर अख़बार बिछाया और अपने ख़ज़ाने को निहारा। पैकेट से एक-एक कर उसने सारे टुकड़ों को निकाला, आँसदार और ख़ून से रँगे। उसने पूँछ काटी, पेट को फाड़ा, उसके अंगों को छाँटकर बाहर निकाला। कैंची से उसने सुफ़ना काट निकाला फिर गलफड़े के नीचे उँगली डालकर उठाया। उसका लाल रंग इतना चटकीला था कि उसके सामने उसका सिंदूर फीका पड़ गया। धारीदार शरीर को, उसने दोनों छोर से पकड़ रखा था और हँसुए से एक अंतराल पर 'वी'-आकार में काटती जा रही थी।

"आप ऐसा क्यों कर रही है ?" एलियट ने पूछा।

"यह देखने के लिए कि कुल कितने टुकड़े हुए। अगर मैं ठीक से काटूँ, इस मछली से मुझे तीन वक़्त का खाना मिल सकता है।" उसने मूड़े को काटकर उसे एक छोटे प्लेट में रखा।

नवंबर में ढेर सारे ऐसे दिन भी आए जब मिसेज़ सेन ने गाड़ी चलाने का अभ्यास करने से मना कर दिया था। हँसुआ कबर्ड से कभी नहीं निकला, ज़मीन पर अख़बार नहीं बिछाए गए। उसने मछली वाले को फ़ोन नहीं किया, न ही उसने चिकन बनाया।

वह चुपचाप एलियट के लिए मूँगफली के मक्खन वाला क्रैकर बनाती और फिर बैठी-बैठी कर जूते के डब्बों से पुरानी चिट्ठियाँ निकालकर पढ़ती। जब एलियट के जाने का समय होता वह उसके चीजों को इकट्ठा कर देती। वह उसकी माँ को न सोफ़े पर बैठने को कहती और न ही कुछ खाने के लिए पूछती। अंत में कार में बैठी उसकी माँ ने जब उससे पूछा कि क्या उसने मिसेज़ सेन के बदले हुए व्यवहार पर ग़ौर किया तो उसने बताया कि उसे ऐसा नहीं लगा। उसने उसे यह नहीं बताया कि अपार्टमेंट में जब मिसेज़ सेन चहलक़दमी करती हैं तो प्लास्टिक से ढँके लैंपशेड को ऐसे घूरती है मानो पहली बार देखा हो। उसने उसे यह भी नहीं बताया कि वह टेलिविज़न चलाती है लेकिन कभी देखती नहीं। या वह अपने लिए चाय बनाती है, लेकिन वह कॉफी मेज़ पर पड़ी-पड़ी ठंडी हो जाती है। एक दिन उसने कोई एक टेप चलायी, जिसे वह 'रागा' कह रही थी; इसकी आवाज़ थोड़ी-बहुत वैसी लग रही थी जैसे कोई वायलिन को पहले बहुत धीरे और फिर बहुत तेज़ी से बजा रहा हो। मिसेज़ सेन ने बताया इसे दिन के अंत में सुना जाता है, जब सूर्यास्त हो रहा होता है। लगभग एक घंटे जब तक संगीत बजता रहा, वह आँखें बंद कर सोफे पर बैठी रही। उसके बाद उसने कहा, "यह तुम्हारे बीथोवन से भी ज़्यादा उदासीभरा है, है न! दूसरे दिन उसने एक कैसेट चलाया, जिसमें लोग उसकी भाषा में बात कर रहे थे। उसने एलियट को बताया यह एक विदाई-समारोह का टेप है, जिसे उसके परिवार वालों ने उसके लिए आयोजित किया था। इसमें एक-एक कर आवाज़ें आतीं, लोग हँसते और अपनी बात कहते। मिसेज़ सेन हर एक

बोलनेवाले को पहचानती है। "मेरे सँझले चाचा, मेरा चचेरा भाई, मेरे पिता, मेरे दादा जी।" एक बोलनेवाले ने एक गाना गाया। दूसरे ने एक कविता सुनाई। हर पंक्ति के बीच थोड़ा विराम होता था, और इस विराम के दौरान मिसेज़ सेन एलियट के लिए अनुवाद कर रहीं थीं– खस्सी का दाम दो रुपये बढ़ गया है। बाज़ार के आम बहुत मीठे नहीं हैं। कॉलेज स्ट्रीट पर पानी भर गया है।" उसने टेप बंद कर दिया। "जिस दिन मैंने भारत छोड़ा था, वहाँ ये सब हुआ था।" अगले दिन उसने फिर से उसी कैसेट को पूरा बजाया। इस बार, जब उसके दादा जी बोल रहे थे, उसने टेप बंद कर दिया। उसने एलियट को बताया कि उसे पिछले सप्ताहांत एक चिट्ठी मिली थी। उसके दादा जी अब नहीं रहे।

एक सप्ताह के बाद मिसेज़ सेन ने दोबारा खाना बनाना शुरू कर दिया। एक दिन जब वह बैठक की ज़मीन पर बैठकर बंदगोभी कतर रही थीं तब मिस्टर सेन ने फ़ोन किया। वह एलियट और मिसेज़ सेन को समुद्रतट पर ले जाना चाहते थे। इस अवसर पर मिसेज़ सेन ने लाल साड़ी पहनी थी और लाल लिपस्टिक लगायी थी; उसने माँग में फिर से सिंदूर डाले और बालों को फिर से सँवारा। उसने अपनी टोढ़ी के नीचे स्कार्फ़ बाँधा, को सिर के ऊपर धूपचश्मा जमाया और अपने पर्स में कैमरा भी रखा। जब मिस्टर सेन गाड़ी पार्किंग से बाहर निकाल रहे थे तब अपनी बाँह आगे की सीट के यूँ रखी थी, जिससे कुछ ऐसा दिखे मानो उन्होंने अपनी बाँह से मिसेज़ सेन को घेर रखा हो। "इस टॉप कोट के लिहाज़ से तो सर्दी बढ़ती ही जा रही है।" बात-चीत के क्रम में उसने उससे कहा। "हमें तुम्हारे लिए कुछ और गरम कपड़े लेने चाहिए।" दूकान पर उन्होंने मैकरल, बटर फ़िश और सी-बास लिया। इस बार मिस्टर सेन उसके साथ उसी दुकान पर आए। अबकी मिस्टर सेन ही थी, जिन्होंने पूछा कि मछली ताज़ी है या नहीं और उसे इस तरह से या उस तरह से काटे। उन्होंने इतनी सारी मछली ली कि एलियट को भी एक थैला पकड़ना पड़ा। थैलों को ट्रंक में डालने के बाद, मिस्टर सेन ने घोषणा की कि उन्हें भूख लगी है, और मिसेज़ सेन ने सहमति जताई। इसलिए वे सड़क पार कर एक रेस्टोरेंट में गए, जहाँ खाना परोसने की खिड़की अभी भी खुली थी। वे एक पिकनिक टेबल पर बैठे

और 'क्लैम केक' की दो बड़ी प्यालियाँ मँगाकर खाईं। मिसेज़ सेन ने अपने वाले केक पर ढेर सारा टाबास्को सॉस और काली मिर्च डाली। "पकौड़े जैसा, है न !" उसका चेहरा शर्म से लाल हो गया, उसकी लिपस्टिक फीकी पड़ गयी। और मिस्टर सेन जो कुछ भी कहते, उस पर वह हँसती रही।

रेस्टोरेंट के पीछे छोटा-सा बीच था। जब वे खा चुके, उसके बाद कुछ देर तक तट पर टहलते रहे। वहाँ हवा इतनी तेज़ थी कि उन्हें कुछ पीछे हटकर टहलना पड़ा। मिसेज़ सेन ने पानी की तरफ़ इशारा किया और बताया कि किसी खास पल में, हर लहर टँगनी पर सूखती साड़ी जैसी जान पड़ती है। "असंभव!" अंत में वह चिल्लाई और जब हँसते हुए वह पलटी तो उसकी आँखें नम दिख रही थीं।

"मैं हिल नहीं पा रही।" इसके बावजूद उसने रेत पर खड़े एलियट और मिस्टर सेन की तस्वीर खींची। मिस्टरसेन को कैमरा थमतो हुए और एलियट को अपने चेकवाले कोट से सटाते हुए उसने कहा, "एक हमारा भी।" बाद में एलियट को कैमरा दिया गया। मिस्टर सेन ने कहा, "इसे सीधा पकड़ो!" एलियट कैमरे की छोटी-सी खिड़की से देखते हुए मिस्टर और मिसेज़ सेन के एक दूसरे के पास आने का इंतज़ार कर रहा था। लेकिन वे नहीं आए। उन्होंने न हाथ थामा और न ही एक दूसरे के कमर में हाथ डाला। दोनों मुँह बंद कर मुस्कुरा रहे थे, हवा में बग़ल झांकते हुए। मिसेज़ सेन की साड़ी कोट के अंदर आग की लपट जैसी लहरा रही थी।

हवा और 'क्लैमकेक' को झेलने के बाद कार के अंदर की गरमाहट से थोड़ी राहत मिली। उन्होंने रेत के टीले, दूर से दिखनेवाले जहाज़ों, लाइट हाउस, आड़ू और बैंगनी रंग के बादलों का देखा और उन्हें सराहा। कुछ देर के बाद मिस्टर सेन ने गाड़ी धीमी की और सड़क के एक किनारे पर रोक दिया।

"क्या हुआ?" मिसेज़ सेन ने पूछा।

"आज तुम इसे चला कर घर तक ले जाओगी।"

"नहीं, आज नहीं।"

"नहीं, आज ही।" मिस्टर सेन कार से उतरे और मिसेज़ सेन की तरफ़ वाला दरवाज़ा खोल दिया। तट से टकराती हुई लहरों की आवाज़ के साथ एक तेज़ हवा का झोंका कार के अंदर घुस आया। अंत में वह खिसकती हुई ड्राइवर के सीट पर आ गई। लेकिन उसने अपनी साड़ी और धूपचश्मे को ठीक करने में काफ़ी समय लगाया। एलियट ने मुड़कर पीछे वाली खिड़की से देखा। सड़क ख़ाली थी। मिसेज़ सेन ने रेडियो जा दिया। कार में वायलिन का संगीत तैरने लगा।

"इसकी तो कोई ज़रूरत नहीं है," मिस्टर सेन ने उसे बंद करते हुए कहा।

"इससे मुझे एकाग्र होने में सहूलियत होती है।" मिसेज़ सेन ने कहा, और फ़िर से रेडियो चला दिया।

मिस्टर सेन ने हिदायत दी, "अपना सिग्नल दो।"

"मुझे पता है मुझे क्या करना है।"

कुछ मील तक वह ठीक थी। हालाँकि वह उन कारों से बहुत धीरे थी, जो उसे पार कर आगे निकल गयीं। लेकिन जब शहर आने को हुआ और तार पर ट्रैफ़िक लाइट धुँधले तौर पर कुछ दूरी पर दिखने लगे, वह और धीरे हो गयी।

"अपनी लेन बदलो," मिस्टर सेन ने कहा। "तुम्हें गोलचक्कर पर बाएँ से मुड़ना होगा।

मिसेज़ सेन ने ऐसा नहीं किया।

"मैं कह रहा हूँ न तुम्हें, लेन बदलो!" मिस्टर सेन ने रेडियो बंद कर दिया। "तुम्हें सुनाई दे रहा है, मैं क्या कह रहा हूँ?"

एक कार ने हॉर्न दिया, फिर दूसरे ने। वह बदले में ज़ोर से बजाने लगी, गाड़ी रोकी, और फिर बिना सिग्नल दिए सड़क के किनारे लगा दिया। अपने माथे को स्टीयरिंग व्हील के ऊपर टिकाते हुए उसने कहा, "अब और नहीं।"

"मुझे नफ़रत है। मुझे गाड़ी चलाने से नफ़रत है। मैं और नहीं चला सकती।"

इसके बाद उसने गाड़ी चलाना बंद कर दिया। अगली बार जब मछली वाले ने फ़ोन किया, तब उसने मिस्टर सेन को उनके दफ़्तर फोन नहीं किया। उसने कुछ नया करने के बारे में सोचा। युनिवर्सिटी और समुद्र तट के बीच हर घंटे एक शहर की बस चलती थी। युनिवर्सिटी के बाद उसके दो पड़ाव थे। पहला एक नर्सिंग होम पर, फिर एक अनाम शॉपिंग प्लाज़ा पर, जिसमें एक किताब, जूते, दवाई, पालतू जानवरों और रेकॉर्ड बेचने की दुकानें थीं। पोर्टिको के बेंचों पर बड़े बटनों वाली घुटने तक की ओवरकोट पहने, लॉजेंज़ेज खाते नर्सिंग होम की बूढ़ी औरतें जोड़ों में बैठीं थीं।

जब वे बस में बैठे थे तब मिसेज़ सेन ने उससे पूछा, "एलियट, तुम्हारी माँ जब बूढ़ी हो जाएगी तब क्या तुम उसे नर्सिंग होम में डाल दोगे ?"

"हो सकता है," उसने कहा। "लेकिन मैं हर दिन उससे मिलने जाऊँगा।

"तुम अभी ऐसा कह रहे हो, लेकिन तुम देखना, जब तुम बड़े हो जाओगे तुम्हारी ज़िन्दगी तुम्हें उस मोड़ पर ले जाएगी जिसके बारे में तुम्हें आज नहीं पता।" उसने अपनी उँगलियों पर गिना– "तुम्हारी बीवी होगी और तुम्हारे अपने बच्चे होंगे। उसी समय वे कहीं और घूमने जाना चाहेंगे। भले ही वे कितने ही उदार हों, एक दिन वे तुम्हारी माँ के पास जाने के लिए शिकायत करेंगे। और एक दिन तुम इन सबसे थक जाओगे, एलियट! तुम एक दिन नहीं जाओगे, फिर और दूसरे दिन भी। तब उसे एक लॉजेंज़ेज के पैकेज़ लाने की ख़ातिर भी घिसटते हुए बस से जाना होगा।"

मछली की दुकान पर बर्फ की सिल्ली लगभग ख़ाली थी। लॉबस्टर का टैंक भी, जिसपर ज़ंग लगे हुए दाग़ पानी से दिख रहे थे। एक निशान बता रहा था कि महीने के अंत में दुकान ठंड के चलते बंद हो जाएगी। काउंटर के पीछे बस एक ही नौजवान बंदा काम कर रहा था। उसने मिसेज़ सेन को नहीं पहचाना और उनको उनके नाम से सुरक्षित थैला दे दिया।

"क्या यह साफ़ किया हुआ और छिला हुआ है ?" मिसेज़ सेन ने पूछा।

लड़के ने अपने कंधे उचकाए, "मेरा मालिक पहले ही चला गया। उसने मुझे बस आपको यह थैला दे देने को कहा था।"

पार्किंग वाली जगह में मिसेज़ सेन ने बस-सारणी देखी। अगली बस के लिए उन्हें पैंतालीस मिनट का इंतज़ार करना पड़ सकता था। और तब उन्होंने सड़क पार किया और उसी दुकान के काउंटर से 'क्लैम केक' लिया, जिससे पिछली बार लिया था। वहाँ बैठने की कोई जगह नहीं थी। पिकनिक टेबल अभी इस्तेमाल में नहीं थे और बेंच उल्टी कर उनके ऊपर रखकर बाँध दिए गए थे।

घर लौटते समय बस पर एक बूढ़ी औरत उन पर नज़र टिकाए हुए थी। उसकी आँखें मिसेज़ सेन से एलियट और उसके बाद उनके पैरों के बीचे रखे ख़ून लगे थैले की बीच घूम रहीं थीं। उसने काला ओवरकोट पहन रखा था और उसने अपनी गोद में अपनी गाँठदार, बदरंग हाथों से दवाई की दुकान वाला एक सफ़ेद थैला पकड़ रखा था। दूसरी सवारियों में केवल कॉलेज के दो छात्र थे, लड़का और लड़की। उन्होंने एक जैसे स्वेटशर्ट पहन रखे थे, उनकी उँगलियाँ एक दूसरे से कसी हुई थी, वे पिछली सीट पर मगन बैठे थे। इस ख़ामोशी में एलियट और मिसेज़ सेन ने बैग में बाक़ी बचे 'क्लैम केक खाया। मिसेज़ सेन नैपकिन लेना भूल गयीं थीं, तले हुए टुकड़े उनके मुँह के किनारों पर चिपके हुए थे। जब वे नर्सिंग होम पहुँचे ओवरकोट वाली महिला वहाँ खड़ी हुई। उसने ड्राइवर से कुछ कहा, फिर बस से उतर गयी। ड्राइवर ने अपना सिर घुमाया और मिसेज़ सेन की तरफ़ देखते हुए कहा, "इस बैग में क्या है ?"

मिसेज़ सेन अनमने भाव से देख रही थी।

"अंग्रेज़ी बोल लेती हो ?" बस फिर से रफ़्तार पकड़ रही थी, इस कारण ड्राइवर मिसेज़ सेन और एलियट को बड़े से रियर-व्यू आईने से देखने लगा।

"हाँ, मैं बोल सकती हूँ।"

"तब बैग में क्या है?"

"मछली", मिसेज़ सेन ने जवाब दिया।

"ऐसा लगता है उसकी बू से दूसरे यात्रियों को परेशानी हो रही है। बच्चे शायद तुम्हें खिड़की खोल देना चाहिए या कुछ और।"

कुछ दिनों के बाद एक दोपहर को फ़ोन की घंटी बजी। थोड़ी-बहुत ज़ायकेदार हैलीबुत अभी-अभी नाव से उतरी है। क्या मिसेज़ को उनमें से कुछ

चाहिए ? उसने मिस्टर सेन को फ़ोन लगाया, लेकिन वे अपनी सीट पर नहीं थे। दूसरी बार उसने कोशिश की, फिर तीसरी बार। आख़िरकार वह रसोई गयी और बैठक में हँसुआ, एक एगप्लांट, और कुछ अख़बार लेकर आई। बिना कुछ कहे एलियट ने सोफ़े पर अपनी जगह ले ली और उसे एगप्लांट के तने को काटते हुए देखने लगा। उसने पहले लंबे पतले टुकड़ों में बाँटा फिर छोटे-छोटे चौकोरों में, फिर और छोटे-छोटे टुकड़ों में, चीनी के क्यूब जितने छोटे आकार में।

"मैं उसे डाल कर मछली और केले का बहुत ही स्वादिष्ट स्ट्यू बनानेवाली हूँ।" उसने घोषणा की ।

"बस मुझे बिना कच्चे केले के टुकड़े के करना पड़ेगा।"

"क्या हम मछली लाने जा रहे हैं ?"

"हम मछली लाने जा रहे हैं।"

"क्या मिस्टर सेन हमारे लिए लाने जा रहे हैं ?"

"अपने जूते पहनो!"

बिना सफ़ाई किए ही दोनों अपार्टमेंट से निकल गए। बाहर इतनी सर्दी थी कि एलियट उसकी ठंड अपनी दाँतों पर महसूस कर सकता था। वे कार में बैठ गए, और मिसेज़ सेन ने कोलतार की गोल सड़क के कई चक्कर लगाए। हर बार पाईन के पेड़ के झुण्ड के पास मुख्य सड़क के ट्रैफ़िक को देखने के लिए ठिठकती थी। एलियट को लगा कि जब तक वे मिस्टर सेन का इंतज़ार कर रहे थे तब तक वह बस अभ्यास कर रही है। लेकिन तब उसने संकेत दिया और मुड़ गई।

बहुत जल्द ही दुर्घटना घट गयी। लगभग एक मील के बाद मिसेज़ सेन ने, जब लेना चाहिए था उससे पहले ही बाएँ ले लिया था। और हालाँकि आती हुई कार ने खुद को रास्ते से बिल्कुल मोड़कर बचा लिया था, लेकिन वह हॉर्न की आवाज़ से इतनी घबरा गयी कि उसने गाड़ी पर से अपना नियंत्रण खो दिया और उल्टे कोने पर एक टेलिफ़ोन के खंभे से जा टकराई।

एक पुलिस वाला आया और उसने उसे लाइसेंस दिखाने को कहा, लेकिन उसके पास था नहीं कि वह उसे दिखाए।" मिस्टर सेन युनिवर्सिटी में गणित पढ़ाते हैं।" उसने अपनी सफ़ाई में बस इतना ही कहा।

मामूली-सा नुकसान था। मिसेज़ सेन के होठ कटे, एलियट की पसलियों में हल्का दर्द था और कार के बम्पर को थोड़ा सीधा करना पड़ता। पुलिसवाले ने सोचा मिसेज़ सेन की खोपड़ी भी फूटी है, लेकिन यह केवल सिन्दूर था। मिस्टर सेन जब अपने एक सहयोगी के साथ वहाँ पहुँचे, उन्होंने कुछ फ़ार्म भरने के साथ पुलिस वाले से काफ़ी बातें की। लेकिन जब वे गाड़ी चलाते हुए वापस अपार्टमेंट आए तब उन्होंने मिसेज़ सेन से कुछ नहीं कहा।

जब वे कार से उतरे मिस्टर सेन ने एलियट का सिर थपथपाया। "पुलिसवाला कह रहा था कि तुम बहुत भाग्यशाली हो। बड़े भाग्यवान कि तुम्हें एक खरोंच तक नहीं लगी।"

अपनी चप्पल को उतार उसे बुक केस पर रखने के बाद, मिसेज़ सेन ने हँसुए को वापस रख दिया, जो अभी तक बैठक की फ़र्श पर ही पड़ा था। और एगप्लांट के टुकड़ों और अख़बार को कूड़ेदान में फेंक दिया। उसने एलियट के लिए मूँगफली के मक्खन में एक प्लेट क्रैकर्स बनाए, उसे कॉफी टेबल पर रख दिया और टेलिविज़न चला दिया। "अगर उसे और भूख लगी हो तब उसे फ्रिज़र के डब्बे से एक पॉपसिकल दे दो।" मिस्टर सेन ने कहा, जो फार्मिका टेबल पर बैठकर अपनी चिट्ठियाँ छाँट रहे थे। तब वह अपने बेडरूम में गयी और अंदर से दरवाज़ा बंद कर लिया।

जब एलियट की माँ पौने छह बजे पहुँची, मिस्टर सेन ने दुर्घटना के बारे में उसे बताया और नवंबर के भुगतान की भरपाई से सम्बद्ध एक चेक देने की पेशकश की। जब वह चेक पर लिख रहे थे तब उन्होंने मिसेज़ सेन की तरफ़ से भी माफ़ी माँगी। उन्होंने बताया कि वह आराम कर रही है, हालाँकि एलियट जब बाथरूम गया था, उसने मिसेज़ सेन को रोते हुए सुना था। उसकी माँ व्यवस्था से संतुष्ट थी, और सही मायने में, जब वे घर जा रहे थे तब उसने एलियट के सामने स्वीकार किया कि अब वह राहत महसूस कर रही थी। यह अंतिम दुपहरी

थी, जब एलियट ने मिसेज़ सेन या किसी भी बेबी सिटर के साथ बिताई हो। उसके बाद उसकी माँ ने उसे एक चाबी दे दी थी, जिसे वह एक धागे में अपने गले में पहने हुए था। किसी आपात् स्थिति के मामले में उसे पड़ोसियों को फ़ोन करना था। और स्कूल के बाद अपने बीच हाउस आ जाना था। पहले दिन, जब वह अपना कोट उतार ही रहा था कि फ़ोन की घंटी बजी। यह उसकी माँ थी, जिसने दफ़्तर से उसे फोन किया था। "तुम अब एक बड़े लड़के हो, एलियट", उसने उसे बताया। "तुम ठीक हो ?" एलियट ने रसोई की खिड़की से बाहर, तट को छूकर लौटती हुई लहरों को देखा और कहा कि वह ठीक-ठाक है।

अध्याय : चार

असली दरबान

असली दरबान

सीढ़ियाँ बुहारने वाली बूढ़ी माँ, दो रातों से सोई नहीं थी। अगली सुबह वह अपनी खाट से खटमलों को झाड़ रही थी। एक बार उसने अपने गद्दे को लेटर बाक्स के नीचे झाड़ा, जहाँ वह रहती थी। फिर गली के मुहाने पर झाड़ा, जिससे सब्जियों के छिलके बीन रहे कौए घबराकर अलग-अलग दिशाओं में उड़ गए।

जब वह चौथी मंज़िल के छत पर चढ़ने लगी, तब बूढ़ी माँ ने अपना एक हाथ अपने घुटने पर रखा, जो हर बरसात की शुरूआत में सूज जाता था। इसका मतलब यह होता था कि उसकी बाल्टी, गद्दे, सरकण्डे का ढेर जो उसके लिए झाड़ू का काम करता था, सभी एक साथ उसकी काँख में दबे होते थे। बाद में बूढ़ी माँ को लगता कि वे सीढ़ियाँ और भी ऊँची होती जा रही थीं। उनके ऊपर चढ़ना किसी आम सीढ़ी के ऊपर चढ़ने के बदले किसी बाँस की सीढ़ी पर चढ़ने जैसा होता था। वह चौंसठ साल की थी। उसके सिर पर इतने बाल थे कि उसका जूड़ा अखरोट से ज़्यादा बड़ा नहीं दिखता था। आगे-पीछे, किनारे सभी तरफ़ से वह वैसी ही दुबली-पतली दिखती थी।

लेकिन हाँ, बूढ़ी माँ की जो चीज़ साफ़ तौर पर ज़ाहिर थी, वह थी उसकी आवाज़– दुखों से बोझिल, दही-सी खट्टी, इतनी तेज़ कि नारियल की गरी खुद बाहर निकल आए। इसी आवाज़ के साथ वह दिन में दो बार सीढ़ियों को साफ़ करते समय बँटवारे के बाद कलकत्ते तक आने और उस दौरान अपने साथ हुई तबाही और नुक़सान की कहानी सुनाती रहती थी। उसी समय मची भगदड़ में वह अपने पति और अपनी चार बेटियों से बिछड़ गयी। साथ ही, उसका दो तल्ला मकान, रोजबुड की आलमारी और ढेर सारी संदूक़चियाँ भी वहीं छूट गईं, जिसकी चाबियों का झब्बा आज भी अपनी साड़ी के आँचल में, अपने जीवन की जमा पूँजी के साथ बाँधे हुई थी।

अपनी विपदाओं के अलावा बूढ़ी माँ और जिन चीज़ों के बारे में बताती थी, वे थे उसके अच्छे दिन और जब तक वह दो तल्ले तक पहुँचती तब तक वह अपनी तीसरी बेटी की शादी की रात के व्यंजनों का बखान करते हुए पूरी बिल्डिंग का ध्यान अपनी ओर खींच चुकी होती। "हमने उसकी शादी एक स्कूल के प्रिंसीपल से की थी। चावल को गुलाब जल में पकाया गया था। शहर के मेयर को बुलाया गया था। काँसे की कटोरी में लोगों ने अपने हाथ धोए थे।"

यहाँ वह ठहरती, इतमीनान से साँस लेती, अपनी बाँह के नीचे दबे सामानों को ठीक करती। इस बीच उसे सीढ़ियों के जँगले से तिलचट्टों को भी भगाने का मौक़ा मिल जाता। तब आगे कहती- "सरसों में लिपटे झींगे को केले के पत्ते में लपेटकर पकाया गया था। ऐसा कोई सुस्वादु व्यंजन नहीं था जो न पकाया गया हो। यह हमारे लिए फ़िजूलख़र्ची नहीं थी। हम हफ़्ते में दो बार बकरे का गोश्त खाया करते थे। हमारी मिल्कियत में एक तालाब भी था, मछलियों से भरा।"

अब तक छत से सीढ़ियों पर रोशनी आने लगी थी। हालाँकि अभी सुबह के आठ ही बजे थे, पर धूप इतनी तेज़ थी कि बूढ़ी माँ के पैर के नीचे की सीढ़ी तप रही थी। यह काफ़ी पुरानी इमारत थी, जिसमें नहाने का पानी अभी भी ड्रमों में इकट्ठा किया जाता था, बग़ैर शीशे की खिड़कियाँ– शौचालय ईंट के बने हुए।

एक आदमी हमारे यहाँ खजूर और अमरूद तोड़ने आता था, दूसरा जवाकुसुम तोड़ने। जीना तो उसे कहते हैं जिसे मैंने वहाँ जिया। यहाँ तो मैं एक कटोरे में खाना खाती हूँ। यहाँ तक आते-आते बूढ़ी माँ की कनपटी गर्म होने लगती थी, दर्द की लहर उसके सूजे हुए घुटनों में फैल जाती थी। "क्या मैंने बताया था कि जब मैंने बॉर्डर पार किया था तब मेरी कलाइयों में महज दो कंगन थे ? लेकिन कभी ऐसे भी दिन थे जब मैं केवल संगमरमर पर ही चला करती थी। मेरा विश्वास करो या न करो, लेकिन उस सुख की तुम कल्पना भी नहीं कर सकते।"

बूढ़ी माँ के इस लंबे एकालाप में कितनी सच्चाई है, इसके बारे में कोई भी आश्वस्त नहीं था। हर दूसरे दिन वह अपनी उस संपत्ति को पहले से दुगुनी

बताती थी और उसी तरह अपनी अल्मारियों और संदूकची के सामानों को भी। इसमें किसी को कोई शक नहीं था कि वह शरणार्थी थी, यह उसके बांग्ला बोलने के लहज़े से ही लगता था। फिर भी ख़ासकर इस बिल्डिंग के रहने वाले लोग इस बूढ़ी माँ की बातों से ताल-मेल नहीं बिठा पाते। बूढ़ी माँ एक तरफ़ अपने ऐश्वर्य का बखान करती तो दूसरी तरफ़ वह बताती कि कैसे उसने पूर्वी बंगाल के बॉर्डर को, सन के बोरे के पीछे छुपकर, ट्रक पर सवार होकर, दूसरे हज़ारों लोगों के साथ पार किया। फिर किसी और दिन बूढ़ी माँ बताती कि वो कलकत्ते बैलगाड़ी पर आई।

बच्चे जब गली में चोर-सिपाही खेलने जा रहे होते तो कभी-कभी उससे पूछते–"ट्रक से या बैलगाड़ी से?" तब बूढ़ी माँ साड़ी का आँचल झटककर और चाबियों का झब्बा झनकाकर जवाब देती– "सफाई किस बात की ? पान के पत्ते से चूना खुरचने से क्या होगा? मेरा विश्वास करो या न करो। मेरा जीवन ऐसे दुखों से भरा है जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते।"

इसलिए वह अपनी ही बताई हुई बातों को गड्डमड्ड कर देती। उसने अपने आपको ही विरोधाभासी बना लिया था।

वह हर चीज़ बढ़ा-चढ़ा कर बताती रहती थी। लेकिन उसकी बातें इतनी असरदार होती थीं, उसकी अदायगी इतनी जीवंत होती थीं कि उसकी बातों को एक सिरे से नकार देना भी मुश्किल था। तीसरी मंज़िल के मि. दलाल दफ़्तर जाते समय जब बूढ़ी माँ को देखते हैं तो सोचने लगते हैं– एक समय की मालकिन आज सीढ़ी बुहार रही है! वे कॉलिज स्ट्रीट के प्लंबिंग डिस्ट्रिक्ट में रबर ट्यूब, पाइप, वाल्व फिटिंग आदि के थोक वितरकों का हिसाब-किताब देखते हैं।

ज़्यादातर गृहिणियों का अनुमान था कि वह बेचारी अपने परिवार से बिछुड़ने के ग़म को भुलाने के लिए काल्पनिक कहानियाँ बनाया करती थी।

भले ही बूढ़ी माँ झूठ का पुलिंदा थी, लेकिन वह बदलते वक़्त की शिकार थी। इस बात को बूढ़े मि. चटर्जी दुहराया करते थे। आज़ादी के बाद न तो उन्होंने

कभी अपनी बालकनी छोड़ी और न ही कभी अख़बार खोला। लेकिन इसके बावजूद, या कहें कि इसी वजह से उनकी राय को लोग काफ़ी सम्मान देते थे।

यह बात लोगों में आपसी समझ के तहत मशहूर हो गयी कि सुदूर पूर्व में किसी जमींदार ने घरेलू सहायता के लिए बूढ़ी माँ को रखा था, इसलिए वह अपने अतीत के बारे में इतना बढ़ा-चढ़ा कर बता पाती थी। लेकिन उसके भर्राये हुए गले से इस कथावाचन से किसी को कोई नुक़सान नहीं था। सभी इस बात पर राजी थे कि वह लोगों का मनोरंजन करने में माहिर थी। लेटर बॉक्स के नीचे रहने के एवज़ में बूढ़ी माँ वहाँ की मोड़दार सीढ़ियों को चकाचक साफ़ रखती थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि इस इमारत के सभी निवासियों को बूढ़ी माँ का उस सरकने वाले दरवाज़े के पीछे हर रात सोना अच्छा लगता था, क्योंकि वह उनके और बाहरी दुनिया के बीच एक रक्षक की तरह खड़ी थी।

वैसे ख़ास तौर पर इस इमारत में रहनेवालों में किसी के पास इतना या ऐसा कुछ भी नहीं था जिसकी चोरी का ख़तरा हो। दूसरी मंज़िल पर रहनेवाली विधवा, मिसेज मिश्रा, एक अकेली ऐसी थीं जिनके पास टेलिफ़ोन था। यहाँ के लोग इस बात से कृतज्ञ थे कि बूढ़ी माँ गली में हमेशा चहल-क़दमी करती। एक दरवाज़े से दूसरे दरवाज़े कंघी और शॉल बेचने वाले घुमंतू फेरीवालों की ख़बर लेती रहती थी। पुकारने पर तुरंत रिक्शे वाले को बुला देती थी और अपनी झाडू के फटकार से वैसे उचक्कों को खदेड़ देती थी जो वहाँ थूकने, पेशाव करने या दूसरी परेशानियाँ पैदा करने के लिए मँडरा रहे होते थे।

कुल मिलाकर, कुछ सालों में, बूढ़ी माँ का काम एक असली दरबान जैसा हो चुका था। हालाँकि सामान्य परिस्थितियों में यह काम किसी औरत का नहीं था। लेकिन उसने इस काम को बखूबी निभाया, और इस खूबी से कि अगर वह लोअर सर्कुलर रोड या जोधपुर पार्क या किसी और आधुनिक रिहाइशी इलाके के घर के लिए यह काम करती तब भी शायद इसी मुस्तैदी के साथ करती।

छत के उपर बूढ़ी माँ ने अलगनी पर अपना गद्दा टाँग रखा था। अलगनी की तार छत के मुँडेर के एक कोने से दूसरे कोने तक तिरछा टँगी थी, जिसके साथ टेलीविजन का एंटीना, इश्तिहार के बोर्ड और दूर हावड़ा ब्रिज़ का मेहराब दिखता था। बूढ़ी माँ ने आसमान को निहारा, फिर उसने टैंक के नीचे लगे नल को खोला। उसने अपना चेहरा धोया, अपने पैर धोये और दोनों उँगलियों से अपने दाँत साफ़ किए। अब उसने अपनी झाड़ू से गद्दे को पीटना शुरू किया। जब-तब वह रुक जाती और कनखियों से फ़र्श पर देखती, इस उम्मीद में कि वह उसे पहचान जाए जिससे उसकी रातों की नींद ख़राब हो रही है। वह अपने इस काम में इतनी मगन हो गयी थी कि उसे कुछ पहले ही पता चल पाया कि तीसरे तल्ले की मिसेज दलाल वहाँ आयी हुई थीं– एक ट्रे में नींबू के छिलकों को नमक लगाकर धूप में सुखाने।

"इस गद्दे में जो कुछ भी है, वो मुझे रातभर जगाए रखता है," बूढ़ी माँ ने कहा।

"मुझे बताओ, तुमने उन्हें कहां देखा?"

मिसेज़ दलाल बूढ़ी माँ के प्रति थोड़ी उदार थीं। कई बार वो इस बूढ़ी महिला को छोटी-मोटी चीज़े देकर उसकी सहायता किया करती। जैसे उसके खाने को सुस्वादु बनाने के लिए अदरख का मसाला देकर।

"मुझे तो कुछ नहीं दिख रहा", मिसेज दलाल ने थोड़ी देर देखने के बाद कहा। उनकी पलकें पारदर्शी थीं और पैर की उँगलियाँ बेहद नाज़ुक, जिनमें उन्होंने छल्ले डाल रखे थे।

"तब ज़रूर उनके पंख होंगे", बूढ़ी माँ ने अपना तर्क दिया। उसने अपनी झाड़ू नीचे रख दी और देखा, एक बादल दूसरे बादल के पीछे से गुज़र रहा है। "मेरे कुचलन से पहले ही वे उड़ गए होंगे। लेकिन मेरी पीठ तो देखो! इस पर जरूर काटने के निशान होंगे।"

मिसेज दलाल ने बूढ़ी माँ की साड़ी का आँचल उठाया– एक सफ़ेद सी साड़ी, जिसका किनारा मैल से चीकट था।

उसने ब्लाउज के उपर और नीचे ख़ाल देखी। उसकी ब्लाउज भी पुराने ज़माने के फ़ैशन की थी। तब उसने कहा, "बूढ़ी माँ, तुमने दिन में सपना देखना शुरू कर दिया है।"

"अरे मैं तुम्हें बता रही हूँ, ये कीड़े मुझे ज़िंदा खाए जा रहे हैं।"

"ऐसा घमौरियों के कारण हो सकता है।" मिसेस दलाल ने सुझाया।

इसपर बूढ़ी माँ ने अपने आँचल को झाड़ा, जिससे उसमें बँधी चाबियों का झब्बा झनझनाने लगा। उसने कहा, "मुझे पता है घमौरियाँ क्या होती हैं। यह घमौरी नहीं है। मैं तीन दिनों से या कहो चार दिनों से, सो नहीं पाई। किसको पड़ी है? मेरी आदत अपने बिस्तर को साफ़-सुथरा रखने की रही है। हमारे कपड़े रेशम के होते थे। मेरा विश्वास करो, न करो! हमारी मच्छरदानियां भी इतनी नरम होती थीं मानो रेशम की हों। ऐसा सुख, जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकती।"

"मैं उनकी कल्पना नहीं कर सकती", मिसेज दलाल ने उसी स्वर में दुहराया। उसने अपनी पारदर्शी पलकें झुकाकर उदास स्वर में कहा– "मैं उनकी कल्पना नहीं कर सकती बूढ़ी माँ! मैं दो कमरे के टूटे फ़्लैट में रहती हूँ, मेरा पति बाथरूम के कल-पुर्जे बेचता है।"

मिसेज़ दलाल पीछे मुड़ी और उसके गद्दे की तरफ़ देखा। उसकी उधड़ी हुई सिलाई में उँगली डालते हुए पूछा–

"बूढ़ी माँ, तुम इस बिस्तर पर कितने समय से सो रही हो?"

बूढ़ी माँ ने जवाब देने के लिए अपने होठों पर उँगली रखी लेकिन उसे कुछ याद नहीं आया।

"फिर आज से पहले इस बात की चर्चा क्यों नहीं की? क्या तुम्हें लगा कि हम तुम्हें एक साफ़ गद्दा भी नहीं दे सकते? एक मोमजामा, इस काम के लिए?" वह आहत दिख रहीं थीं।

"इसकी कोई ज़रूरत नहीं", बूढ़ी माँ ने कहा, "अब यह साफ़ है। मैंने इसे अपनी झाड़ू से झाड़ दिया है।"

"मुझे कुछ नहीं सुनना", मिसेज दलाल ने कहा।" तुम्हें एक नए बिस्तर की ज़रूरत है। गद्दा, तकिया और सर्दी आने पर एक कंबल।" जैसे-जैसे वो बोल रही थी मिसेज दलाल उन ज़रूरी चीजों को अपने अंगूठे से उँगलियों के पोरों पर गिन रही थीं।

"पर्व-त्योहार के मौक़े पर ग़रीब लोग हमारे घर पर खाने की उम्मीद में आते थे", बूढ़ी माँ ने बताया। वह छत की दूसरी तरफ़ कोयले के ढेर से अपनी बाल्टी भर रही थी।

"मि. दलाल के ऑफिस से लौटने पर मैं उनसे बात करूँगी।" मिसेज़ दलाल जब सीढ़ियों की ओर जा रही थीं तब फिर कहा, "दोपहर में आना। मैं तुम्हारे लिए कुछ अचार और तुम्हारी पीठ के लिए पाउडर दूँगी।"

"ये घमौरियाँ नहीं हैं", बूढ़ी माँ ने कहा।

यह सही था कि बरसात के मौसम में घमौरियों का होना साधारण-सी बात थी। लेकिन बूढ़ी माँ का सोचना था, कि आख़िर किस बात के चलते उसके बिस्तर में इतनी ख़ामी आ गई कि जिससे उसकी नींद उड़ गयी और जिससे उसके झीने पड़ते माथे और खाल पर मिर्च जैसी जलन हो रही थी। वह कोई साधारण चीज कैसे हो सकती थी भला!

वह इन्हीं बातों के बारे में सोच रही थी, जब वह सीढ़ियों को हमेशा की तरह ऊपर से नीचे बुहार रही थी– जब बारिश शुरू होती थी। यह छत को वैसे ही थपकाती हुई आयी, जैसे कोई बच्चा अपने से बड़े नाप के चप्पल को पहनकर चले। उससे मिसेज़ दलाल के नींबू का छिलका बह कर गटर में चला गया। इसके पहले कि पैदलसवार लोग अपनी छतरी खोल पाते बारिश का पानी उनके कॉलर, पॉकेट और जूतों में घुस गया। ख़ास कर उस फ़्लैटनुमा इमारत और आस-पास की

इमारतों में, चरमराती शटरों को बंद कर दिया गया और उसे खिड़कियों की छड़ों से पेटीकोट के नाड़ी से बाँध दिया गया।

और इस समय तक, बूढ़ी माँ सीढ़ियाँ बुहारते दूसरे तल्ले के चबूतरे तक आ चुकी थीं। उसने उन खड़ी ढाल वाली सीढ़ियों की ओर देखा, और जिस तरह उसके चारों ओर पानी बरसने की आवाज़ तेज़ होती जा रही थी, उसे पता चल गया कि उसके गद्दे की मिट्टी पलीद हो चुकी थी। तभी उसे मिसेज़ दलाल के साथ हुई बातचीत याद आयी और इसलिए वह उसी रफ़्तार से बाक़ी सीढ़ियों से धूल-धक्कड़, सिगरेट के टोटे, चॉक्लेट के छिलके बुहारते हुए नीचे लेटर बॉक्स तक पहुँच गयी। हवा से बचने के लिए, उसने कुछ अख़बार के लिए अपनी टोकरी को खंगाला और इसके मिलने पर सरकने वाले दरवाज़े के हीरे के आकार वाले छेद में ठूँस दिया। तब उसने अपने कोयले के चूल्हे पर अपना खाना गरम करने रख दिया। फिर वह ताड़ के सलवटी पंखे को हाथ में लिये लौ की ओर तकती रही।

उस दोपहर को, अपनी आदत के अनुसार बूढ़ी माँ ने फिर से अपना जूड़ा बनाया, अपनी साड़ी के आँचल की गाँठ खोली, और अपने जीवन की जमा-पूँजी गिनी। वह अभी कोई बीस मिनट झपकी लेने के बाद जगी थी, जिसे उसने अपने अख़बार से बनाए कामचलाऊ बिस्तर पर लिया था। बारिश रुक गयी थी और अब आम के पत्तों की भीनी खट्टी खुशबू पूरी गली में फैल गयी थी।

कुछ ख़ास दोपहरों में बूढ़ी माँ अपने साथ रहने वालों के यहाँ जाया करती थी। उसे अलग-अलग तरह के घरों में आने-जाने में मज़ा आता था। घर वालों ने अपनी तरफ़ से बूढ़ी माँ को आश्वस्त कर दिया था कि उसका उनके यहां हमेशा स्वागत है। वह रात के अलावे अपने घर के दरवाज़े पर कुण्डी भी नहीं लगाती। वह अपना काम देखती, बच्चों को डाँटती या अपने हिसाब जोड़ती या शाम के लिए चावल से कंकड़ बीनती। समय-समय पर उसे चाय दी जाती थी, उसकी ओर बिस्कुट का टिन सरका दिया जाता था और वह बच्चों को कैरम खेलने में सहयोग देती थी। फ़र्नीचर पर बैठने की वह आदी नहीं थी, इसलिए वह गलियारे में या

दरवाज़े पर उकडूँ होकर घुटने मोड़कर बैठती और लोगों की गतिविधियों और हावभाव को ऐसे देखती जैसे कोई आदमी विदेश में ट्रैफ़िक को देख रहा हो।

इस ख़ास दोपहर बूढ़ी माँ ने मिसेज़ दलाल के बुलावे पर वहाँ जाने का विचार किया। उसकी पीठ में अभी भी चुभन हो रही थी, अख़बार से बने बिस्तर पर एक झपकी लेने के बावजूद। इसलिए अब उसे घमौरीनाशक पाउडर की ज़रूरत महसूस होने लगी थी। उसने अपना झाड़ू उठाया– जिसके बिना वह अपने आपको अधूरा महसूस करती थी। और जब वह सीढ़ियों पर चढ़ने को ही हुई, एक रिक्शा सरकने वाले दरवाज़े पर रुका।

यह मि. दलाल थे। रसीदों को व्यवस्थित रखने में ही उन्होंने अपने सालों लगा दिए थे जिससे उनकी आँखों के नीचे बैंगनी घेरा बन गया था। लेकिन आज उनकी आंखों में चमक थी। जीभ का सिरा उनके दाँतों के बीच खेल रहा था, और अपनी जाँघों के बीच उन्होंने सेरामिक के दो छोटे बेसिन फँसा रखे थे।

"बूढ़ी माँ, आपके लिए मेरे पास एक काम है। इन बेसिनों का ऊपर तक ले जाने में मेरी सहायता कीजिए। उन्होंने एक तहाए रूमाल को अपने गले और माथे पर फिराया और रिक्शा-चालक को पैसे दिए। तब उन्होंने और बूढ़ी माँ ने बेसिन को तीसरे तल्ले तक पहुँचाया। यह तब तक नहीं हुआ था जब तक कि वे फ़्लैट के अंदर नहीं पहुँचे थे। तब उन्होंने मिसेज़ दलाल, बूढ़ी माँ और कुछ दूसरे बाशिंदों के सामने, जो उत्सुकतावश उनके पीछे-पीछे आ गए थे, उनको बताया–

रबर ट्यूब, पाइप और वाल्व फिटिंग के वितरक के लिए रसीदों को व्यवस्थित रखने के घंटे ख़त्म हुए। वितरक को खुद ही ताज़ी हवा चाहिए थी, और उसका मुनाफ़ा भी दुगना हो गया था, वह अपनी दूसरी शाखा बर्द्धमान में खोल रहा था।

और तब, उसके वर्षों के अथक काम-काज को देखते हुए, वितरक ने मि. दलाल को पदोन्नत करते हुए कॉलेज स्ट्रीट वाली शाखा को संभालने का ज़िम्मा दे

दिया। इसी ख़ुशी में प्लंविंग डिस्ट्रिक्ट से घर आने के क्रम में, मिस्टर दलाल दो बेसिन लेते आए।

दो कमरे वाले फ़्लैट में हम इन दो बेसिनों का क्या करेंगे? मिसेज दलाल ने पूछा। वह पहले ही अपने नींबू के छिलके को लेकर झल्लाई हुई थीं। "ऐसा सुना है किसी ने? मैं अभी भी केरोसिन पर पकाती हूँ। तुमने फ़ोन के लिए भी अप्लाई करने से मना कर दिया। मैंने अभी तक उस फ्रिज़ की शकल नहीं देखी जिसका वायदा तुमने किया था, जब हमारी शादी हुई थी। तुम इन दो बेसिनों से उन सबकी भारपाई करना चाहते हो?"

उसके बाद जो बहस हुई वह इतनी तेज़ आवाज़ में थी कि उसे नीचे लेटर बॉक्स तक सुना जा सकता था। यह इतनी तेज़ और इतनी लंबी थी कि दुबारा अंधेरा होने के बाद बारिश शुरू हो गयी। यह इतनी तेज़ थी कि बूढ़ी माँ भी अपनी बात भूल गयी और दिन में दूसरी बार सीढ़ियों को ऊपर से नीचे तक बुहारने लगी। इस कारण उसने न अपने दुःखों की बातें की और नहीं अपने अच्छे दिनों की बातें सुनाई। उसने अख़बारी बिस्तरे पर ही अपनी रात बितायी।

मि. और मिसेज दलाल के बीच की बहस अभी भी कम या ज़्यादा अगली सुबह तड़के भी असरदार थे कि नंगे पैर वाले मज़दूरों का एक दल बेसिन लगाने आ गया। पूरी रात करवटें बदलने के बाद मि. दलाल ने एक बेसिन को अपने फ़्लैट की बैठकी में और दूसरे को बिल्डिंग के पहले तल्ले सीढ़ी के नीचे लगाने का निश्चय किया। "इससे हर कोई इसका इस्तेमाल कर सकेगा।" उन्होंने जा-जाकर लोगों को समझाया। वहाँ के बाशिंदे खुश हो गए, चूँकि वर्षों से वे जमा किए हुए पानी को मग में लेकर अपनी दाँतों को ब्रश करते आ रहे थे।

उसी दौरान, मि. दलाल सोच रहे थे, बिल्डिंग में सीढ़ियों के नीचे बेसिन का होना आगंतुक को प्रभावित करेगा। अब वे कम्पनी के मैनेजर हो गए थे, किसे मालूम है कि, कब कौन आ जाए?

कामगारों ने कई घंटों तक मेहनत की। उन्होंने कई बार सीढ़ियों से ऊपर नीचे भाग-दौड़ की। उन्होंने उकड़ूँ बैठकर सीढ़ियों के नीचे अपने दोपहर का खाना खाया। उन्होंने हथौड़ियाँ चलाईं। चिल्लाए, लड़े-झगड़े और गालियाँ दीं। उन्होंने अपने पसीने अपने सिर पर बाँधे अंगोछों के किनारे से पोंछे। कुल मिलाकर, उस दिन बूढ़ी माँ के लिए सीढ़ियों को बुहारने का काम असंभव हो गया।

समय बिताने के लिए, बूढ़ी माँ ने छत का आश्रय लिया। वह छज्जे के किनारे की दीवार के सहारे बार-बार अपनी जगह बदल रही थी लेकिन अख़बार पर सोने के कारण उसके कूल्हे में दर्द हो रहा था। आसमान में चारों ओर देखने के बाद गद्दे में जो कुछ बचा था उसे फाड़-फाड़कर उसने अनेक टुकड़े बनाए और यह तय किया कि बाद में वह दूसरी सीढ़ियों के जंगले साफ़ करेगी।

शाम होते ही बाशिंदे दिन के काम की तारीफ़ करने के लिए जमा हुए। यहाँ तक कि बूढ़ी माँ को भी बहते हुए साफ पानी में हाथ धोने के लिए कहा गया। वह गर्व से कहने लगी, "हमारे यहाँ नहाने का पानी इत्र और फूल की पंखुड़ियों से सुगंधित किए जाते थे। मानो या न मानो, पर इस सुख की तुम कल्पना भी नहीं कर सकते।"

मि. दलाल बेसिन की कई एक विशेषताओं को बताने और दिखाने के लिए आगे बढ़े। उन्होंने हर टोंटी को पूरी तरह खोल दिया और फिर अच्छी तरह बंद कर दिया। तब उन्होंने दोनों टोंटियों को एक साथ खोल दिया, पानी के दबाव के अंतर को दिखाने के लिए। टोंटियों के बीच में लगे लीव़र को उठाने से बेसिन का पानी जमा हो जाता था, अगर इसकी ज़रूरत हो। "अब इसके बेहतर भला क्या होगा" मि. दलाल ने यह कहते हुए बात ख़त्म की।

"बदलते हुए समय की एक निश्चित पहचान", मि. चैटर्जी जो इसके लिए जाने जाते थे, ने अपनी बाल्कनी से इस बात को स्वीकार किया।

हालाँकि गृहणियों के बीच, जल्द ही असंतोष पनपने लगा। सुबह में ब्रश करने के लिए कतार में लग जाना जिससे हर कोई अपनी बारी का इंतज़ार करते

-करते हताश हो जाता। हर इस्तेमाल के बाद टोंटी को पोंछना पड़ता था और बेसिन के तंग किनारे पर वे अपना साबुन और टूथपेस्ट नहीं छोड़ सकते थे। दलाल के पास अपना सिंक था; बाक़ियों को हिस्सा बँटाना क्यों पड़ रहा था।

"क्या यह हमारे बूते से बाहर है कि हम अपना सिंक ख़रीद सके।" आख़िरकार उनमें से एक, एक सुबह फूट पड़ी।

"क्या केवल दलाल ही है जो इस बिल्डिंग के हालात को सुधार सकें ?" दूसरे ने कहा।

अफ़वाह आग की तरह फैलने लगी : वह यह कि उनके बीच बहस के बाद मि. दलाल ने दो किलो सरसों तेल ख़रीद कर, एक कश्मीरी शॉल, एक दर्ज़न चंदन के साबुन की बट्टी लाकर अपनी पत्नी को शांत किया– कि मि. दलाल ने टेलीफ़ोन लाइन के लिए आवेदन दिया है; कि मिसेज़ दलाल और कुछ नहीं करतीं, बस पूरे दिन बेसिन में अपना हाथ धोया करती हैं। जैसे इतना ही काफ़ी नहीं था। अगली सुबह, हाउड़ा स्टेशन जाने के लिए एक टैक्सी के पहियों की आवाज़ गली में गूंज उठी; दलाल परिवार दस दिन के लिए शिमला जा रहा था।

"बूढ़ी माँ, मैं भूली नहीं हूं। हम आपके लिए पहाड़ों में बने भेड़ के ऊन का कंबल लेकर आएँगे," मिसेज दलाल ने टैक्सी की खुली खिड़की से कहा। वह अपनी गोद में एक चमड़े का पर्स रखे हुई थी जो उसकी साड़ी के फ़ीरोजी किनारी से मेल खा रहा था।

"हम दो लाएँगे!" मि. दलाल चिल्लाए, जो अपनी पत्नी के बग़ल में बैठे अपनी पॉकेट को टटोल रहे थे, यह देखने के लिए कि उनका बटुआ सही जगह है या नहीं।

उस खास फ़्लैट वाली इमारत में जितने लोग रहते थे, केवल बूढ़ी माँ उनमें से एक थी, जो उस सरकने वाले गेट पर खड़ी थी और उनकी यात्रा के लिए उन्हें शुभकामनाएँ दे रही थी।

जैसे ही दलाल दम्पति गए, दूसरी गृहिणियाँ अपनी तरफ से मरम्मत की योजना बनाने लगीं। एक ने अपनी शादी के बाजूबंद के एक हिस्से को बदलकर सीढ़ियों के दीवार की पुताई के लिए पोतने वाले को लगाने की सोची। दूसरे ने अपनी सिलाई मशीन गिरवी रखी और तोड़ने वाले को बुलाया। तीसरी सुनार के पास गयी और उसने खीर की कटोरी बेच दी, वह शटर को पीले रंग से पुतवाना चाहती थी।

कामगार् इस ख़ास फ़्लैट वाली इमारत में दिन-रात काम में लग गए। इस आवाजाही से बचने के लिए बूढ़ी माँ छत पर सोने लगी। बहुत सारे लोग सरकने वाले दरवाज़े से आ जा रहे थे। और दूसरे लोग गली को हमेशा जाम रख रहे थे, इतना कि उन पर नज़र रखना मुमकिन नहीं था।

कुछ दिनों के बाद बूढ़ी माँ ने अपनी टोकरी और चूल्हा भी छत पर पहुँचा दिया। नीचे की सीढ़ी वाले बेसिन के इस्तेमाल करने की कोई ज़रूरत नहीं थी। वह टंकी के टैप से आसानी से अपना काम चला सकती थी, जैसा कि वह हमेशा किया करती थी। अभी भी वह अपने गद्दे के टुकड़े से सीढ़ियों के जँगलों को साफ़ करती थी। अभी वह उन्हीं टुकड़ों से सीढ़ियों के जँगलों को साफ़ करने की ही सोच रही थी। वह लगातार अख़बार पर ही सो रही थी।

फिर से बारिश आ गयी। टपकते हुए चंदोबे तले, सिर के ऊपर एक अख़बार रख कर बूढ़ी माँ उकड़ूँ बैठी थी और देख रही थी कि बरसाती चीटियाँ अलगनी पर अपने अंडों को मुँह में दबाकर उन्हें ढो रही थीं। नम हवाएँ उसकी पीठ को राहत दे रही थीं। उसके अख़बार कम पड़ते जा रहे थे।

उसकी सुबह लंबी होती थी, दोपहर उससे भी लंबी। उसे याद नहीं कि उसने अपनी अंतिम चाय कब पी थी। न वह अपने दुःख के बारे में और न ही अतीत के बारे में सोच रही थी, उसे बस यही लग रहा था कि दलाल दम्पति कब उसके लिए नया बिस्तर लेकर लौटेंगे।

वह छत पर रहते-रहते बेचैन हो गयी, इसलिए थोड़ी बहुत तब्दीली के लिए बूढ़ी माँ दोपहरों में पड़ोस के चक्कर लगाने लगी। हाथ में सरकण्डे की झाड़ू लिए, न्यूज़प्रिंट के स्याही के दाग़ लगी साड़ी में, वह बाज़ारों में घूमने लगी। उसने छोटी-छोटी खुशियों के लिए अपनी बचत पूँजी खर्च करनी शुरू कर दी, आज चूड़े का एक पैकेट, अगले दिन कुछ काजू, अगले दिन गन्ने के रस का एक प्याला। एक दिन वह घूमते-घूमते कॉलेज स्ट्रीट के बुकस्टाल तक पहुँच गयी। अगले दिन वह और आगे निकल गयी, बहू बाज़ार के फल बाजार तक। यहीं पर, जब वह दुकानों के पथ पर कटहल और तेंदू को निहार रही थी, तभी उसे लगा कि उसके पल्लू के किनारे से झटके से कोई चीज़ खींची गयी हो और उसने देखा, उसकी बाक़ी बची जमा पूँजी और उसकी बची हुई चाबियाँ जा चुकीं थीं।

उस दोपहर जब वह सरकने वाले दरवाज़े तक पहुँची, वहाँ के बाशिंदे बूढ़ी माँ का इंतज़ार कर रहे थे। दुर्गतभरी रुलाई सीढ़ियों पर फैल गयी थी, सभी के मुँह पर एक ही बात की चर्चा थी– सीढ़ी के पास वाली बेसिन चुरा ली गयी थी। हाल ही में पुते दीवार पर एक बड़ा-सा छेद था, रबर की लंबी-ढीली-ढाली पाईप उससे लटकी हुई थी। प्लास्टर के टुकड़े जमीन पर बिखरे पड़े थे। बूढ़ी माँ ने कुछ नहीं कहा, बस अपने सरकण्डे की झाड़ू को कस कर पकड़े रखा।

खासी तेजी दिखाते हुए वहाँ के बाशिंदों ने बूढ़ी माँ को लगभग धकियाते हुए सीढ़ियों से छत पर ले गए, जहां उन्होंने उसे अलगनी के एक तरफ खड़ा कर दिया। और एक-एक करके उस पर चिल्लाने लगे।

"यह सब इसी का किया-धरा है," उनमें से एक चिल्लाया, बूढ़ी माँ की तरफ़ इशारा करते हुए। "इसी ने चोरों को ख़बर दी। जब इसे गेट पर निगरानी के लिए रहना था, तब यह कहाँ थी?"

"कुछ दिनों से यह सड़कों पर घूमती और अजनबियों से बातचीत करते नज़र आ रही है", दूसरे ने जानकारी दी।

"हम इसे अपना कोयला देते है, सोने के लिए जगह देते है। यह हम लोगों के साथ इस तरह से दग़ा कैसे कर सकती है ?" तीसरे ने जानना चाहा।

हालाँकि उनमें से कोई भी बूढ़ी माँ से सीधे बात नहीं कर रहा था, उसने जवाब दिया, "मेरा विश्वास करो, मेरा विश्वास करो। मैंने चोरों को खबर नही दी।"

"हम सालों से तुम्हारे झूठ को सहते आए हैं", उन्होंने जवाब दिया।

"अब तुम हमसे उम्मीद करती हो कि हम तुम्हारी बात मान लें ?"

उनका आरोप-प्रत्यारोप चलता रहा। वे दलाल दम्पति को इसके बारे में कैसे बताएँगे? अंत में उन्होंने मि. चटर्जी से सलाह मागी। वे बालकनी में बैठे थे, ट्रैफ़िक जाम देखते हुए।

दूसरे माले के एक बाशिंदे ने कहा, "बूढ़ी माँ ने बिल्डिग की सुरक्षा को ख़तरे में डाल दिया है। हमारे पास कीमती सामान हैं। वो विधवा मिसेज मिश्रा अकेले अपने फ़ोन के साथ रहती हैं। हम क्या करेंगे ?"

मि. चटर्जी ने उनकी बातों पर विचार किया। जब उन्हें लगा कि सब हो गया, उन्होंने अपने कंधे से लिपटी शॉल को ठीक किया। अपनी नजर उस बाँस के बाड़ पर टिकाई जिससे उनकी बालकनी घिरी हुई थी। उनके पीछे का शटर, जहाँ तक उनकी याद जाती थी, बदरंग ही थी, अब पीले रंग से रंगी थी। आखिरकार उन्होंने कहा, "बूढ़ी माँ तो झूठ का पुलिंदा है लेकिन इसमें कोई नयी बात नहीं है। नयी है इमारत की ताज़ी सूरत। असल में इस तरह की इमारत के लिए एक दरबान की ज़रूरत है।

इसलिए वहाँ के बाशिंदों ने उसकी बाल्टी, उसके चीथड़े, उसकी टोकरी और उसके सरकण्डे की झाड़ू, सीढ़ियों के नीचे, लेटरबॉक्स और सरकनेवाले दरवाज़े से होते हुए गली में उछाल फेंका। उसके बाद उन्होंने बूढ़ी माँ को धक्का देकर बाहर किया। अब सब असली दरबान की खोज में जुट जाने को बेचैन थे।

अपने सामान के ढेर से बूढ़ी माँ ने केवल अपनी झाड़ू रखीं, "मेरा विश्वास करो, मेरा विश्वास करो", उसने एक बार कहा और धीरे-धीरे उसकी आकृति ओझल होने लगी। उसने अपने पल्लू को झटका लेकिन कोई खनखनाहट नहीं हुई।

अध्याय: पाँच

सेक्सी

सेक्सी

किसी बीवी के लिए यह एक बुरे डरावने सपने की तरह था। लक्ष्मी ने मिरांडा को बताया, शादी के नौ साल बाद उसकी चचेरी बहन का पति किसी दूसरी औरत के चक्कर में पड़ गया है। दिल्ली से मांट्रियल की उड़ान में वह उसके बग़ल में बैठा था। अपनी बीवी और बेटे के पास घर जाने के बदले वह उस औरत के साथ हीथ्रो उतर गया। उसने अपनी बीवी को फोन करके बताया कि उसकी किसी से बात-चीत हुई, जिसने उसकी ज़िन्दगी बदल दी है। और उसने बताया कि चीज़ों को समझने के लिए उसे थोड़ा वक़्त चाहिए। लक्ष्मी की चचेरी बहन ने बिस्तर पकड़ ली।

"ऐसा नहीं है कि मैं उसे दोष दे रही," लक्ष्मी ने कहा। वह एक मसालेदार चूरन लेने गई थी जिसे वह पूरे दिन फाँकती रहती थी। मिरांडा को वह चूरन देखने में संतरे के सूखे छिलके जैसी लगती थी। "ज़रा सोचो। एक अंग्रेज़ लड़की, उससे आधी उम्र की।" लक्ष्मी मिरांडा से कुछ साल ही बड़ी थी, लेकिन वह पहले से शादी-शुदा थी। मिरांड के बग़ल के अपने क्यूबिकल' के अंदर उसने अपनी और अपने पति की तस्वीर लगा रखी थी, ताजमहल के सामने सफ़ेद पथरीले बेंच पर बैठे हुए। लक्ष्मी अपनी चचेरी बहन को शांत करने की कोशिश में कम-से-कम आधे घंटे से फ़ोन पर थी। वहाँ किसी ने ध्यान नहीं दिया। वे एक पब्लिक रेडियो स्टेशन के लिए काम करते थे, राजस्व विभाग में, और उन लोगों से घिरी रहती थीं जो अपना पूरा दिन फ़ोन के जरिये लोगों की समस्याओं पर सलाह दिया करते थे।

"मुझे सबसे ज़्यादा चिंता उस बच्चे के लिए है," लक्ष्मी ने आगे जोड़ा। "वह पूरे दिन घर पर रहता है। मेरी चचेरी बहन कहती है कि वह उसे स्कूल तक भी नहीं ले जा पाती।"

"कितनी अजीब बात है," मिरांडा ने कहा। आमतौर पर लक्ष्मी की फ़ोन पर बातचीत मुख्य रूप से अपने पति इस बात को लेकर होती थी, कि रात के खाने में क्या बनाना है- इससे मिरांडा का ध्यान बँट जात है, जब वह चिट्ठियाँ टाइप कर रही होती या रेडियो स्टेशन के सदस्यों को टोटे बैग या छाते के बदले अपना सालाना जमा

बढ़ाने के लिए कह रही होती। दोनों की डेस्क के बीच पड़ी 'लैमिनेटेड' दीवार के ज़रिये वह लक्ष्मी को साफ़-साफ़ सुन सकती थी। उसके वाक्य हर थोड़ी देर में भारतीय शब्दों से छौंके हुए होते थे। लेकिन उस दोपहर मिरांडा सुन नहीं पा रही थी। वह ख़ुद फ़ोन पर बात कर रही थी, देव के साथ, कि शाम को कहाँ मिला जाए।

"फिर भी, घर पर कुछ दिन रहने से उसे कुछ ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ेगा।" लक्ष्मी और थोड़ा-सा मसालेदार चूरन फाँका और बाक़ी दराज में डाल दिया। "उसमें कुछ है, जो एक जीनियस में होता है। उसकी माँ पंजाबन है और पिता बंगाली। और चूँकि स्कूल में वह फ्रेंच और अंग्रेज़ी सीख चुका है इसलिए अभी भी चार भाषाएँ बोल सकता है। मुझे लगता है उसने दो दर्जा फाँदा है।"

देव भी बंगाली था। मिरांडा को पहले ऐसा लगा था कि यह एक धर्म है। लेकिन तब देव ने 'द इकोनॉमिस्ट' में छपे एक नक्शे में उसे दिखाया, कि यह भारत में एक जगह है, जिसे बंगाल कहते हैं। वह उस मैगजीन को ख़ास तौर पर अपने अपार्टमेंट में ले आया था, चूँकि उसके पास कोई एटलस और न ही कोई ऐसी किताब थी, जिसमें कोई मानचित्र हो। उसने वह शहर दिखाया, जहाँ उसका जन्म हुआ था और दूसरा शहर भी, जहाँ उसके पिता का जन्म हुआ था। उनमें से एक शहर को, दर्शक को आकर्षित करने के ख़्याल से, बॉक्स से घेरा गया था। जब मिरांडा ने पूछा कि ये बॉक्स किसलिए है, तो देव ने मैगजीन को मोड़ते हुए कहा, "तुम्हें इस बारे में सोचने की कभी ज़रूरत नहीं पड़ेगी", और उसके सिर को हल्के से थपथपा दिया।

अपना अपार्टमेंट छोड़ने से पहले, उसने सिगरेट की तीन टोंटियों के साथ, जिसे वो हमेशा अपने रुकने के दौरान पीता था, मैगजीन को कूड़े के डब्बे में उछाल दिया। लेकिन जब मिरांडा ने उसकी कार को उपनगर के अपने घर की ओर, जहाँ वह अपनी पत्नी के साथ रहता था, कॉमनवेल्थ एवेन्यू से ओझल होते हुए देखा तब मिरांडा ने उसे फिर से निकाला, कवर पर लगी राख झाड़ी ओर उसे उल्टी दिशा में मोड़ा जिससे वह सीधी हो जाए। वह बिस्तर पर आकर, जो अभी भी उनके प्यार करने से बेतरतीब पड़ी थी, बंगाल की सीमाओं को देखने लगी। नीचे एक खाड़ी थी और ऊपर पर्वत। मानचित्र एक आलेख से जुड़ा था, जिसका शीर्षक किसी ग्रामीण बैंक के बारे में था।

उसने पन्ना पलटा, इस उम्मीद में कि शायद उस शहर की तस्वीर हो, जहाँ देव का जन्म हुआ था। लेकिन वहाँ सिर्फ़ रेखाचित्र और आरेख थे। फिर भी, वह उन्हें निहार रही थी, देव के ख़्याल में डूबी हुई, कि कैसे सिर्फ पंद्रह मिनट पहले उसने उसके पैरों को अपने कंधे के ऊपर टिकाकर और उसके घुटने को उसी छाती तक दबाकर उसे बताया कि अभी भी उसे उसके साथ बहुत कुछ करना बाक़ी है।

वह उससे एक हफ़्ते पहले फिलेन्स में मिली थी। वह दोपहर के खाने के अवकाश में बेसमेंट में छूट वाले पेंटीहोज़ ख़रीद रही थी। उसके बाद वह एस्केलेटर से दुकान के मुख्य हिस्से के प्रसाधन विभाग में आयी, जहाँ साबुन और क्रीम आभूषणों की प्रदर्शनी जैसे सजे थे, आई शैडोज़ और पाउडर सुरक्षित शीशे के पीछे करीने से सजाई गई थी, चमकती हुई तितलियों की तरह हालाँकि मिरांडा ने लिपस्टिक के अलावा और कभी कुछ नहीं ख़रीदा था लेकिन उसे उस सँकरे और छोटे से गलियारे से गुज़रना अच्छा लगता था। वह हिस्सा बोस्टन के बाक़ी हिस्सों के मुक़ाबले कम-से-कम एक तरह से परिचित जान पड़ता था। उसे रास्ते के हर मोड़ पर तैनात महिलाओं से तोल-मोल करना पसंद था। वे कार्ड्स पर परफ़्यूम लगाकर हवा में लहरातीं कभी-कभी वह कई दिनों के बाद अपने कोट की जेब में कोई मुड़ा हुआ कार्ड पाती, जिसकी भीनी खुशबू अभी भी उसमें हल्की-हल्की बसी होती थी, जाड़े के दिनों में जब वह ट्यूब(T) का इंतज़ार कर रही होती यह उसे गरमाहट का एहसास कराती।

उस दिन जब वह कुछ और खुशबू वाले कार्डस की खुशबू लेने के लिए रुकी, मिरांडा ने एक काउंटर पर खड़े एक आदमी पर ग़ौर किया। अपने सुघड़ सौम्य हाथ में उसने एक काग़जी पर्ची थाम रखी थीं एक महिला-विक्रेता उस पर्ची पर एक निगाह डालकर दराजों को खोलने लगी। उसने काले खोल में एक चौकोर साबुन, एक हाईड्रेटिंग मास्क, एक सेल को जिन्दा रखने वाली द्रव की शीशी, और चेहरे के लिए दो क्रीमें निकाले। वह आदमी परिष्कृत था, जिसकी उँगलियों की पोरों पर के बाल काले थे। उसने फ़्लेमिंगो गुलाबी कमीज़, नेवी ब्लू सूट, चमकते हुए बटन वाला ऊँट की ख़ालवाला ओवरकोट पहन रख था। पैसे चुकाने के लिए उसने सुअर की खाल

वाले रंग का दस्ताना निकाला। उसके बरगुंडी बटुए से करारे नोट झाँक रहे थे। उसकी उँगली में शादी वाली अँगूठी नहीं थी।

महिला विक्रेता ने मिरांडा से पूछा, "मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकती हूँ डार्लिंग?" वह कछुए के खोल से बने चश्में के ऊपरी हिस्से से मिरांडा के रंग-रूप पर ग़ौर कर रही थी।

मिरांडा को नहीं पता था कि उसे क्या चाहिए था। उसे इतना ही पता था कि वह उस आदमी को जाने देना नही चाहती थी। महिला विक्रेता के साथ-साथ वह भी वहीं पर उसके कुछ कहने का इंतज़ार कर रहा था। उसने कुछ शीशियों पर नज़र डाली कुछ छोटी, कुछ लंबी एक अंडाकार ट्रे में सजी-सजायी मानो एक परिवार फ़ोटो खिंचवाने के लिए तैयार हो।

"एक क्रीम", मिरांडा ने अंत में कहा।

"कितनी उम्र है तुम्हारी?"

"बाईस।"

महिला विक्रेता ने सिर हिलाया और एक ठंडी बोतल को खोला "जिसकी तुम्हें आदत है उससे यह थोड़ी वजनी है, लेकिन मैं उसे शुरू कर रही हूँ। पच्चीस की उम्र से तुम्हारी उम्र की स्त्रियों की झुर्रियाँ बननी शुरू हो जाती हैं। इसके बाद वे बस दिखना शुरू हो जाती हैं।"

जब वह महिला विक्रेता मिरांडा के चेहरे पर क्रीम लगा रही थी तब वह आदमी खड़ा रहा और देखता रहा। जब मिरांडा को क्रीम लगाने का सही तरीका बताया जा रहा था। तब वह लिपस्टिक की चरखी घुमा रहा था। उसे गले के निचले हिस्से से शुरू करके तेज़ी से ऊपर की ओर लगाना था। उसने एक पंप दबाया, जिससे सेल्यूलाइट जेल निकला। जिसे उसने अपने खुले हाथ के पीछे मला। उसने एक ज़ार खोली, उस पर झुका कुछ ऐसे कि क्रीम की एक बूँद उसके नाक से चिपक गयी। मिरांडा मुस्कुराई, लेकिन उसका मुँह उस बड़े ब्रश से ढँका हुआ था जिसे महिला विक्रेता उसके चेहरे पर फिरा रही थी। "यह ब्लशर नंबर दो है, "महिला ने कहा। "तुम्हें कुछ रंग दिखाती हूँ।"

मिरांडा ने काउंटर पर क़तार में लगे झुके हुए आईनों में से एक में अपना चेहरा निहारते हुए हामी भरी। उसकी आँखें चाँदी के रंग की थी और त्वचा पीलापन लिए काग़ज जैसी, जिसके बरक्स उसके बाल, एस्प्रेसो के दानों जैसे घने और चमकीले। इसी वजह से लोग उसे बहुत सुदर नहीं, आकर्षक तो कहते ही थे। उसका सिर सँकरा, अंडाकार था जो एक ख़ास बिंदु से उठता था। उसका चेहरा भी तीखा था। उसके नथुने इतने पतले थे कि लगता था मानो कपड़े वाले चिमटे से दबा दी गयी हो। अब उसका चेहरा दमकने लगा-गाल गुलाबी हो आए, भौंहों के नीचे का रंग धूमिल हो गया। उसके होठ झिलमिलाने लगे। वह आदमी भी आईना निहारते हुए, जल्दी-जल्दी अपनी नाक से क्रीम पोंछ रहा था। मिरांडा को लग रहा था कि कहाँ से आया होगा। उसने सोचा, हो सकता है स्पैनिश या लेबनानी हो। जब उसने दूसरी ज़ार खोली और बिना किसी खास व्यक्ति को संबोधित किए कहा, "इसकी सुगंध अनान्नास जैसी है।" इससे उसे उसके उच्चारण का अनुमान भर लगा।

मिरांडा का क्रेडिट कार्ड लेते हुए महिला विक्रेता ने पूछा, "आज के लिए कुछ और भी चाहिए, आपको?"

"नहीं, शुक्रिया।"

महिला ने क्रीम को लाल काग़ज में सलीके से तहा दिया। "आपको इस क्रीम से पूरा संतोष मिलेगा।" मिरांडा के हाथ हिल रहे थे जब वह रसीद पर हस्ताक्षर कर रही थी। वह आदमी वहाँ से नहीं हिला।

मिरांडा को छोटा-सा शॉपिंग बैग देते हुए महिला विक्रेता ने फिर बताया, "हमारे यहाँ अभी-अभी आए आई-जेल के कुछ नमूने मैंने डाल दिया है।" काउंटर पर उसके क्रेडिट कार्ड को उस तक खिसकाने से पहले उसने उसपर एक नज़र डाली और कहा "बाई-बाई मिरांडा।"

मिरांडा चलने लगी। पहले उसने अपनीं रफ़्तार बढ़ाई। फिर उसने डाउनटाउन क्रासिंग की तरफ़ जाने वाले दरवाज़े को देखा, और वह कुछ धीरे चलने लगी।

"तुम्हारे नाम का एक हिस्सा भारतीय है," उस आदमी ने अपनी चाल तेज़ करते हुए क़दम मिलाते हुए कहा।

वह एक लकड़ी के शंकु और मख़मली घेरे में पड़े स्वेटर वाले गोलाकार टेबुल के पास, रूकी और उसके साथ में वह भी।

"मिरांडा?"

"मीरा। मेरी एक चाची का नाम मीरा है।"

उसका नाम देव था। वह एक निवेश बैंक में काम करता था। अपने सिर को दक्षिणी स्टेशन की तरफ़ करते हुए उसने बताया कि उसका बैंक पीछे की तरफ़ है। वह पहला आदमी था, जिसकी मूँछें थीं। मिरांडा ने सोचा, उसे एक आकर्षक साथी मिल गया है।

वे उन गुमटियों को, जहाँ लोग सस्ती बेल्ट और हैंडबैग बेचते थे, को पार करते पार्क स्ट्रीट स्टेशन की तरफ़ बढ़ गए। जनवरी की हौलनाक हवा उसके बालों के कुछ हिस्से को छितरा रही थी। जब वह टोकन के लिए अपने कोट के पॉकेट को टटोल रही थी तब उसकी नज़र उसकी शॉपिंग बैग पर पड़ी।

"और वो सब उनके लिए?"

"किनके लिए?"

"तुम्हारी चाची मीरा के लिए ?"

"मेरी पत्नी के लिए है।" उसने मिरांडा की नज़रों को थामे हुए, इन शब्दों को हौले से कहा। "कुछ हफ़्तों के लिए वह भारत जा रही है।" उसने अपनी आँखों को नचाते हुए कहा, "उसे इन चीजों की लत है।"

वैसे वहाँ पर बिना बीवी के, यह इतना भी ग़लत नहीं लग रहा था। शुरू में मिरांडा और देव ने लगभग हर रात साथ-साथ बिताई। उसने उसे समझाया कि वह उसके घर पर पूरी रात नहीं रुक सकता क्योंकि उसकी पत्नी उसे हर सुबह छह बजे भारत से फ़ोन करती है, जहाँ तब दोपहर के चार बज रहे होते थे। और इसलिए वह उसके अपार्टमेंट से दो, तीन बजे या अक्सर सुबह के चार बजे, अपनी गाड़ी से वापस उपनगर वाले अपने घर लौट जाता। दिन में लगभग हर घंटे, शायद काम करते हुए या अपने सेल-फ़ोन से फ़ोन करता। एक बार जब उसे मिरांडा की दिनचर्या का पता चल गया, वह हर शाम पाँच बजकर तीस मिनट पर उसके लिए संदेश छोड़ देता, जब

वह अपने अपार्टमेंट लौटते वक़्त ट्यूब में होती। उसने बताया, ऐसा इसलिए कि जैसे ही वह दरवाज़े के अंदर घुसे वैसे ही उसकी आवाज़ सुन सके। वह टेप पर कहता "मैं तुम्हारे बारे में ही सोच रहा हूँ।" "तुमसे मिलने के लिए मैं और नहीं रुक सकता।" वह उसे बताता कि उसे उसके अपार्टमेंट में समय गुज़ारना पसंद है, जिसकी रसोई की पट्टी डबल रोटी के डब्बे से ज़्यादा चौड़ी नहीं थी, खरोंच भरी हुई ढलवाँ फ़र्श और गलियारे की घंटी, जिसे जब वह भी बजाता था तब उससे हमेशा थोड़ी खीज पैदा कर देनेवाली आवाज़ आती थी। वह बताता कि उसकी इस बात के लिए तारीफ़ करता था कि मिशिगन में रहने के बदले, जहाँ वह बड़ी हुई और कॉलेज गयी, बोस्टन चली आयी थी, जहाँ वह किसी को नहीं जानती थी। लेकिन जब मिरांडा ने उसे बताया कि इसमें तारीफ़ करनेवाली कोई बात नहीं, कि वह केवल इसी नाते बोस्टन चली आयी तब उसने अपना सिर हिलाया। "मुझे पता है अकेला रहना क्या होता है," उसने सहसा गंभीर होकर कहा। उस समय मिरांडा ने महसूस किया कि वह उसे समझता है - समझता है कि ट्यूब पर कुछ रातों को, अकेले सिनेमा देखने के बाद, किताब की दुकान पर मैगजीन पढ़ने या लक्ष्मी के साथ कुछ पीने के दौरान, जिसे हमेशा अगले एक या दो घंटे में एलवाइफ़ स्टेशन पर अपने पति से मिलना होता था, के बाद उसे कैसा लगता था। किसी हल्की-फुल्की घड़ी में देव कहता कि वह उसके पैरों को पसंद करता है जो उसकी धड़ से लंबे लगते हैं। शायद उस पर उसने पहली बार ध्यान तब दिया जब वह कमरे में बिना कपड़ों के चल रही थी। उसने बिस्तर पर से ही उसकी तारीफ़ करते हुए बताया "तुम वह पहली हो।"

"जिन्हें मैं जानता हूँ, कि उनमें तुम पहली औरत हो जिसके पैर इतने लंबे हैं।"

देव पहला आदमी था, जिसने उसे यह बताया था। देव उन कॉलेज के लड़कों से, जो हाईस्कूल के लड़कों से लंबे और क़द्दावर थे जिसके साथ उसने पहले डेटिंग की थी, अलग था। देव पहला था जिसने आगे बढ़कर पहले किसी चीज़ का दाम चुकाया, वह उसके लिए दरवाज़े खुला रखता था और रेस्तरां में टेबल के पा पहुँच कर उसके हाथों को चूमा था। वह पहला था, जिसने उसके लिए फूलों का गुलदस्ता लाया था, वह इतना बड़ा कि उसे अलग-अलग कर सबके सब छहों गिलासों में सजाने पड़े

थे। और वह पहला था, जिसने उसे प्यार करते हुए लगातार उसका नाम बुदबुदाया था। उससे मुलाक़ात के दिनों में, जब मिरांडा काम पर होती, यह सोचा करती काश उसके और देव की एक तस्वीर होती, जिसे वह अपने क्यूबिकल केअंदर लगा देती, लक्ष्मी और उसके पति की तरह ताजमहल के सामने। उसने लक्ष्मी को देव के बारे में नहीं बताया। उसने किसी को नहीं बताया। उसके जी में आया कि वह लक्ष्मी को बता दे केवल इसलिए कि लक्ष्मी भी एक भारतीय थी। लेकिन लक्ष्मी इन दिनों हमेशा फ़ोन पर अपनी चचेरी बहन के साथ व्यस्त रहती थी, जो अभी तक बिस्तर पकड़े हुए थी। और जिसका पति अभी भी लंदन में ही था, और जिसका बेटा अभी भी स्कूल नहीं जा रहा था। "तुम्हें ज़रूर कुछ खाना चाहिए।" लक्ष्मी उससे अनुरोध करती। "तुम अपने स्वास्थ्य को इस तरह चौपट मत करो।" जब वह अपनी चचेरी बहन से बात नहीं करती तब वह अपने पति से बात करती, छोटी-छोटी बाते जिसका अंत वह उस बात के बहस में करती कि रात के खाने में मुर्ग़ा हो या कि भेड़ का मांस। मिरांडा ने उसे एक बार माफ़ी माँगते हुए सुना। "माफ़ कर दो"।

"इन सारी चीज़ों से मैं थोड़ी उधेड़-बुन में पड़ गयी हूँ।"

मिरांडा और देव बहस नहीं करते। वे फ़िल्म देखने निकेलोडियोन गए और पूरे समय एक दूसरे को चूमते रहे। उन्होंने डेविस स्क्वायर में मक्के की रोटी के साथ सुअर का मांस खाया। एक कागज़ी नैपकिन देव के कमीज़ की कॉलर पर क्रॅवैट की तरह चिपक गया। स्पेनिश रेस्तरां के बार में 'सांग्रिया' की चुस्की ली, जहाँ एक दाँत निपोरता सुअर का सिर उनकी बातों पर पहरा डाले हुए था। वे एम.एफ.ए. गए और वहाँ से मिरांडा के बेडरुम के लिए कुमुदनी का एक पोस्टर खरीदा। एक शनिवार को सिम्फ़नी हॉल में एक कॉन्'सर्ट के बाद, उसने उसे शहर की सबसे पसंदीदा जगह दिखाई क्रिश्चियन साईंस सेंटर का 'मैप्पेरियम'। वहाँ वे एक कक्ष में खड़े हुए जो चमकीले स्टेन्ड ग्लास पैनलों से निर्मित था। अंदर से इसका आकार एक ग्लोब जैसा था, लेकिन अंदर से बाहर की तरह दिखता था। कक्ष के बीचों बीच एक पारदर्शी पुल था, जहाँ से वे महसूस कर सकते थे कि वे दुनिया के केन्द्र में खड़े हैं। देव ने भारत भी दिखाया, जो लाल था और 'द इकोनॉमिस्ट' वाले मानचित्र से ज़्यादा ब्योरा लिए

हुए था। उसने समझाया कि स्याम और इटैलियन सोमालीलैंड जैसे अनेक देश अब पहले जैसे नहीं रहे, अब उनके नाम बदल गए हैं। महासागर, मोर के सीने जैसा नीला था और पानी की गहराई के हिसाब से उसकी दो आभाएँ झलक रही थीं। उसने उसे मरीयाना द्वीपों के ऊपर पृथ्वी पर के सबसे गहरी जगह को दिखाया। पुल पर से झाँकते हुए उन्होंने अंटार्कटिक द्वीपसमूह को अपने पैरों के नीचे पाया। अपनी गर्दनें उचकायीं और सिर के ऊपर विशाल धातुई तारा देखा। जब देव बोल रहा था, उसकी आवाज़ ग्लास से टकरा कर तेज़ी से लौट रही थी कभी जोर से, कभी धीमे और कभी-कभी ऐसा लगता कि वो मिरांडा के सीने में धँस गई हो, कभी-कभी दोनों कानों को एक साथ भ्रमित करती हुई। जब पर्यटकों का एक दल पुल के ऊपर से गुज़र रहा था तब उन्हें लगा कि वे गला साफ़ कर रहे हैं, जैसे वे ऐसा माइकोफ़ोन से बोल रहे हों। देव ने समझाया ऐसा ध्वनिकी की वजह से है।

मिरांडा को लंदन मिला, जहाँ लक्ष्मी की चचेरी बहन का पति उस औरत के साथ था, जिससे जहाज़ पर उसकी मुलाक़ात हुई थी। उसने सोचा भारत के किस शहर में देव की घरवाली होगी। मिरांडा सबसे दूर बहामास तक हो आई है, जब वह बच्ची थी। उसने ढूँढ़ा लेकिन ग्लास पैनल पर उसे नहीं दिखा। जब पर्यटक चले गए तब वह और देव फिर से अकेले थे। उसने उसे पुल के एक छोर पर खड़े होने को कहा। देव ने कहा, हालाँकि वे एक दूसरे से तीस फ़ीट की दूरी पर हैं, लेकिन वे एक दूसरे की फुसफुसाहट तक सुन सकते हैं।

"मुझे विश्वास नहीं होता", मिरांडा ने कहा। जब से वे अंदर आए उसके बाद यह पहली बार था जब उसने कुछ कहा था। उसे लगा, जैसे उसके कानों में स्पीकर ठूँसे हों।

"आगे बोलो", उसने अनुरोध किया, पुल पर अपनी तरफ़ के छोर तक जाते हुए। उसकी बोली धीमी पड़ती हुई फुसफुसाहट में बदल गयी। "कुछ बोलो" उसने अपने होठों को शब्द बुनते हुए पाया, उसने उन्हें इतना साफ़-साफ सुना कि मानो उस आवाज़ को उसने अपनी त्वचा के नीचे, अपने गर्म कोट के नीचे महसूस किया हो।

इतना साफ़ और उष्णता से भरपूर कि वह अपने आप में गरमाहट महसूस कर रही थी।

अनिश्चय की स्थिति में कि क्या बोले। वह फुसफुसायी, "हाय।"

वापसी फुसफुसाहट सुन पड़ी - "तुम सेक्सी हो।"

अगले सप्ताह काम के दोरान लक्ष्मी ने मिरांडा को बताया कि यह पहली बार नहीं था कि उसकी बहन के पति का 'अफ़ेयर' हुआ हो। एक शाम जब दोनों दफ़्तर छोड़ने के लिए तैयार हो रहे थे तब लक्ष्मी ने कहा, "उसे लगता है कि उसके पति में खुद सद्‌बुद्धि जगेगी।"

"उसने बताया, ऐसा लड़के के लिए है। वह उसे उस लड़के के लिए माफ़ करने को तैयार है।" लक्ष्मी अपना कंप्यूटर बंद कर रही थी और मिरांडा उसका इंतज़ार कर रही थी। "वह रेंगता हुआ वापस आएगा, और वह उसको गले लगा लेगी", लक्ष्मी ने अपना सिर झटकते हुए कहा।

"मैं ऐसा नहीं कर सकती। अगर मेरा पति किसी दूसरी औरत में इतनी ज़्यादा दिलचस्पी लेगा तो मैं भी अपने ताले बदल लूँगी।" उसने अपने क्यूबिकल में लगी तस्वीर को ग़ौर से देखा एक बेंच पर लक्ष्मी का पति अपनी बाँहें उसके कंधे के ऊपर लपेटे हुए था, उसके घुटने उसकी ओर झुके हुए थे। उसने पलट कर मिरांडा से पूछा, "तुम नहीं करोगी ऐसा?"

उसने हामी भरी। अगले दिन देव की बीवी भारत से वापस आ रही थी। उस दोपहर उसने मिरांडा को फ़ोन किया जब वह काम पर थी। यह बताने के लिए कि उसे उसको लेने हवाईअड्डे जाना पड़ रहा है। उसने वादा किया कि जितना जल्दी संभव होगा वह फोन करेगा।

उसने लक्ष्मी से पूछा, "ताजमहल कैसा है?"

"पृथ्वी पर की सबसे रोमांटिक जगह।" लक्ष्मी का चेहरा कुछ याद कर खिल उठा। "प्यार की हमेशा क़ायम रहनेवाली निशानी।"

जब देव एयरपोर्ट पर था, मिरांडा फ़िलेन्स के बेसमेंट में अपने लिए कुछ ख़रीदने गयी, ऐसी चीज़ें, जो एक प्रेयसी के पास होनी चाहिए, उसने सोचा। उसने

एक काले रंग की ऊँची एड़ी वाली जूती देखी जिसके बकल बच्चे की दाँत से भी छोटे थे। उसे छोटे-छोटे टेढ़े कटे हुए किनारे वाला 'साटिन स्लिप' मिला एक घुटने तक लंबा रेशमी ढीला ढाला चोला। पैंटीहोज़ के बदले, जिसे वह काम में लाती थी, उसने एक ही सिलाई वाली पारदर्शी लंबी स्टॉकिंग्स खरीदी। उसने उन ढेरों से खोजा, एक-एक करके कई हैंगर्स को सरकाते हुए कितने ही आले देखे, जब तक कि उसे एक नरम रूपहले कपड़े से बना एक 'कॉकटेल ड्रेस' नहीं मिल गया, जो उसके आँखों के रंग से मेल खाता था, जिसे बाँधने के लिए एक छोटा-सा चेन था। जब वह खरीददारी कर रही थी तब वह देव के बारे में सोच रही थी और उस बात के बारे में, जिसे देव ने उससे 'मैप्पेरियम' में कहा था। यह पहली बार था जब किसी आदमी ने उसे 'सेक्सी' कहा था। जब भी वह अपनी आँखें बंद करती है, तो उस क्षण उसी फुसफुसाहट को अपने जिस्म के अन्दर अपनी त्वचा के नीचे महसूस कर सकती है। फ़िटिंग रूम, जो कि शीशे लगी दीवारों के साथ बस एक बड़ा-सा कमरा था, वहाँ उसे दमकते चेहरे और कसे तथा जमे हुए बालों वाली एक प्रौढ़ महिला के पास जगह मिली।

बॉडी स्टाकिंग के काले नेट को उँगलियों से खींचते हुए, वह नंगे पैर अपने आंतरिक वस्त्रों में खड़ी थी।

"हमेशा इसकी जाँच कर लेनी चाहिए कि कहीं गाँठ न हो", उस औरत ने सुझाव दिया।

मिरांडा ने कटावदार किनारी वाला 'साटिन स्लिप' निकाला। उसे अपने सीने पर लगाया।

महिला ने सहमति में अपना सिर हिलाया। "बहुत बढ़िया।"

"और यह?" उसने इस रूपहले कॉकटेल ड्रेस को पकड़ कर कहा।

"बहुत ख़ूब", उस महिला ने कहा। "वह इसे तुम्हारी देह से फटाफट उतार फेंकना चाहेगा।"

मिरांडा ने साउथ एंड के एक रेस्तरां में दोनों के साथ वाली तस्वीर ली, जहाँ वे अक्सर जाते रहते थे। वहाँ देव ने 'फोई ग्रास' और शैंपेन और रस्पेबेरी से बना सूप मँगवाया था। मिरांडा अपनी तस्वीर कॉकटेल ड्रेस में खिंचवाई और देव ने अपने एक

सूट में था, मेज़ की दूसरी तरफ़ से उसके हाथ को चूमते हुए। पिछली बार जब वे मिले थे तब वह जिम के कपड़ों में था, उसके बाद अगली बार वह कई दिनों बाद रविवार की दोपहर को उससे मिलने आया था। जब से उसकी बीवी वापस आयी थी, वह यही बहाना बनाता वह रविवार को बोस्टन के लिए चलता और चार्ल्स के आसपास दौड़ लगाता। पहली रविवार को उसने घुटने तक के लंबे चोगे में दरवाज़ा खोला, लेकिन देव ने उनकी तरफ़ देखा ही नहीं। स्वेटपैंट और स्नीकर पहने हुए, वह सीधे उसे बिस्तर तक ले गया और बिना एक शब्द बोले उसमें समा गया। बाद में जब वह उसके सिगरेट की राखदानी लाने कमरे में चलने को हुई तब उसने चोंगा डाल लिया। लेकिन वह उससे मनुहार करने लगा कि वह उसे अपने लंबे पैरों को देखने से वंचित कर रही है और कहा कि उसे उतार दे। इसलिए अगले रविवार को उसने ध्यान नहीं दिया। उसने जीन्स पहने। उसने अपने मोज़े और रोज़मर्रा इस्तेमाल होने वाले अंत वस्त्रों के पीछे उन छोटे कपड़ों को दराज में पीछे करके रख दिया रूपहला 'कॉकटेल ड्रेस' अपनी आलमारी में टाँग दिया, जिसका टैग धागे से टँगा झूल रहा था। अक्सर सुबह-सुबह, ड्रेस नीचे गिर कर ढेर हो जाता क्योंकि चेनदार पट्टा धातु के हैंगर से हमेशा फिसल -फिसल जाता।

फिर भी मिरांडा रविवार का इंतज़ार करती। सुबह में वह दुकान गयी और बग्यूटे और उन चीजों के छोटे-छोटे कंटेनर्स लिए, जिन्हें देव पसंद करता था, जैसे हेरिंग आचार, आलू सलाद और पेस्टो टार्ट्स और मस्करपोन 'चीज़'

उन्होंने बिस्तर पर ही उँगलियों से हेरिंग चुनते हुए और बग्यूटे को उँगलियों से फाड़ते हुए खाना खाया। देव ने उसे अपने बचपन की कहानी सुनाई। जब वह स्कूल से घर आता तब ट्रे में परोसा हुआ आम-रस पीता और ऊपर से नीचे तक सफ़ेद कपड़ों में झील किनारे क्रिकेट खेलने जाता। उसने उसे बताया कि कैसे, अठारह वर्ष की उम्र में आपात्काल के दौरान उसे न्यूयॉर्क के उत्तर में एक कॉलेज में भेज दिया गया। कि कैसे उसके अंग्रेजी माध्यम में शिक्षित होने के बावजूद, उसे अमेरिकी फिल्मों के उच्चारण को समझने में सालों लग गए थे। जब वह बातें कर रहा था, उसने तीन

सिगरेट पी और उन्हें बिस्तर के बग़ल में रखे प्लेट में मसल दिया। कभी-कभी वह उससे सवाल पूछता, जैसे अब तक उसके कितने चाहने वाले हुए (तीन) और पहली बार जब उसने किया तब वह कितनी बड़ी थी (उन्नीस)। दिन के खाने के बाद खाने के टुकड़े से पटे बिस्तर पर उन्होंने प्यार किया। और उसके बाद देव ने बारह मिनट तक झपकी ली। मिरांडा ऐसे किसी वयस्क को नहीं जानती थी जो दिन में झपकी लेता हो। लेकिन देव ने बताया कि उसकी यह आदत उसे भारत में पलने-बढ़ने के दौरान लगी है, जहाँ इतनी गर्मी होती है कि लोग अपने घरों से तब तक नहीं निकलते जब तक कि दिन ढल न जाए। "साथ ही यह हमें साथ सोने का मौक़ा देता है", उसने शरारत से फुसफुसाते हुए, अपनी बाँह से उसकी देह को बड़े बाजूबंद की तरह लपेटते हुए कहा।

लेकिन, मिरांडा कभी नहीं सोती। वह बिस्तर के किनारे रखी घड़ी देखती रहती या देव की उँगलियाँ, जिनके बीच वाले हिस्सों पर आधा दर्ज़न बाल थे, उन में अपनी गुँथी हुई उँगलियों को अपने चेहरे से लगाकर दबाती। छह मिनट के बाद उसाँस भरते और अँगड़ाई लेती वह उसे देखने के लिए पलटी, यह देखने कि वह सच में सो रहा है। वह सचमच सो रहा था। जब वह साँस ले रहा था तब उसकी पसलियाँ त्वचा के नीचे दिख रहीं थीं। और अब भी उसकी तोंद का बनना बाक़ी था। उसे अपने कंधे पर के बालों से शिकायत थी, लेकिन मिरांडा उसे परिपूर्ण मानती थी, और उसे अपनी कल्पना में किसी भी बदलाव से इन्कार था।

बारह मिनट पूरे होने पर देव अपनी आँखें कर इस तरह खोलता जैसे वह हमेशा जगा हुआ ही था, उसे देखकर मुस्कुराते हुए, पूरी तरह से संतुष्ट। उसे भी इसी एहसास की चाहत थी। उसके पैरों की पिंडली के पीछे हाथ फिराते हुए वह उसाँसे भर कर कहता, "हफ़्ते के सबसे बढ़िया बाहर मिनट।" इसके बाद फटाफट बिस्तर से उठकर अपनी स्वेटपैंट पहनता और अपने स्नीकर्स को बंद करता। वह बाथरूम जाता और अपने तर्जनी से दाँतों को रगड़ता। उसने उसे बताया सिगरेट की बू दूर करने के लिए ऐसा करता है और ऐसा करना सभी भारतीय जानते हैं। जब वह उसे विदा करने के लिए चूमती तब कभी-कभी उसके बालों में वह अपनी खूशबू पाती। लेकिन वह

उसके उस बहाने को जानती थी, कि घर जाने पर सबसे पहले वह नहाने चला जाता था, क्योंकि वह दोपहर वाली जॉगिंग कर लौट रहा होता था।

लक्ष्मी और देव के अलावा मिरांडा और जिन भारतीयों को जानती थी वह था दीक्षित परिवार, जो उसके पड़ोस में रहता था, जहाँ वह बड़ी हुई थी। मिरांडा सहित, दीक्षित के बच्चों को छोड़कर, पड़ोस के बच्चों के लिए वे कौतूहल की चीज़ थे। मि. दीक्षित रोज़मर्रा के कमीज़ पायजामे में हवादार सपाट छोटी सड़क पर हर शाम जॉगिंग करते। प्रत्येक सप्ताहांत, वह परिवार-माँ-बाप, दो लड़के और एक लड़की अपने कार में ठूँस कर जाते और चले जाते, कहाँ, कोई नहीं जानता। उनके पिता लोग यह शिकायत करते कि मि. दीक्षित अपने लॉन में ठीक से खाद नहीं डालते और समय पर पत्तों की छँटाई भी नहीं करते। वे इस बात से सहमत थे, एकमात्र विनाइल के छोर वाला दीक्षित का घर पड़ोस की सुंदरता को कम कर रहा था। आर्मस्ट्राँग स्वीमिंग पुल के आस-पास, माताएँ कभी भी मिसेज़ दीक्षित को अपने साथ नहीं बुलातीं। स्कूल बस का इंतज़ार करते हुए दीक्षित के बच्चे सड़क के एक किनारे खड़े हाते। दूसरे बच्चे मुँह दबा कर कहते "ये दीक्षित गुह खोदते हैं," और हँसी फूट पड़ती।

एक साल, दीक्षित की लड़की के जन्मदिन की पार्टी में पड़ोस के सभी बच्चों को बुलाया गया था। मिरांडा को याद है उस घर में धूप और प्याज की ज़बरदस्त गंध फैली थी और दरवाज़े के सामने ढेर-सारे जूते रखे थे। जो बात उसे सबसे ज़्यादा याद थी, वह सीढ़ियों के नीचे लकड़ी के खूँटी से लटका, तकिये के गिलाफ़ जितना कपड़े का टुकड़ा था। इस पर एक नंगी औरत की तस्वीर थी, जिसके लाल चेहरे का आकार किसी सूरमा की ढाल जैसी थी। उसकी बड़ी-बड़ी सफ़ेद आँखें कपाल की ओर तिरछी खिंची हुई थी, और पुतलियाँ बस बिन्दु जितनी थीं। एक-जैसे बिन्दुओं के साथ दो घेरे उसके वक्ष दिखा रहे थे। एक हाथ से वह एक कटार भाँज रही थी और एक पैर से किसी जूझ रहे आदमी को ज़मीन पर दबाए हुए था। उसकी देह पर रक्त टपकाते मुण्डों की माला पॉपकॉर्न से बनी माला की तरह लटक रही थी। उसकी बाहर निकली जीभ मिरांडा की तरफ़ थी।

"वह देवी काली हैं।" मिसेज़ दीक्षित ने खूँटी को थोड़ा हिलाते हुए बताया, ताकि तस्वीर सीधी हो जाए, उसके हाथों में आड़ी तिरछी और सितारों की उल्टी-सीधी डिज़ाइन वाली मेंहदी लगी थी।"केक काटने का समय हो गया है, अब आओ।" तब नौ साल की मिरांडा, केक खाने के नाम से डर गयी थी। वह इतना डर गयी थी कि अगले कई महीने दीक्षित के घर वाली गली से भी चलने में डरती थी, यहाँ से उसे दो-दो बार गुज़रना पड़ता। एक बार बस स्टॉप तक जाने के लिए और एक बार लौटने के लिए। वह लॉन के छोर तक पहुँचने तक अपनी साँसों को थोड़ी देर के लिए रोक लेती, ठीक वैसे ही जैसा कि वह बस के श्मशान से गुज़रते समय करती थी।

उसे अब शरम आती थी। अब, जब वह और देव प्यार कर रहे होते तब मिरांडा अपनी आँखों को बंद कर लेती और उसे रेगिस्तान और हाथी और दुधिया चाँदनी में झील पर तैरता संगमरमर का मंडप दिखता। एक शनिवार को, जब और कुछ करने को नहीं था, वह पैदल सेन्ट्रल स्कवायर के एक भारतीय रेस्तरां में गयी। और तंदूरी-मुर्गे की प्लेट का ऑर्डर दिया। जब वह खा रही थी तब मेन्यू के नीचे छपे मुहावरे को याद करने की कोशिश कर रही थी। 'स्वादिष्ट', 'पानी' और 'कृपया जाँच कर लें' जैसे मुहावरे उसे याद हुए कि नहीं और इसलिए वह केनमोर स्क्वायर स्थित एक किताब की दुकान की विदेशी-भाषा वाले हिस्से में गाहे-बेगाहे रूकने लगी। वहाँ 'स्वयं पढ़ो और सीखो' वाली श्रृंखला में उसने बांग्ला वर्णमाला पढ़ी। अपने नाम के भारतीय हिस्से को लिप्यंतरित कर अपने फ़िलोफ़ैक्स में लिखने तक वह बढ़ गई। उसके हाथ अनजान दिशा में चल रहे थे, जिसे रोक कर और घुमाकर और क़लम को उठा कर, जिसे करने की जरूरत शायद उसे नहीं थी। किताब के निर्देश को देखते हुए उसने बाएँ से दाएँ एक रेखा खींची जिससे अक्षर लटके रहते जिनमें से कोई-कोई अक्षर से ज़्यादा संख्या की तरह दिखता और दूसरा अपनी ही तरह का एक त्रिभुज जैसा। उसे अपने नाम के अक्षर लिखने के लिए कई बार प्रयास करने पड़े, जो उस किताब के नमूने अक्षरों से मिल सकें। और इसके बावजूद उसे पूरा यक़ीन नहीं था कि उसने मीरा लिखा या मारा। उसके लिए यह एक अबूझ लिपि थी, लेकिन उसे इस बात से झटका लगा दुनिया के किसी हिस्से में इसका कोई मतलब भी था।

सप्ताह में काम वाले दिनों के दौरान इतना बुरा नहीं लगता था। काम के घंटे उसे व्यस्त रखते थे और लक्ष्मी के साथ उसने पास ही के एक भारतीय रेस्तरां में दोपहर का खाना खाना शुरू कर दिया था। इस दौरान लक्ष्मी अपनी चचेरी बहन के वैवाहिक जीवन के ताज़ा सूरतेहाल के बारे में बताया करती। कभी-कभी मिरांडा उस विषय को बदलने की कोशिश करती। यह उसे उसी तरह एहसास दिलाता जैसा उसने एक बार कॉलेज में महसूस किया था। तब वह और उसका पुरुष मित्र भीड़ भरी पैन केक की दुकान से खाने का पैसा चुकाए बिना बाहर निकल आए थे, बस यह देखने के लिए कि वे ऐसा कर पाते हैं या नहीं। लेकिन लक्ष्मी किसी और के बारे में बात ही नहीं करती थी। "एक दिन उसने घोषणा की अगर मैं उसकी जगह होती तो मैं सीधे लंदन जाती और दोनों को गोली मार देती" - उसने झटके से एक रोटी को आधा तोड़कर उसे चटनी में डुबोया।" समझ में नहीं आता, वह किस तरह इतना इंतज़ार कर सकती है।"

मिरांडा को पता है। इंतज़ार कैसे किया जाता है। शाम में वह अपनी डाइनिंग टेबल पर बैठ कर अपने नाख़ूनों को क्लीयर नेलपॉलिश से रँगा और सलाद के प्याले से सीधे मुँह डालकर सलाद खाए। टेलिविज़न देखा और रविवार का इंतज़ार किया। शनिवार का दिन उसे सबसे बुरा लगता, क्योंकि शनिवार के दिन ऐसा लगता जैसे रविवार कभी आएगा ही नहीं। एक शनिवार की देर रात में जब देव ने फ़ोन किया तब उसे पीछे से लोगों के हँसने और बात करने की आवाज़ सुनाई दी। इतने लोगों की आवाज़ थी कि उसने उससे पूछा कि क्या वह किसी पार्टी या जलसे में है। लेकिन वह अपने उपनगरीय मकान से ही बोल रहा था। उसने इतना कहा, "ठीक से सुनाई नहीं दे रहा।"

"हमारे यहाँ मेहमान आए हुए हैं। मेरी याद आ रही है?"

उसने टेलिविज़न के परदे पर देखा, उस पर एक प्रहसन चल रहा था जिसे फ़ोन आने पर उसने रिमोट कंट्रोल से 'ख़ामोश' कर दिया था। उसके दिमाग़ में उसकी एक तसवीर उभरी, मेहमानों से भरे गलियारे वाले ऊपर के कमरे में एक हाथ

से दरवाज़े की कुंडी पर हाथ रखकर अपने सेलफ़ोन पर फुसफुसाते हुए उसने फिर पूछा, "मिरांडा, मेरी याद आती है?" उसे उसक बताया हाँ, आती है।

अगले दिन जब देव उससे मिलने आया तब मिरांडा ने उससे पूछा कि उसकी बीवी कैसी दिखती है। उसे यह पूछते हुए डर लग रहा था। जब उसने अपनी आख़िरी सिगरेट पी ली और इसे ज़ोर से दबा कर बुझा दिया तब जाकर उसने यह बात पूछी। उसे लगा कि उनके बीच लड़ाई न हो। लेकिन देव इस सवाल पर नहीं चौंका। उसने एक क्रैकर से एक स्मोक्ड व्हाईट फ़िश को अलग करते हुए बताया, उसकी बीवी मुम्बई की एक अभिनेत्री माधुरी दीक्षित से मिलती-जुलती है।

एक क्षण के लिए मिरांडा की धड़कन रुक गयी। लेकिन नहीं, दीक्षित की लड़कियों के नाम किसी और ही नाम से शुरू होते थे, जिसकी शुरूआत शायद 'प' से होती थी। फिर उसे आश्चर्य होता अगर उस अभिनेत्री और दीक्षित की बेटी में कोई समानता होती। पूरे हाईस्कूल के दौरान वह बिल्कुल सीधी-सादी रही, बस अपनी दो चोटियों में।

कुछ दिनों बाद, मिरांडा सेंट्रल स्क्वायर स्थित एक भारतीय दुकान पहुँची जो भाड़े पर वीडिओ भी देता था। इसका दरवाज़ा एक घंटी की अजीब-सी टनटनाहट के साथ खुलता था। यह रात के खाने का समय था और वह अकेली खरीदार थी। दुकान के एक कोने में टँगे एक टेलिविज़न पर एक वीडियो चल रहा था- समुद्र तट पर तंग पेंटी में जवान लड़कियाँ एक क़तार में, किसी धुन पर ज़ोर जोर से अपने कूल्हे मटका रही थीं।

कैश रजिस्टर पर खड़े व्यक्ति ने पूछा, "क्या मैं आपकी मदद कर सकता हूँ?" वह कागज़ की प्लेट में गाढ़ी भूरी चटनी में समोसा डुबाकर खा रहा था। उसकी कमर से नीचे शीशे के काउँटर पर कुछेक गोल समोसे की ट्रे, बर्क़ से लिपटी हीरे जैसी कटी नर्म मिठाई, और चाशनी में तैरती चमकदार नांरगी रंग की पेस्ट्री थी। "आपको कोई विडिओ पसंद आया।

मिरांडा ने अपनी फिलोफैक्स खोला जिसमें उसने लिख रखा था 'मॉटरी दीक्षित''। उसने काउंटर के पीछे ख़ानों पर रखी विडिओ कैसेट्स पर नज़र दौड़ाई। उसने उन औरतों को देखा, जिनके कूल्हों पर तंग स्कर्ट्स थे और उनके खुले वक्ष रंगी रूमालों से बँधे थे। उनमें से कुछ पथरीली दीवारों या एक पेड़ के सहारे टिकी थीं। काजल लगी आँखों और लंबे बालों वाली वे लड़कियाँ सुदंर थीं। जिस तरह से वे तट पर नाच रहीं थीं, वह भी सुंदर था। तब उसने जाना कि माधुरी दीक्षित भी काफ़ी सुंदर है।

उस आदमी ने आगे कहा, ''मिस, हमारे पास उपशीर्षक वाले संस्करण भी हैं। उसने तपाक से अपनी उँगलियों के पोरों को कमीज से पोंछा और तीन कैसेट्स निकाले।

'नहीं', मिरांडा ने कहा। ''नहीं चाहिए, शुक्रिया।'' वह पूरे स्टोर में खानों पर क़तार में रखे बिना लेबल के पैकेटों और टिनों को घूम-घूम कर देखती रही। फ्रिज़र वाली अलमारी पिटा ब्रेड और ऐसी सब्जियों के थैलों से भरी थी जिन्हें वह पहचानती तक नहीं थी। बस एक चीज़ वह पहचान पायी, वह था एक खाने पर क़तार में लगे चूरन वाले ढ़ेर सारे पैकेट, जिन्हें लक्ष्मी हमेशा खाती थी। उसने लक्ष्मी के लिए कुछ ख़रीदने की सोची। लेकिन ठिठक गयी, अगर उसने पूछा कि वह भारतीय दुकान में क्या कर रही थी, तब वह कैसे समझाएगी।

''बड़ी मसालेदार है'', उस आदमी ने सिर हिलाते हुए कहा।

फिर मिरांडा के पूरी देह को निहारते हुए उसने कहा, ''आपके लिए कुछ ज़्यादा ही तीखी।''

फ़रवरी तक, लक्ष्मी की बहन का पति अभी तक अपने होश में नहीं लौटा था। वह मांट्रियल आया था, दो हफ़्ते तक अपनी बीवी के साथ तीखी बहस की, दो सूटकेट पैक किए और वापस लंदन लौट गया। उसे तलाक चाहिए था।

मिरांडा अपनी क्यूबिकल में बैठी लक्ष्मी को अपनी बहन को लगातार समझाती सुन रही थी। अगले दिन उसकी बहन ने बताया कि इन सबसे उबरने की कोशिश में वह अपने बेटे के साथ अपने माँ-बाप के घर कैलिफ़ोर्निया जा रही है।

लक्ष्मी ने उसे बोस्टन में एक सप्ताहांत बिताने का मन बनाने के लिए राजी किया। "फ़िलहाल जगह बदलना तुम्हारे लिए अच्छा होगा," लक्ष्मी ने नर्मी से आग्रह किया, "इसके अलावा, तुम्हें देखे मुझे कई साल हो गए।"

मिरांडा अपने फ़ोन पर नज़र गड़ाए बैठी थी, यह सोचकर कि शायद देव का फ़ोन आए। उससे हुई पिछली बात के बाद चार दिन बीत गए थे। उसने लक्ष्मी को डायरेक्टरी असिस्टेंस को फ़ोन करते सुना, वह एक ब्यूटी सैलून का नंबर पूछ रही थी। लक्ष्मी ने अनुरोध किया, "थोड़ी राहत देने वाला।" उसने मसाज़, फ़ेसियल, मैनीक्योर और पेडीक्योर का कार्यक्रम रखा। इसके बाद 'फ़ोर सीजन्स' में लंच के लिए टेबल भी आरक्षित करवाई। अपनी बहन को दोबारा खुश करने के चक्कर में लक्ष्मी उसके बेटे को भूल ही गयी। लैमिनेटेड दीवार को उसने अपनी उँगलियों से ठोका -

"क्या शनिवार को तुम व्यस्त हो ?"

लड़का काफ़ी दुबला पतला था। वह अपनी पीठ पर पीले रंग का 'नैप सैक' लटकाए हुए था। उसने धूसर हेरिंगबोन ट्राइजर, एक लाल रंग के 'वी' आकार वाला स्वेटर और काले रंग का चमड़े का जूता पहन रखा था। उसके बाल उसकी आँखों के ऊपर लटकते हुए कटे थे। उसकी आँखों के नीचे स्याह घेरे उभर आये थे। इससे वह मरियल-सा दिखता था, जैसे वह खूब सिगरेट पीता हो या बहुत कम सोता हो। इसके बावजूद वह सिर्फ़ सात साल का था। उसने स्पाइरल बाइंडिंग वाला एक बड़ा-सा स्केच पैड पकड़ रखा था। उसका नाम रोहिन था।

उसने मिरांडा को ग़ौर से देखते हुए पूछा,

"मुझसे एक राजधानी का नाम पूछो।"

उसने भी उसे ग़ौर से देखा। शनिवार की सुबह के आठ बजकर तीस मिनट हुए थे। उसने कॉफी की एक घूँट ली।

"यह एक खेल है जिसे यह खेलता रहता है," लक्ष्मी की बहन ने समझाया। वह भी अपने बेटे जैसी ही दुबली थी। लंबा चेहरा और आँखों के नीचे वैसा ही स्याह घेरा। जंग के रंग वाला कोट उसके कंधे पर भारी लग रहा था। उसके काले बाल, साथ में

कनपटी पर झूलता धूसर लटें, बैले नर्त्तकियों की तरह पीछे की तरफ बँधी हुई थीं। ''आप इससे देश का नाम पूछिए और यह आपको राजधानी बताएगा।''

''तुम्हें इसे कार में सुनना चाहिए था'', लक्ष्मी ने कहा।

''इसने लगभग पूरे युरोप की राजधानियों का नाम का याद कर लिया है।''

''यह खेल नहीं है,'' रोहिन ने कहा। ''मैं अपने स्कूल के लड़कों के साथ मुक़बला कर रहा हूँ। हम लोगों के बीच सभी राजधानियों को याद करने का मुक़ाबला है। मैं उन्हें हरा दूँगा।''

मिरांडा ने सिर हिलाते हुए हामी भरी। ठीक है, भारत की राजधानी क्या है ?''

''यह ठीक नहीं है।'' अपनी बाँह को किसी खिलौना सिपाही के जैसा झुलाते हुए, यह तेज़ी से चलता आगे बढ़ गया। फिर तेज़ी से चलता हुआ वापस पानी माँ के पास आया और उसके कोट की एक जेब को ज़ोर से खींचने लगा। ''मुझसे कोई मुश्किल वाला पूछो।''

उसने पूछा, ''सेनेगल।''

''डकार!'' रोहिन ने गर्व से कहा और बड़े-बड़े घेरे बनाकर चक्कर लगाने लगा। अंत में वह दौड़ता हुआ रसोई में चला गया। मिरांडा उसे फ्रिज़ को खोलते और बंद करते सुन सकती थी।

''रोहिन, बिना पूछे कोई चीज़ नहीं छूते,'' उसकी माँ ने थके मन से कहा। उसने मिरांडा की ओर देखकर मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा, 'आप चिंता मत कीजिए, वह थोड़ी देर में सो जाएगा। और उसे देखने के लिए शुक्रिया।''

अपनी बहन के साथ नीचे के गलियारे में ओझल होते हुए लक्ष्मी ने कहा, ''तीन बजे लौटकर आते हैं। हम दो जगहों मे बँट गए हैं।

मिरांडा ने दरवाज़े में चेन लगा दिया। वह रोहिन को रसोई में देखने गयी तब तक वह बैठक में डाइनिंग टेबल की डायरेक्टर वाली कुर्सी पर घुटने मोड़ कर बैठ चुका था। उसने अपना नैप-सैक खोला, मिरांडा के मैनिक्योर के सामान की टोकरी को मेज़ के एक किनारे सरकाया और सतह पर अपनी क्रेयॉन्स फैला दी।

मिरांडा उसके कंधे पर ऊपर खड़ी हो गयी। जब वह नीले रंग का क्रेयॉन पकड़े उससे हवाई जहाज़ आँक रहा था, मिरांडा उसे देख रही थी।

"बहुत सुंदर", उसने कहा। जब उसने कुछ जवाब नहीं दिया तब वह अपने लिए और थोड़ी-सी कॉफ़ी लेने रसोई में गयी।

"थोड़ी मेरे लिए भी," रोहिन चिल्लाया।

वह बैठक में लौटी। "थोड़ा क्या?"

"थोड़ी कॉफी। मैंने देखी है। वहाँ बरतन में ढेर सारी पड़ी हुई है।"

मेज़ पार करती हुई वह उसकी उल्टी तरफ़ बैठी। कभी-कभी वह नए क्रेयॉन लेने के लिए लगभग खड़ा हो जाता। उसने शायद ही कभी डायरेक्टर की कुर्सी पर कोई खरोंच लगायी हो।

"तुम अभी कॉफ़ी के लिए बहुत छोटे हो।"

रोहिन स्केच पैड के ऊपर झुक गया। इतना कि उसकी नन्हीं-सी छाती और कंधे तक़रीबन उसे छू रहे थे। उसका सिर एक तरफ झुका हुआ था। "आया मुझे कॉफी देती थी," उसने कहा। "वह इसे दूध और ढेर सारी चीनी के साथ बनाती थी।" वह सीधा हुआ, इससे जहाज़ के बग़ल में एक औरत का चेहरा दिखने लगा जिसके लंबे लहरदार बाल थे और आँखें तारे जैसी थीं। 'उसके बाल ज़्यादा चमकदार थे," उसने सोचा और जोड़ा, "मेरे पापा भी एक हवाई जहाज में एक ख़ूबसूरत औरत से मिले थे। "उसने मिरांडा की तरफ़ देखा। उसका चेहरा मुरझा गया जब उसने उसे चुस्की लेते देखा। "क्या, मुझे थोड़ी-सी भी कॉफी नही मिलेगी, प्लीज़?"

उसने सोचा, अगर अपने शांत और संकुचित व्यवहार के बदले वह उग्रता दिखाता तब क्या होता। उसने कल्पना की कि वह उसे अपने चमड़े के जूते से लतिया रहा है, कॉफ़ी के लिए चिल्ला रहा है, तब तक चिल्लाता और रोता रहा जब कि उसकी माँ और लक्ष्मी उसे लेने न आ जाए। वह रसोई में गयी और उसके लिए वैसी ही कॉफ़ी बनायी जैसी कि उसने माँगी थी। उसने इसके लिए ऐसा मग चुना, जिसके गिर कर फूट जाने से भी इसे कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ना था।

"शुक्रिया!" उसने कहा, जब मिरांडा ने इसे मेज़ पर रखा।

मग को दोनों हाथों से कस कर पकड़ कर उसने छोटी-छोटी चुस्कियाँ भरीं।

मिरांडा उसके साथ बैठी रही जब वह चित्र बना रहा था। लेकिन जब वह अपनी नाखूनों पर क्लीयर नेल पॉलिश लगाने को हुई तब उसने इसका विरोध किया। इसके बदले उसने अपनी नैपसैक से सजिल्द विश्वपंजिका निकाली और उससे सवाल पूछने को कहा। इसमें देश महादेश के अनुसार सजाए हुए थे। एक पृष्ठ पर छह, जिनकी राजधानियाँ बड़े अक्षरों में छपी थी, जिसके बाद जनसंख्या, सरकार और दूसरे आँकड़ों का संक्षिप्त विवरण था। मिरांडा ने अफ्रीका भाग वाला पृष्ठ निकाला और उसमें सूची को देखा।

"माली", उसने उससे पूछा।

"बैमाको, उसने तुरंत जवाब दिया।

"मालावी"।

"लिलोंग्वे।"

उसे मैप्पेरियम में अफ्रीका को देखना याद आ गया। उसे याद आया कि उसका मोटा वाला हिस्सा हरा था।

"और पूछो", रोहिन ने कहा।

"मॉरिटेनिया।"

"नुऑक्शात।"

'मॉरिशस।"

वह रुका, अपनी आँखों को भींचकर खोला और मायूस होते हुए कहा, "मुझे याद नहीं आ रहा।"

"पोर्ट लुईस", उसने उसे बताया।

"पोर्ट लुईस।" वह इसे बार-बार दुहराने लगा, जैसे साँस रोके कोई मंत्र पढ़ रहा हो।

जब वे अफ्रीका के अंतिम देशों तक पहुँच गए तो रोहिन ने कहा कि वह कार्टून देखना चाहता है। उसने मिरांडा को भी साथ में देखने को कहा। जब कार्टून देखना ख़त्म हुआ तब वह उसके पीछे रसोई में गया और उसके साथ खड़ा रहा जब वह कुछ

और कॉफी बना रही थी। कुछ मिनट बाद जब वह बाथरूम गयी तब वह उसके पीछे नहीं गया। लेकिन जब उसने दरवाज़ा खोला तब उसे वहाँ खड़ा देखकर चौंक गयी।

"तुम्हें जाना है?"

उसने अपना सिर हिलाया लेकिन यूँ ही बाथरूम में चला आया। उसने कमोड का ढक्कन गिराया, उस पर चढ़ गया और सिंक के ऊपर लगे शीशे के सँकरे आले पर मिरांडा का टूथब्रश और श्रृंगार का सामान देखने लगा।

उसने नमूने में मिले उस जेल को, जो देव से मिलने के दिन उसे मिला था, उठाते हुए पूछा,

"यह किसलिए है ?"

"सूजन के लिए।"

"काहे के सूजन के लिए ?"

"यहाँ," उसने इशारा करते हुए समझाया।

"जब तुम रो लेते हो ?"

"मुझे ऐसा ही लगता है।"

रोहिन ने ट्यूब खोली और उसे सूंघा। उसने दबाकर उसकी एक बूँद अपनी उँगली पर निकाली, उसे अपने हाथ पर रगड़ा। "यह तो चुभता है।" उसने अपने हाथ का पिछला हिस्से ध्यान से देखा, इस उम्मीद में कि उसका रंग बदले। "मेरी माँ की आँखें भी सूजती हैं। वह बताती है कि ऐसा ठंड के कारण हुआ है लेकिन दरअसल वह रोती हैं, कभी-कभी कई घंटों तक। कभी-कभी पूरी रात। कभी-कभी इतना रोती है कि उसकी आँखें सूजकर पकौड़ियाँ हो जाती हैं।"

मिरांडा को लगा कि शायद उसे कुछ खिलाना चाहिए। रसोई में एक राइस केक का बैग और कुछ सलाद पड़े थे। उसने बाहर चलकर 'डेली' से कुछ ख़रीद लाने की भी बात की। लेकिन रोहिन ने कहा कि उसे भूख नहीं और उसने एक राइस केक लिया। "तुम भी एक खाओ," उसने कहा। वे मेज़ पर बैठे और राइस केक उनके बीच पड़ा था। उसने अपनी स्केच पैड को पलट कर एक कोरा पन्ना निकाला और कहा, "तुम बनाओ!"

मिरांडा ने नीला क्रेयॉन उठाया। "मैं क्या बनाऊँ?"

रोहिन ने पल भर सोचा। "मुझे पता है," उसने कहा।

उसने उसे बैठक की चीज़ों को बनाने को कहा - सोफा, डायरेक्टर्स चेयर्स, टेलीविज़न, टेलिफ़ोन। "ऐसे मैं इन्हें याद रख सकूँगा।'

"क्या याद रख सकोगे?"

"अपने साथ-साथ गुज़ारे दिन को।" उसने दूसरा राइस केक उठाया।

"तुम क्यों इसे याद रखना चाहते हो?"

"क्योंकि हम कभी भी एक-दूसरे से दुबारा मिलने वाले नहीं।"

इस बात की सच्चाई ने उसे चकित कर दिया। हल्का-सा अवसाद महसूस करते हुए उसने उसकी ओर देखा। रोहिन के चेहरे पर कोई अवसाद नहीं था। उसने पन्ने को थपथपाते हुए कहा, "बनाओ न!"

और इसलिए जितना अच्छा हो सकता था, उसने चीजें बनाईं - सोफ़ा, डारयेक्टर्स चेयर्स, टेलिविज़न, टेलिफ़ोन। वह धीरे-धीरे उसके पास आ गया, इतने पास कि कभी-कभी यह देखने में दिक़्कत हो रही थी कि वह क्या कर रहा है। उसने अपनी छोटी-सी भूरी बाँह उसके ऊपर डाल दी।

"अब मैं।"

उसने उसे क्रेयॉन दे दिया।

उसने अपना सिर हिलाया। "नहीं, अब मेरी तस्वीर बनाओ।"

"मैं नहीं बना सकती", उसने कहा, यह तुम्हारे जैसा दिखेगा ही नहीं। रोहिन फिर से सोचने की मुद्रा में आ गया, ठीक वैसे ही जैसा कि वह कॉफ़ी न मिलने पर हो आया था। "प्लीज़"।

उसके सिर और मोटे कटे बालों का ऊपरी हिस्सा बनाते हुए उसने उसके चेहरे की तस्वीर बनायी। वह बिल्कुल सीधा बैठा रहा, एक जैसी औपचारिक मुद्रा में, एक तरफ़ अपनी नज़रें टिका कर। मिरांडा का मन हो रहा था कि वह बिल्कुल वैसा ही बनाए। अनजान तरीक़े से उसके हाथ उसकी आँखों के साथ चल रहे

थे, ठीक उस दिन की तरह जैसे किताब की दुकान में उसने अपने नाम को बंगाली अक्षरों में लिप्यंतरित किया था। यह उसके जैसा बिल्कुल नहीं दिख रहा था। जब उसने उसकी आधी ही नाक बनाई थी तब एकाएक वह टेबल से उठ गया।

"मैं बोर हो गया हूँ," उसके बेडरूम की तरफ़ जाते हुए उसने कहा। मिरांडा ने उसे दरवाज़ा खोल कर आलमारी के दराज को खोलते और बंद करते हुए सुना।

जब वह उसके साथ गई तब वह आलमारी के अंदर था। कुछ पल बाद वह बिखरे हुए बालों में हाथ में रूपहले कॉकटेल ड्रेस को लिए हुए बाहर निकला।

"यह नीचे गिरा था।"

"हैंगर से गिर पड़ा होगा।"

रोहिन ने ड्रेस को देखा फिर मिरांडा की देह को।

"इसे पहनो!"

"क्या कहा तुमने ?"

"इसे पहनो!"

इसे पहनने जैसी कोई बात ही नहीं थी। फ़िलेन्स के फ़िटिंग रूम के अलावे उसने इसे कभी पहना ही नहीं था। और जब तक वह देव के साथ थी तब तक उसे पता था वह इसे नहीं पहनेवाली। उसे यह भी पता था कि अब वे उस रेस्टोरेंट में कभी नहीं जाएँगे जहाँ वह टेबल को पार कर उसका हाथ चूमता था। वे उसके अपार्टमेंट में रविवार को मिल सकते थे, देव अपने स्वेटपैंट्स में और वह अपनी जीन्स में। उसने रोहिन से ड्रेस लिया और उसे झाड़ा जबकि इस तरह के कपड़ों में कभी सिलवट नहीं पड़ती। वह अलमारी में ख़ाली हैंगर देखने लगी।

"पहनो न, प्लीज!" एकाएक उसके पीछे आकर रोहिन ने कहा। उसने अपनी बाँहों से उसकी कमर में लिपटते हुए अपना चेहरा उससे लगाता हुए कहा। "प्लीज?"

उसकी मज़बूत पकड़ से चकित होते हुए उसने कहा, "ठीक है।"
वह संतुष्ट होकर मुस्कुराया और उसके बिस्तर के किनारे पर बैठ गया।

उसे दरवाज़े की तरफ़ इशारा करते हुआ कहा कि तुम्हें वहाँ पर इंतजार करना होगा।

"मैं तैयार होकर बाहर आ जाऊँगी।

"लेकिन मेरी माँ हमेशा मेरे सामने ही कपड़े बदलती है।"

"वह ऐसा करती हैं?"

रोहिन ने सहमति में सिर हिलाया। उसके बाद वह उन कपड़ों को उठाती भी नहीं। उन्हें बिस्तर के बग़ल के ज़मीन पर वैसे ही बिखरा हुआ छोड़ देती है।

उसने आगे कहा, "एक दिन वह मेरे कमरे में सोई थी।"

उसने बताया, 'अब जबकि मेरे पिता चले गए हैं, उसे वहाँ अपनी बिस्तर से ज़्यादा अच्छा लगता है।"

"मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ," मिरांडा ने उसे अपनी काँख में दबाकर अपनी बिस्तर से उठाते हुए कहा, जब उसने खड़ा होने से इनकार कर दिया। वह उम्मीद से कुछ ज़्यादा ही भारी था। उसके पैर मिरांडा के कूल्हों से कस कर लिपटे थे और उसका सिर उसके सीने पर टिका था, वह उससे चिपका हुआ था। उसने उसे गलियारें में उतारा और दरवाज़े को बंद कर लिया। कुछ और एहतियात के तौर पर उसने कुंडी लगा ली। दरवाज़े के पीछे लगे आदमक़द शीशे मे देखते हुए उसने कपड़े बदलते हुए ड्रेस पहनी। उसके टखनों में पड़े मोज़े अजीब दिख रहे थे इसलिए उसने दराज़ खोलकर 'स्टॉकिंग्स' (लंबे मोज़े) ढूँढ़ी। उसने आलमारी के पीछे तक ढूँढ़ा, जहाँ उसे छोटे वकल्स वाली ऊँची एड़ी की जूती मिली। ड्रेस के चेन का पट्टा उसके कॉलरबोन पर पेपर क्लिप जैसा हल्का लग रहा था। यह उसे थोड़ा ढीला हो रहा था। वह खुद से उसका ज़िप नही लगा पा रही थी।

रोहिन दरवाज़ा खटखटाने लगा। "अब मैं अंदर आ सकता हूँ?"

उसने दरवाज़ा खोला। रोहिन अपनी पत्री हाथ में लेकर मन-ही-मन कुछ याद कर रहा था। उसे देख कर उसकी आँखें फटी रह गयीं। "ज़िपर लगाने में मुझे तुम्हारी मदद चाहिए," उसने कहा। वह बिस्तर के किनारे पर बैठ गयी।

रोहिन ने ऊपर तक ज़िप लगा दिया। तब मिरांडा उठी और झटके से मुड़ी। रोहिन ने पत्री नीचे रख दी।

रोहिन बोला, 'तुम सेक्सी हो।''

''क्या कहा तुमने ?''

''तुम सेक्सी हो ?''

मिरांडा फिर से बैठ गयी। उसे पता था कि इसका कोई मतलब नहीं है लेकिन उसकी धड़कन एक बार के लिए रुक गयी। रोहिन शायद सभी औरतों को सेक्सी कहता हो। यह शब्द उसने शायद टेलिविजन पर सुना हो या किसी पत्रिका के आवरण पर देखा हो। उसे मैप्पेरियम का वो दिन याद आ गया जब वह देव की दूसरी तरफ पुल पर खड़ी थी। उस समय उसे लगा था कि वह उसका मतलब जानती है। उस समय उसकी सार्थकता भी थी।

मिरांडा ने अपनी छाती पर बाँहों को मोड़ते हुए रोहिन की आँखों में झाँका। ''मुझे कुछ बताओ ?''

वह चुप था।

''क्या मतलब होता है इसका ?''

''किसका ?''

''यह शब्द, 'सेक्सी'। क्या मतलब है इसका?''

उसने सहसा लजाते हुए नज़रें झुका लीं।

''मैं नहीं बता सकता।''

"क्यों नहीं बता सकते?"

उसने अपने होठों को एक साथ दबाया, इतने ज़ोरों से कि उसका एक हिस्सा सफ़ेद पड़ गया।

"यह राज़ की बात है।"

"मुझे बताओ क्या राज़ है। मुझे जानना है।"

रोहिन मिरांडा के बगल में बिस्तर पर बैठा था। अब उसने अपने जूते के पिछले हिस्से को गद्दे के किनारे पर पटकते लगा। वह घबराकर खिलखिलाने लगा। उसकी दुबली देह ऐसे हिलने लगी जैसे उसे गुदगुदी की गयी हो।

मिरांडा ने फिर कहा, "बताओ मुझे। उसने झुक कर उसके टखने पकड़ लिए और उसके पैर को बिल्कुल भी हिलने नहीं दिया।

रोहिन ने उसकी तरफ़ देखा। उसकी आँखें झिरी जैसी थीं। उसने फिर से गद्दे पर पैर पटकने की कोशिश की लेकिन मिरांडा ने उन्हें दबाए रखा। वह बिस्तर पर लेट गया। उसकी पीठ तख्ते-जैसी सीधी थी। उसने अपनी हाथो से मुँह को ढक लिया फिर वह फुसफुसाया," इसका मतलब होता है किसी को चाहना, जिसे तुम जानते नहीं।" रोहिन की बात मिरांडा के अंदर तक धँस आयी, ठीक उसी तरह जैसा उसने देव के साथ महसूस किया था। लेकिन उत्तेजित होने के बदले उसे ठिठुरन महसूस हुई। यह उसे ठीक उसी की याद दिलाती थी जैसा कि उसने भारतीय दुकान पर महसूस किया था। जब उसने जाना, यहाँ तक कि बिना तस्वीर देखे, माधुरी दीक्षित, जिससे कि देव की बीवी मिलती-जुलती लगती थी, सुंदर थी।

"यही मेरे पिता ने किया," रोहिन ने आगे कहा।

"वह किसी के बग़ल बैठे, जिसे वे जानते नहीं थे। पर वह सेक्सी रही होगी और अब वह उसकी माँ के बदले उसे प्यार करते हैं।"

उसने अपने जूते उतारे और फ़र्श पर उन्हें अलग-बग़ल रख दिया। उसने रजाई खोली और मिरांडा के बिस्तर पर अपनी पत्री के साथ खिसक आया। मिनट भर बाद ही किताब उसकी हाथों से छूट गयी और उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। मिरांडा उसे सोते हुए देख रही थी। उसकी साँसों के साथ रजाई ऊपर-नीचे हो रहा था। वह देव की तरह बारह मिनट, यहाँ तक कि बीस मिनट में भी नहीं जगा। उसने तब भी अपनी आँखें नहीं खोलीं जब वह रूपहले कॉकटेल ड्रेस उतार कर वापस अपनी जींस में आ गयी। उसने ऊँची एड़ी वाली जूती को वापस अलमारी में पीछे करके रख दिया और स्टॉकिंग्स को लपेटकर वापस दराज में डाल दिया।

जब उसने सब कुछ ठिकाने लगा दिया तब वह बिस्तर पर बैठ गयी। वह उसकी ओर झुकी, इतने क़रीब तक कि वह उसके मुँह के किनारे पर लगे राईस केक से झड़े सफ़ेद चूरा तक देख सकती थी और पत्री उठा ली। जब वह पन्ने पलट रही थी तब उसने उस विवाद के बारे में सोचा, जिसे रोहिन अपने मांट्रियल वाले घर में

झेलता होगा। "क्या वह सुंदर है?" उसकी माँ उसी बाथरोब में जिसे वह पूरे हफ़्ते पहन रही होगी, उसके पिता से पूछा होगा। उसका सुंदर चेहरा जलन से भर जाता होगा। "क्या वह सेक्सी है?" इसके पहले कि उसके पिता इनकार करते, बात बदलने की कोशिश करते। "बताओ मुझे", रोहिन की माँ चीख़ती होगी, "मुझे बताओ, क्या वह सेक्सी है।" इन सबके अंत में उसके पिता वह स्वीकार करते होंगे कि वह थी और सकी माँ बिस्तर पर बिखरे हुए कपड़ों के बीच बस रोती ही जाती होगी। उसकी आँखें सूज कर पकौड़ी बन जाती होगी।

"तुम ऐसा कैसे कर सकते हो," वह सुबकती हुई पूछती होगी, "तुम ऐसी औरत को कैसे प्यार कर सकते हो जिसे तुम जानते तक नहीं।"

जब मिरांडा इन सब के बारे में सोच रही थी, उसे रूलाई आ गयी। उस दिन मैप्पेरियम में तमाम देश इतने पास नज़र आ रहे थे कि उन्हें छुआ जा सकता था और देव की आवाज़ शीशे से टकरा कर तेज़ी से वापस आ रही थी। तीस फुट की दूरी पर पूरे पुल को पारकर देव की आवाज़ उसके कानों तक पहुँच रही थी। इतने पास और गरमाहट से भरी कि वह कई दिनों तक उसके अंदर गूँजती रही। मिरांडा अपने आप को रोक नहीं पायी और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। लेकिन रोहिन तब भी सोता रहा। उसे लगा कि अब तक वह एक औरत के रोने की आवाज़ का आदी हो चुका है।

रविवार को, देव ने मिरांडा को यह बताने के लिए फ़ोन किया कि वह आने को है। "मैं लगभग तैयार हूँ। मैं दो बजे तक वहाँ होऊँगा।"

वह टेलिविज़न पर कुकिंग शो देख रही थी।

एक औरत सेबों की क़तार की तरफ़ इशारा करते हुए समझा रही थी कि यह पकाने का सबसे बेहतर तरीक़ा है।

"तुम आज मत आओ।"

"क्यों?"

"मुझे सर्दी लग गयी है", उसने झूठ बोला। वैसे यह सच से ज़्याद दूर भी नहीं था। रोने से इसका गला रूँध गया था।

"हाँ, तुम्हारी आवाज़ फँसी हुई लग रही है।" फिर एक पल की चुप्पी। "तुम्हें कुछ चाहिए।"

"मुझे ज़रूरत नहीं।"

"ढेर सारी तरल चीज़ें पीना।"

"देव?"

"हाँ, मिरांडा।"

"तुम्हें वो दिन याद है जब हम मैप्पेरियम गए थे?"

"हाँ, हाँ, याद है।"

"तुम्हें याद है कैसे हमने एक दूसरे से फुसफुसाकर बातें की थीं?"

"याद है मुझे," देव ने शरारत से फुसफुसा कर कहा।

"तुम्हें याद है, तुमने क्या कहा था?"

एक पल की चुप्पी।

वह धीरे से हँसा। "अगले रविवार को फिर?"

एक दिन पहले, जब वह रोई थी, मिरांडा को विश्वास हो आया था कि वह किसी चीज़ को नहीं भूल पाएगी - बांग्ला में लिखा जैसा उसका नाम दिखता है, उसे भी नहीं। वह रोहिन की बग़ल में सो गयी थी। और जब वह उठी तब रोहिन 'द इकानॉमिस्ट' की प्रति पर, जिसे उसने बचाकर रखा था, ;जिसे बिस्तर के नीचे छिपा रखा था) एक हवाई जहाज़ बना रहा था। "देवजीत मित्र कौन है? पते का लेबल देखते हुए उसने पूछा।

मिरांडा ने देव के बारे में सोचा, अपने स्वेट पैंट और स्नीकर्स में, फ़ोन पर हँसते हुए। कुछ ही देर में वह नीचे अपनी बीवी के पास जाता है और उसे बताता है कि वह जॉगिंग के लिए नहीं जा रहा। स्ट्रेचिंग करते हुए उसकी मांसपेशियाँ खिंच गयी हैं, उसने कहा होगा और अख़बार लेकर बैठ गया होगा। मिरांडा ने सोचा, वह उससे एक और रविवार को मिलेगी या शायद दो। फिर वह उसे वह सब कुछ बता देगी, जिससे वह गुज़री है- कि यह न तो उसके और न ही उसकी बीवी के लिए सही है कि वे दोनों इससे बेहतर के भागी हैं, कि इस बात को ढोने का कोई फ़ायदा नहीं है।

लेकिन अगले रविवार को बर्फ़बारी हुई। इतनी ज़्यादा कि देव अपनी बीवी को नहीं बता पाया कि वह चार्ल्स के किनारे जॉगिंग के लिए जा रहा है। उसके बाद वाले रविवार को, जब बर्फ़ पिघल गयी मिरांडा ने लक्ष्मी के साथ सिनेमा जाना तय कर लिया। और जब उसने देव को फ़ोन पर इस बारे में बताया तब उसने उसे इसे बदलने के लिए भी नहीं कहा। तीसरे रविवार को वह सुबह ही उठ गई और टहलने निकल गई। ठंड थी लेकिन सूरज उगा था। वह टहलते हुए नीचे कॉमनवेल्थ एवेन्यू तक आ गई, उस रेस्टोरेंट को पार करते हुए जहाँ देव ने उसे चूमा था। और तब वह टहलते हुए क्रिश्चियन साइंस सेंटर तक गयी। मैप्पेरियम बंद था लेकिन उसने पास से ही एक कॉफी ली और चर्च से बाहर, प्लाज़ा की एक बेंच पर बैठ गयी। चर्च के विशालकाय और उसके बड़े से गुम्बद और शहर के ऊपर छाई नीली आसमानी छतरी को देखते हुए।

अध्याय : छह

महानगरीय संस्कृति के आईने में झुम्पा लाहिड़ी की कोलकाता केन्द्रित कहानियाँ - सांस्कृतिक विमर्श

महानगरीय संस्कृति के आईने में झुम्पा लाहिड़ी की कोलकाता केन्द्रित कहानियाँ – सांस्कृतिक विमर्श

झुम्पा लाहिड़ी ने अब तक एक कहानी संकलन 'इंटरप्रेटर ऑफ मैलॅडीज़ लिखा है, जिसमें कुछ नौ कहानियाँ है। इनमें से छह की पृष्ठभूमि अमेरिका की है और तीन की भारत की। इनमें से चार कहानियों का मैंने अनुवाद किया है। अपने शोध विमर्श के अंतर्गत सांस्कृतिक विश्लेषण के लिए भी मैंने इन्हें ही आधार बनाया है। इनमें से तीन कहानियाँ अमेरिकी पृष्ठभूमि में और एक भारतीय पृष्ठभूमि में अवस्थित है। पूछा जा सकता है कि विवेच्य अध्याय कोलकाता केन्द्रित है, फिर अमेरिकी पृष्ठभूमि क्यों? उत्तर है कि इन कहानियों से गुज़रते हुए यह पता चलता है कि कैसे अमेरिका में रहते हुए भी मुख्य एवं सम्बद्ध पात्रों के लिए उनका कोलकाता अभी भी अंदर कितना रचा-बसा है। यह भौतिक स्तर पर नहीं है वरन भावात्मक स्तर पर निरंतर विद्यमान है।

संस्कृति मानव द्वारा सीखे हुए व्यवहार की समग्रता है। यह पीढ़ियों द्वारा अर्जित गुण है। ऐसा गुण, जो लगातार व्यवहार में आते-आते मनुष्य की स्वाभाविक पहचान एवं अभिव्यक्ति बन जाता है। यह मानवीय संबंधों के हर प्रसंग एवं प्रस्थान-भाषा, खान-पान, रहन-सहन, व्यवहार, आदि में परिलक्षित होता है।

हमारे महानगर भारतीय संदर्भ में नगरीय जीवन की चरम परिणति है। नगरीय संस्कृति आमतौर पर ग्रामीण संस्कृति से भिन्न होती है। मानवीय संबंध, यंत्रीकरण, संचार-सुविधा आदि ऐसे आयाम है, जो उन्हें ग्रामीण संस्कृति से अलग करते हैं। लेकिन महानगरीय संस्कृति यहाँ से वहाँ तक एक जैसी हो, यह आवश्यक नहीं। भारत के विभिन्न महानगरों की अपनी सांस्कृतिक विशिष्टताएँ हैं। वह कई अर्थों में एक दूसरे से स्वभावतः अलग है। हर महानगरीय जीवन का एक अपना अलग मुहावरा एवं दायरा होता है जिसे उस महानगर के लोग जीते हैं, जानते हैं। फिर भी, कोई अदृश्य सूत्र उन्हें जोड़े रहता है जिस कारण लोग दूसरे महानगरों की संस्कृति में भी खप जाते हैं।

लेकिन महानगरीय संदर्भ में ही, बात अगर सात समंदर पार की हो तब यह वस्तुतः एकदम से दूसरी हो उठती है। विज्ञान की तरक्क़ी से पहले आवागमन के साधन पर्याप्त न होने से लोगों की आवा-जाही सीमित थी। लेकिन बाद में जैसे-जैसे मानव सभ्यता विकसित हुई– वैसे-वैसे सीमाएँ टूटने लगीं। लोग एक शहर से दूसरे शहर और एक देश से दूसरे देश ही नहीं, एक महादेश से दूसरे महादेश तक की दूरी को लाँघने लगे। शिक्षा, व्यापार, बेहतर जीवन, विवाह आदि इसके प्रमुख कारण रहे हैं। कई बार अकारण विस्थापन भी प्रवास का कारण बनता है। वहीं दूसरी ओर शिक्षा या जीविका के लिए आंतरिक प्रवास भी होता रहा है।

प्रस्तुत संग्रह की 'तीसरा और अंतिम महादेश' और 'मिसेज़ सेन की कहानी' जीविका के लिए विदेश प्रवास के उदाहरण है। 'असली दरबान' कहानी बूढ़ी माँ के अभिशप्त विस्थापन की कहानी है। 'सेक्सी' की मुख्य पात्रा मिरांडा अपना शहर छोड़कर बोस्टन में नौकरी कर रही होती है जहाँ कोई उसे जानने वाला नहीं है।

जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे महानगर में जाने को उद्यत होता है तब यात्रा से जुड़ी पूरी तैयारी करता है। नयी चीज़ों को सीखने के लिए और नई स्थितियों का सामना करने के लिए तैयार होने तक। 'तीसरे और अंतिम महादेश' का नायक जब अमेरिका जा रहा होता है तब अपने सफ़र के दौरान 'स्टूडेंट गाइड टू नार्थ अमेरिका' पढ़ता है, जिससे उसे पता चलता है कि अमेरिकन सड़क की दाहिनी तरफ़ गाड़ी चलाते हैं न कि बाईं तरफ़। वे लिफ़्ट को 'इलेवेटर' और 'इंगेज़्ड' फ़ोन को 'बिजी' बताते हैं। कथावाचक अपनी भावी यात्रा के बारे में इतना उत्सुक था कि घर पर उसने अपनी रोती हुई नयी नवेली बीवी को चुप कराने के बजाए गाईडबुक पढ़ना ज़्यादा श्रेयस्कर समझता है।

बाद में जब उसकी बीवी अमेरिका आने वाली होती है तब पति को उसकी कहीं अधिक चिंता होती है - "उस सुबह मुझे लगा कि इस तरह की दुर्घटना, जल्द ही मेरे लिए चिंता का विषय बननेवाली है। माला का ध्यान रखना मेरी ज़िम्मदारी थी...........

उसे मुझे समझाना था कि किस राह पर वह न चले, यातायात के नियम क्या हैं, कि कैसे वह साड़ी पहने कि जिससे उसका सिरा सड़क पर न घिसटे।"[1]

आगे भी उसे ध्यान आता है कि कैसे उसने लंदन के शुरूआती दिन में ट्यूब लेना सीखा था और कैसे एस्केलेटर पर चढ़ना जाना था। तब उसे पता चला था कि वहाँ के लोग 'पेपर' को 'पीपर' कहते हैं और इस बात को समझने में पूरे एक साल लगे थे कि जब ट्रेन एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन के लिए रवाना होती है तब कंडक्टर के 'माइंड द गैप' कहने का क्या मतलब होता था।

भाषा एक प्रमुख सांस्कृतिक लक्षण है। भाषिक एकता जुड़ाव पैदा करनेवाली होती है। चूँकि भाषा संवाद का पहला जरिया है इसलिए भाषाई अस्मिता किसी भी समाज और उसकी इकाई व्यक्ति के लिए भी प्रमुख होती है। प्रवासियों को भाषाई संक्रमण झेलना पड़ता है।

वे जहाँ भी प्रवासित होते हों वहाँ की भाषा उनकी व्यवहार की भाषा बनती है जब कि घर में मातृ-भाषा प्रमुखता पाती है। 'तीसरा और अंतिम महादेश' का नायक लंदन में बांग्ला भाषा-भाषी बंगाली युवकों के साथ ही रहता है। अमेरिका जाने के बाद उसने पहली बार अपनी बीवी से बांग्ला में एयरपोर्ट पर बात की। यह बात अलग है कि उसके बात करने का लहज़ा लगभग वही था जो मिसेज़ क्रॉफ़्ट के साथ का था। अंत में, वह अपने बेटे के बारे में बात करते हुए सोचता है कि क्या उसकी आने वाली पीढ़ी उसकी सांस्कृतिक-भाषिक विरासत को अक्षुण्ण रख पाएगी?-

"तब हम उसे मिलने कैम्ब्रिज़ जाते, या सप्ताहांत पर उसे घर ले आते, जिससे वह हमारे साथ बैठकर अपने हाथों से चावल खा सके और बांग्ला में बात कर सके। यह ऐसी चीज़ थी, जिसके बारे में हम चिंतित थे कि हमारी मृत्यु के बाद वह शायद ही ऐसा करे।"[2]

लाहिड़ी का अनुभव स्वयं इस मामले में कुछ यूँ रहा है –

"The first words I learned to utter and understand were in my parent's native language, Bengali. While English was not technically my first language, it has become so..."[3]

इन उदाहरणों से कथानायक की चिंता अस्वाभाविक नहीं है। 'मिसेज़ सेन की कहानी में' मिस्टर और मिसेज़ सेन आपस में बांग्ला में बात करते हैं लेकिन एलियट के सामने और बाहर वे अंग्रेज़ी में ही बात करते हैं।

'सेक्सी' में मिरांडा अपने दूर होते शादीशुदा प्रेमी देव को और समझने के लिए बांग्ला लिखने और सीखने का प्रयास करती है। प्रयास करके वह लिखती भी है लेकिन अपना ही लिखा हुआ शब्द उसे अजीब जान पड़ता है। तब उसे यह सोचकर बेतुका लगता है कि उसने जो लिखा उसका दुनिया के किसी ख़ास भाग में एक ख़ास अर्थ भी होता है। इसी तरह देव उसे बताता है कि अंग्रेजी माध्यम में शिक्षित होने के बावजूद हॉलीवुड के फिल्मों के उच्चारण को समझने में उसे काफ़ी समय लगा था। 'असली दरबान' की बूढ़ी माँ पूर्वी बंगाल से विस्थापित होकर आयी है। यह उसके बांग्ला बोलने के लहज़े से लगता है - "बूढ़ी माँ के इस लंबे एकालाप में कितनी सच्चाई है, इसके बारे में कोई भी आश्वस्त नहीं था............। इसमें किसी को कोई शक नहीं था कि वह शरणार्थी थी, यह उसके बांग्ला बोलने के लहज़े से ही लगता था।"[4]

भारतीय महानगरीय सभ्यता और अमेरिकी महानगरीय सभ्यता में अंतर बहुत स्पष्ट है। इसी अंतर को प्रवासियों को झेलना भी पड़ता है। कहानी संकलन के मुख्य पृष्ठ पर झुम्पा ने कहानियों के बारे में लिखा है– "tell the lives of Indians in exile, of people navigating between the strict traditions they've inherited and the baffling New World they must encounter everyday.[5]

यह बात 'मिसेज़ सेन की कहानी' से स्पष्ट हो जाती है। मिसेज़ सेन मिस्टर सेन की पत्नी हैं, जो गणित के प्रोफ़ेसर हैं। वह उसी तरह अमेरिका आती है जिस तरह 'अंतिम महादेश' की माला। 'अंतिम महादेश' का नायक यह महसूस करता है: "मेरी ही तरह, माला भी अपने घर से इतनी दूर चली आयी है, यह बिना जाने कि वह

कहाँ जा रही है, उसे क्या मिलेगा, किसी और कारण से नहीं बस इसलिए कि वह मेरी पत्नी है।"[6] लेकिन मिस्टर सेन को शायद इतनी फ़िक्र नहीं या वह अपने काम में ज्यादा व्यस्त रहते हैं। मिसेज़ सेन समय बिताने के लिए एलियट नाम के बालक के लिए बेबी-सिटर का काम अपने ही घर पर करती हैं। एक बार मिसेज़ सेन एलियट से पूछती है कि यदि वह जोर लगाकर चिल्लाए तब क्या होगा? एलियट को बात समझ नहीं आती। तब वह बताती है कि उसके यहाँ घर पर जब कोई तेज़ आवाज़ में चिल्लाता है दुःख के मारे या खुशी से, तब पड़ोस के लोग वहाँ इकट्ठे हो जाते हैं खबर को बाँटने या सहायता के लिए। एलियट अपने घर के बारे में सोचता है जहाँ पड़ोस में पार्टी होती है और फ़ोन का नंबर ढूँढ कर बताना पड़ता है कि वे शोर कम करें। स्पष्ट है कि दोनों महानगरों की संस्कृति में पर्याप्त अंतर हैं। एलियट अमेरिकन है। उसकी समझ अमेरिकन संस्कृति क तहत विकसित हुई है। मिसेज़ सेन का परिवार भारतीय बंगाली संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। चूँकि एलियट के नजरिये से कहानी लिखी गयी है इसलिए दोनों संस्कृतियों के बीच का अंतर उभर कर सामने आता है। उसे पता है कि जब मिसेज़ सेन घर कहती हैं तब उनका मतलब उस अपार्टमेंट से नहीं होता जहाँ वह बैठकर सब्ज़ियाँ काट रही होती हैं बल्कि बंगाल होता है।

मिसेज़ सेन को अमेरिका रास नहीं आता। वह अपने आप को वहाँ के अनुसार ढालने की पूरी कोशिश करती हैं पर उनका मन कहीं और ही अटका होता है। जब वह कार चलाना सीख रही होती है तब एलियट उससे कहता है कि वह कार चलाना सीखकर कहीं भी जा सकती है। मिसेज़ सेन कहती है– "क्या मैं ड्राइव करते हुए कलकत्ते तक जा सकती हूँ? कितना समय लगेगा एलियट? दस हज़ार मील, पचास मील प्रति घंटे की रफ़्तार से?"[7]

स्पष्ट है कि मिसेज़ सेन के मन में कलकत्ता बसा हुआ है। कलकत्ते की हर चीज़ उसके मन में हूक उठाती है। यह नॉस्टेल्जिया झुम्पा लाहिड़ी की कहानियों की विशेषता है।

भारतीय महानगर से अमेरिकी महानगर में प्रवास के कारण सबसे ज़्यादा फ़र्क उन महिलाओं को पड़ता है जो प्रवासित पुरुष की पत्नियाँ होती हैं। चूँकि पुरुष अपनी योग्यता और कार्यदक्षता के बल पर प्रवसन के लिए सक्षम होता है इसलिए वह नए जगह में व्यवस्थित होने के लिए बहुत जल्दी अनुकूलित हो जाता है। उसका कारण यह होता है कि उसे संबंधित जानकारी लगातार मिलती रहती है और वह जल्द ही वहाँ के वातावरण में अपने-आप को खपा लेता है। इसके विपरीत महिलाएँ पत्नी के रूप में आती हैं और वहाँ सामान्यतः गृहिणी ही होती हैं। ऐसे में, उनके लिए किसी भी नये वातावरण में अपने को खपाना मुश्किल होता है। लम्बी सांस्कृतिक एवं जातीय परंपरा भी इसका प्रमुख कारण होता है।

'तीसरा और अंतिम महादेश' का नायक माला को बाहर घुमाने का प्रस्ताव रखता है तब वह इस तरह तैयार होती है: "माला अपनी बुनाई छोड़ कर बाथरूम में ग़ायब हो गयी। जब वह तैयार होकर बाहर आई तब मुझे खीझ हुई, कि मैंने ऐसी बात क्यों छेड़ी। उसने सिल्क की साड़ी पहन रखी थी और ऊपर से और भी चूड़ियाँ डाल ली थी। सिर पर बालों को वेणी की तरह गूँथ कर दोनों तरह फुग्गा सा काढ़ रखा था। वह ऐसे सजी थी मानों किसी पार्टी में जाना हो या कम-से-कम सिनेमा जाना हो।"[8]

इसी तरह जब एलियट की माँ मिसेज़ सेन से पहली बार बात करने आती है तब मिसेज़ सेन ने भी कुछ ऐसा ही पहन रखा था: "उसने चमकदार सफ़ेद साड़ी पहन रखी थी, जिस पर नारंगी रंग के पंख की आकृति के डिज़ायन बने थे। यह किसी शाम की पार्टी के लिए ज्यादा फ़बतीं बनिस्पत उस हल्के रिमझिमाते अगस्त के दोपहर के।"[9]

इसका कारण यह है कि उन्हें बाहर निकलने का या ज़्यादा बाहर घूमने का मौक़ा ही नहीं मिलता। इसकी पूर्ति वे साधारण मौक़े पर ही ऐसा कर पूरा करने की कोशिश करती हैं। इसका उन्हें क्षोभ भी है। उनके घर वाले समझते हैं अमेरिका स्वर्ग है उनकी उनकी ज़िंदगी बेहतरीन है। ऐसी ही मनः स्थिति में मिसेज सेन एलियट से

कहती है: "इसे मैंने कभी भी पहना है? और इसे? वह दराज़ में से एक-एक करके साड़ी उछालती रही, फिर बहुत सारे हैंगर निकाली। बिस्तर पर जैसे उलझे हुए कपड़ों को ढेर दिख रहा था।"

"तस्वीरें भेजो", वे लिखते हैं, "अपनी नई ज़िन्दगी की तस्वीरें भेजो।" मैं उन्हें कौन-सी तस्वीर भेजूँ?"......

"एलियट, वे समझते हैं कि मैं रानी की तरह जा रही हूँ।" उसने कमरे की सूनी दीवारों की तरफ़ देखा।" वे सोचते हैं कि मैं बटन दबाती हूँ और घर साफ़ हो जाता है। उन्हें लगता है कि मैं महल में रहती हूँ।"[10]

'सेक्सी' शीर्षक कहानी की नायिका मिरांडा का नज़रिया भारतीय संस्कृति के प्रति उम्र के साथ बदलता है। जब वह छोटी थी तब उसके पड़ोस में दीक्षित परिवार था। वह परिवार उनकी नजर में पूरी तरह मिसफ़िट था। मिस्टर और मिसेज़ दीक्षित ही नहीं उनके बच्चे भी एक तरह से सामाजिक बहिष्कार के शिकार थे। इसका कारण था उनके रहने का तरीक़ा। वे अपने आप को अमेरिकी संस्कृति में पूरी तरह ढालने में नाकाम रहे थे, यही कारण था कि वे हर जगह उपेक्षित होते थे। लक्ष्मी मिरांडा के साथ काम करती थी। देवजीत मित्र उसका प्रेमी था। देव के संपर्क में आने पर उसे हाथी, रेगिस्तान और झील में तैरते हुए संगमरमर के चबूतरे दिखने लगे। ऐसा इस इस कारण हुआ क्योंकि हर संस्कृति की अपनी परतें होती हैं। यह वर्गीय भेद पर भी निर्भर करता है। देव उच्च वर्ग से है इसलिए उसकी सांस्कृतिक विरासत दीक्षित परिवार से थोड़ी अलग है।

'मिसेज़ सेन की कहानी' की मिसेज सेन आग्रही हैं। वह एलियट की माँ के घर आने पर बिना कुछ खाए जाने नहीं देती। यह अमेरिकी महानगरीय संस्कृति के उलट है, जहाँ इतनी औपचारिकता नहीं निभायी जाती।

'असली दरबान' की बूढ़ी माँ विस्थापित शरणार्थी है। गुज़ारे के लिए वह सीढ़ियाँ बुहारने का काम करती है। शायद वह कहानियाँ ही बनाती है लेकिन उसके

पास ढेर सारी कहानियाँ हैं जिनमें शायद थोड़ी सच्चाई भी हो। लेकिन लोगों के लिए वह महज कौतूहल का साधन, सीढ़ियों को साफ़ करने वाली और दरबान है। वह वहाँ पर अपने को स्थापित करने की पुरज़ोर कोशिश करती है लेकिन बेसिन की चोरी की घटना उसे कटघरे में ला खड़ा करती है और उसे धक्के देकर बाहर निकाल दिया जाता है। नियति उसे यहाँ ला खड़ी करती है जहाँ उसे उसी के भरोसे रहना है, अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद।

'मिसेज़ सेन की कहानी' में एलियट को मिसेज़ सेन का घर इसलिए अच्छा लगता है कि वहाँ संबंधों की उष्मा है। उसके अपने घर पर जो पड़ोसी है उनसे बस दूर का नाता है- देखकर हाथ हिलाने भर का या कभी टेलिफ़ोन से बात कर लेने भर का। मिसेज सेन बताती हैं कि कैसे उनके कलकत्ते में लोग एक-दूसरे के काम आते हैं चाहे ख़ुशी हो या विपदा, हर समय लोग एक दूसरे के लिए तैयार रहते हैं। जब मिसेज़ सेन की बहन की बेटी होन की ख़बर की चिट्ठी मिलती है तब उसकी ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता। उसकी ख़ुशी के सामने अपार्टमेंट छोटा पड़ गया और वे यहाँ-वहाँ घूमते रहे। लेकिन साथ ही वह निराश भी हुई - "मैं उसे कब देख पाऊँगी यह मि.सेन की छुट्टी पर निर्भर करता है और तब वह तीन साल की हो चुकी होगी। उसकी अपनी मौसी उसके लिए अजनबी होगी। अगर हम एक ट्रेन में आस-पास भी बैठें, तब भी वह चेहरे से नहीं पहचान पाएगी।"[11]

वह अपने अनुभव के आधार पर एलियट से पूछती है कि क्या उसे अपनी माँ की याद आती है। एलियट जवाब देता है कि रात में वे मिलते तो हैं। अमेरिकी संस्कृति में एलियट के लिए इस बात का कोई महत्व नहीं है इसलिए यह बात उसके दिमाग़ में कभी आयी ही नहीं। लेकिन अपने परिवार से बिछुड़ी मिसेज सेन के लिए यह बड़ी बात थी। वह कहती है: "जब मैं तुम्हारी उम्र की थी, तब मुझे कहाँ पता था कि एक दिन मैं इतनी दूर हो जाऊँगी। तुम ज़्यादा समझदार हो एलियट। तुमने पहले ही वह सब जान लिया, जो आज नहीं तो कल हो सकता है।"[12]

'तीसरा और अंतिम महादेश' का नायक छह हफ्तों के लिए मिसेज़ क्रॉफ्ट के घर पर किराये पर रहता है। मिसेज़ क्रॉफ्ट की उम्र सौ से ऊपर हो गई है। उसकी दुनिया ठहरी हुई है और वह अपने ज़माने के हिसाब से चीजों को देखती है। नये ज़माने में यह बात सनक के हद तक लगती है। लेकिन कथानायक झुँझलाते हुए भी इसका सम्मान करता है और उसे पर्याप्त आदर भी देता है। यही कारण है कि मिसेज़ क्रॉफ्ट की बेटी हेलेन उससे कहती है: "कुछ लड़के तो यहाँ से बेदम होकर भाग चुके हैं लेकिन मुझे लगता है कि वह तुम्हें चाहती है। तुम पहले ऐसे नौजवान हो जिसका उसने एक भद्रपुरुष के रूप में परिचय दिया है।"[13]

यह कथानायक का व्यवहार है जिसके कारण उसे भद्रपुरुष समझा जाता है। कथानायक भारतीय है और उसे इस बात की समझ है कि एक बूढ़ी महिला के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है।

'सेक्सी' कहानी में मिरांडा का संबंध एक शादीशुदा भारतीय युवक देव से है। देव से उसका संबंध उसके जीवन की रिक्तता को भर देता है। यह जानते हुए कि देव विवाहित है वह उससे अलग नहीं होती। लेकिन लक्ष्मी की बहन और उसके बेटे रोहिन से मिलने के बाद उसे यह एहसास होता है कि उसका यह क़दम एक परिवार को तोड़ सकता है। वह समझ जाती है कि यह संबंध न उसके लिए और न ही देव के लिए ही सही है। क्योंकि मिरांडा और देव की बीवी दोनों, इस हालात से बेहतर के भागी हैं। विदेश जाने के बाद पुरुष का विदेशी स्त्री के साथ संबंध एक लाचार भारतीय स्त्री को बर्बादी के कगार पर ला खड़ा करता है। अनजान जगह में और वह भी पराये देश में इन हालात से स्त्री बमुश्किल ही उबर पाती है।

"असली दरबान' की बूढ़ी माँ जब तक बिल्डिंग में रहनेवालों के लिए उपयोगी जान पड़ती है तब तक उसके प्रति लोगों का व्यवहार सौहार्द्रपूर्ण बना रहता है। वह उस बिल्डिंग के किसी घर में बेरोक-टोक आ जा सकती है। लेकिन जब लोगों का शक उसके ऊपर जाता है (बेसिन के चोरी होने पर) तब वे उसके प्रति अमानवीय व्यवहार पर उतर आते हैं:

"यह सब इसी का किया-धरा है।", उनमें से एक चिल्लाया, बूढ़ी माँ की तरफ़ इशारा करते हुए। "इसी ने चोरों को ख़बर दी। जब इसे गेट पर निगरानी के लिए रहना था, तब यह कहाँ थी?"

वहाँ के बाशिंदों ने उसकी बाल्टी, उसके चीथड़े उसकी टोकरी और उसके सरकण्डे की झाड़ू, सीढ़ियों के नीचे, लेटरबॉक्स और सरकने वाले दरवाजे से होते हुए गली में उछाल फेंका।"[14]

'तीसरा और अंतिम महादेश का कथानायक और उसका परिवार अमेरिका में बस तो जाते हैं लेकिन कलकत्ते से उनका लगाव कम नहीं होता है– "अब हम अमेरिकी नागरिक थे। इसलिए हम वहाँ पर वक्त पड़ने पर सामाजिक सुरक्षा की सुविधाएँ भी पा सकते थे। हालाँकि हम हर दूसरे-तीसरे वर्ष कलकत्ता जाते रहे थे, वहाँ से पायजामें और दार्जलिंग चाय लाते रहे, लेकिन हमने अपना जीवन यहीं बिताने की सोची।"[15]

वहाँ बसने के बाद उनकी अगली चिंता अपनी सांस्कृतिक विरासत की थी क्योंकि उन्हें डर था कि उनकी अगली पीढ़ी उसे बिसरा न दे। अपने बेटे के बारे क्या नायक सोचता है - "तब हम उसे मिलने कैम्ब्रिज़ जाते या सप्ताहांत पर उसे घर ले आते, जिसे वह हमारे साथ बैठकर अपने हाथों से चावल खा सके और बांग्ला में बात कर सके। यह ऐसी चीज़ थी जिसके बारे में हम चिंतित थे कि हमारी मुत्यु के बाद वह शायद ही ऐसा करे।"[16]

स्त्री-पुरुष संबंध भी दोनों संस्कृतियों के लिए अलग मायने रखते हैं। 'तीसरे और अंतिम महादेश' में कथानायक और उसकी पत्नी के बीच के संबंध महज औपचारिक रहते हैं। एयरपोर्ट पर जब कथानायक माला को लेने आता है, तब वह उससे अमेरिकन तरीक़े से आत्मीयता नहीं दिखाता- "मैंने न तो उसे गले लगाया, न चूमा और न ही उसके हाथ को अपने हाथ में लिया।"[17] बाद में चलकर जब उनमें प्रगाढ़ता बढ़ती है तब उनके संबंध दांपत्य संबंध में बदल जाते हैं।

'मिसेज़ सेन की कहानी' में एलियट जानता है कि मिस्टर और मिसेज़ सेन पति-पत्नी हैं। इसलिए उसे अजीब लगता है जब मिस्टर सेन मिसेज़ सेन से दूरी बनाए रहते हैं : "थोड़ी देर में मिस्टर सेन आ जाते हैं। वे एलियट का सिर तो थपथपाते थे, लेकिन मिसेज़ सेन को चूमते नहीं।"[18] वैसे ही जब वे बीच पर घूमने जाते हैं तब एलियट गौर करता है- "एलियट कैमरे की छोटी सी खिड़की से देखते हुए मिस्टर और मिसेज़ सेन के एक दूसरे के पास आने का इंतजार कर रहा था। लेकिन वे नहीं आए। उन्होंने न हाथ थामा और न ही एक दूसरे की कमर में हाथ डाले।"[19]

इसके बरक्स एलियट का परिवार अलग है उसके पिता उनसे दो हज़ार मील पश्चिम में रहते थे। उसकी माँ के पर-पुरुष के साथ संबंध है, यह बात उससे छिपाई नहीं जाती। उसे कोई फर्क भी नहीं पड़ता क्योंकि वहाँ की महानगरीय संस्कृति के लिए यह आम बात थी– "........ उसने अपनी दफ़्तर के एक आदमी को रात के खाने पर बुलाया था। उस आदमी ने उसकी माँ के बेडरूम में रात बिताई थी और एलियट ने उसे दोबारा नहीं देखा।"[20]

खान-पान की आदतें भी सांस्कृतिक विशिष्टता रखती हैं। जिस प्रदेश में लोग अधिवास करते हैं वहाँ के खास खाद्य पदार्थ की उपलब्धता उस प्रदेश के लोगों की खान-पान की आदतों को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक सांस्कृतिक प्रदेश से दूसरे सांस्कृतिक प्रदेश में संक्रमण खान-पान की आदतों को भी प्रभावित करती है।

'मिसेज़ सेन की कहानी' की मिसेज सेन का मछलियों के प्रति ललक पूरे बंगाली समुदाय के खान-पान की आदत को प्रदर्शित करता है। उसे साबुत मछली चाहिए होता है। लेकिन मिस्टर सेन की व्यस्तता उसे इससे गाहे-बेगाहे वंचित करती रहती है।

गाड़ी चलाने या सीखने से उसे नफ़रत है पर शायद एक बात उसे समझ आती है कि अगर वह यह सीख ले तब वह खुद ही मछली ला सकती है। बोस्टन भी समुद्र

के किनारे है, पर वहाँ का प्रतिकूल मौसम मछली की निरंतर उपलब्धता को प्रभावित करता है। तब मिसेज़ सेन को अपने कलकत्ते की याद आती है - "मिसेज़ सेन ने बताया कि वह दिन में दो बार मछली खाते हुए बड़ी हुई है। उसने आगे जोड़ा कि कलकत्ते में लोग दिन की शुरूआत मछली से करते हैं और अंत भी मछली खाकर साने से। अगर आप भाग्यशाली हों तो स्कूल के नाश्ते में भी मछली मिल जाती है। वे इसकी पूँछ, अंडे यहाँ तक मूड़ा भी खाते हैं। वे सब किसी भी मार्केट में मिल जाते थे, सुबह से लेकर आधी रात तक। आपको इतना भर करना होता था, बस किसी समय घर से निकालिए, थोड़ी दूर चलिए और आप पहुँच गए।"[21]

एलियट की माँ जब उसे मिसेज़ सेन के यहाँ लेने आती थी तब मिसेज सेन उसका स्वागत कुछ अल्पाहार देकर करती थी। एक बार उसने उसके लिए टूना का कोफ़्ता परोसा। इस पर उसका कहना था- "कोफ़्ता 'भोटकी' मछली का होना चाहिए था। यह तो बहुत अफसोसजनक है। मिसेज़ सेन ने दूसरे शब्द पर ज़ोर देते हुए खेद जताया। महासागर से इतने नज़दीक रहने पर भी जी भर कर मछली नहीं मिल पाती।"[22]

यह सही है कि गृहस्थी स्त्री के आने पर ही बसती है। खाना बनाने में या तो पुरुषों के हाथ तंग होते हैं या उनकी व्यस्तता इस काम के आड़े आती है। 'तीसरा और अंतिम महादेश' का नायक जब अमेरिका आता है तब वह अपना काम दूध और कार्नफ़्लेक्स, केले आदि से चलाता है। जब माला आ जाती है तब स्थिति सुधरती है - "जब मैं काम से लौटा तब मैंने देखा रसोई के दराज में आलू छीलनी पड़ी थी, टेबल के ऊपर टेबल क्लॉथ पड़ा था। स्टोव के ऊपर लहसुन और अदरख की खुशबू वाली चिकन करी रखी थी।"[23]

'असली दरबान' की बूढ़ी माँ शरणार्थी है लेकिन उन व्यंजनों को याद कर सकती थी जो उसकी बेटी के ब्याह में बने थे।

"चावल को गुलाब जल में पकाया गया था। .... सरसों में लिपटे झींगे को केले के पत्ते में लपेट कर पकाया गया था। ऐसा कोई सुस्वादु व्यंजन नहीं था जो न पकाया गया हो। यह हमारे लिए फ़िजूलख़र्ची नहीं थी। हम हफ़्ते में दो बार बकरे का गोश्त खाया करते थे।"[24]

उसे इस बात का मलाल है कि विस्थापित होकर उसे ऐसा नाटकीय जीवन जीना पड़ रहा है-

"जीना तो उसे कहते हैं जिसे मैंने वहाँ जिया। यहाँ तो मैं एक कटोरे में खाना खाती हूँ।"[25]

'सेक्सी कहानी की नायिका मिरांडा देव को समझने के लिए बंगाल को समझना चाहती है। उसे लगता है यह एक धर्म है। तब देव उसे बताता है कि यह भारत में एक प्रदेश हैं वह भारतीय दुकान में जाती है। भारतीय रेस्तरां में जाती है, वहाँ मुँह में पानी लाने वाले भारतीय व्यंजन चखती है। उसका स्वाद चाहे उसे जैसा भी लगे लेकिन इससे यह बात साफ है कि किसी व्यक्ति या उसके परिवेश को समझने के लिए अन्य बातों की जानकारी के साथ-साथ खान-पान की आदतों की जानकारी भी जरूरी है।

वेश-भूषा और पहनावा एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक पहचान है। साड़ी, कुर्ता-पायजामा पारंपरिक भारतीय परिधान हैं। अमेरिकी परिधान इनसे थोड़ा हट कर होते हैं। 'मिसेज़ सेन की कहानी' में एलियट इस अंतर को महसूस करता है। मिसेज सेन ने साड़ी पहन रखी है। उसके बरक्स वह अपनी माँ को देखता है- "उसने हल्के पीले-भूरे रंग की शार्ट्स पहन रखे थे और पैरों में 'रोप-सोल' की जूतियाँ। ....उस कमरे में जहा हर चीज़ इतनी सावधानी से ढँक कर रखी थी, वहीं उसके शेव किए हुए घुटने और जाँघ कुछ ज़्यादा ही खुले हुए दिख रहे थे।"[26]

लेकिन 'तीसरा और अंतिम महादेश' में बात पलट जाती है। वहाँ मिसेज क्रॉफ़्ट की उम्र सौ से ऊपर की है। ऐसे में उसे अपने ज़माने के पहनावे के तौर-तरीक़े पर

विश्वास है। वह अपनी बेटी हेलेन को कहती है - "एड़ी से इतना ऊपर कपड़े पहनना यह भी ठीक नहीं है।" हेलेन जवाब देती है- "माँ, तुम्हारी जानकारी के लिए बता दूँ यह 1969 ई. है। तुम्हारा क्या होगा जब तुम घर से बाहर निकलो और ऐसी लड़की को देखों जिसने मिनी स्कर्ट पहनी हो।"[27]

मिसेज क्रॉफ़्ट हेलेन को अकेले में पर-पुरुष से बात करने के लिए भी टोकती है। स्पष्ट है परिधान और आचार-व्यावहार संबंधी नैतिक मान्यताएँ समय के अनुसार बदलती हैं। लेकिन इतना तो निश्चित है कि विभिन्न संस्कृतियों के इससे प्रभावित होने की दर अलग-अलग है। तभी एलियट की माँ के लिए मिनी स्कर्ट या पर पुरुष के साथ देह संबंध सामान्य है जबकि मिसेज क्रॉफ़्ट के लिए अनुचित एवं अनैतिक।

"असली दरबान' में बूढी माँ के कपड़े उसकी माली हालात और पुरानेपन को दिखाते हैं। "मिसेज़ दलाल ने बूढ़ी माँ की साड़ी का आँचल उठाया- एक सफ़ेद-सी साड़ी, जिसका किनारा मैल से चीकट था।

उसने ब्लाउज़ के ऊपर और नीचे की खाल देखी उसका ब्लाउज भी पुराने ज़माने के फ़ैशन की थी।"[28]

परिधान के अलावा अन्य पारंपरिक चीज़ें जैसे सिंदूर, बिंदी, आलता, हँसुआ आदि भी एक अलग सांस्कृतिक पहचान देती हैं। 'तीसरा और अंतिम महादेश' का कथानायक अपनी बीवी माला को जब मिसेज़ क्राफ़्ट से मिलाने ले जाता है तब वह उसे ऊपर से नीचे तक घूरती हैं। कथानायक सोचता है– " मुझे लगता है मिसेज़ क्राफ़्ट ने शायद ही ऐसी महिला को देखा हो जा साड़ी पहने, सिर पर बिंदी लगाए, कलाइयों में ढेर सारे कंगन पहने हो। मुझे लगा कि अगर वह माला के पैरों में आलता लगा देख पातीं, तो उन्हें क्या लगता।"[29] जैसे ये सारी चीज़ें मिसेज़ क्रॉफ़्ट के लिए नयी थीं वैसे ही 'मिसेज़ सेन की कहानी' के एलियट के लिए मिसेज़ सेन के माथे पर लगा सिंदूर। एलियट को यह चीज अचंभित करती है– "पहली बार एलियट को लगा

था कि उसका माथा फूट गया है या फिर किसी चीज़ ने वह जगह काट खाई हो। लेकिन एक दिन उसने देखा, वह बाथरूम के आईने के सामने खड़ी हो एक तीली से बड़े गरिमापूर्ण तरीक़े से सिंदूर लगा रही थी.....।"[30] मिसेज की कार के दुर्घटनाग्रस्त होने पर पुलिस वाले को भी उसके माथे के सिंदूर को देखकर यह समझ बैठा कि दुर्घटना में मिसेज सेन का सिर फूट गया है। एलियट के यह पूछने पर कि वह ऐसा क्यों करती है मिसेज सेन जवाब देती है कि यह उसके विवाहिता होने की निशानी है - "बिल्कुल विवाह की अँगूठी की तरह। हाँ, इसके बर्तन धोने में खोने का डर नहीं रहता।"[31]

सिंदूर की तरह हँसुआ भी एलियट के लिए कौतुहल का विषय था। मिसेज़ सेन चीजों को काटने के लिए हँसुए का इस्तेमाल करती थीं। कहानीकार ने विस्तार से हँसुए का ब्यौरा दिया है, कि कैसे मिसेज़ सेन उसका इस्तेमाल उसकी तरफ़ देखे बग़ैर फटाफट करती है। भारत में यह हँसुआ केवल निजी ज़रूरत को ही पूरा नहीं करता बल्कि किसी आयोजन में इकट्ठे होने का ज़रिया भी बनता है - "जब भी परिवार में कोई शादी .... या बड़ा आयोजन होता, मेरी माँ में पड़ोस को सभी औरतों को संदेशा भिजवा देती कि वे अपना-अपना हँसुआ लेकर आएँ, ठीक इसी के जैसा। और तब वे सब मकान की छत पर बड़ा-सा घेरा बनाकर बैठ जातीं और हँसते बोलते रात भर में पचास-एक किलो सब्जियाँ काट डालतीं।"[32]

यह बात मामूली-सी जान पड़ती है लेकिन इसकी तुलना अगर हम एलियट के पड़ोस की पार्टी से करें तब अंतर साफ़ नज़र आता है। एक संस्कृति में जहाँ पड़ोसी-पड़ोसी को नहीं पूछता, किसी बात को बताने के लिए उसके टेलिफ़ोन का नंबर ढूँढने की ज़रूरत पड़ती है वहीं दूसरी तरफ़ सब्ज़ी काटने जैसे मामूली काम क लिए भी पूरा झुंड उमड़ पड़ता है। कहानीकार इस हँसुए के माध्यम से शायद इसी सादृश्य विधान की तरफ ईशारा किया हो।

जूते घर के बाहर उतारने की आदत भारतीय संस्कृति में है। यह उष्णकटिबंधीय क्षेत्र है अतः मौसम और स्वास्थ्य संबंधी कारणों से शायद यह आदत बनी हो। यूरोप

और अमेरिका में ठंड अधिक है अतः वहाँ घर के अंदर जूतों की मनाही नहीं है। आदत चाहे जिस कारण भी बनी हो लेकिन वह आसानी से छूटती नहीं। यही कारण है कि अमेरिका में बसे भारतीय मूल के परिवारों में आज भी जूतों को बाहर उतारने की ही आदत पायी जाती है।

'मिसेज़ सेन की कहानी' में एलियट इस बात पर गौर करता है। "एलियट का ध्यान बाहर के दरवाजे के पास गया, जहाँ छोटे-से टेक पर कई जोड़ियाँ क़तार में लगी थीं। उन्होंने 'फ्लिप-फ्लॉप्स' पहन रखे थे।"[33]

"एलियट ने मिसेज़ सेन के यहाँ जो पहली बात सीखी थी वह थी दरवाज़े पर चप्पल उतारना और उसे 'बुककेस' पर मिसेज़ सेन की चप्पलों वाली क़तार में रख देना।"[34]

'तीसरा और अंतिम महादेश' का नायक मिसेज़ क्रॉफ्ट के यहाँ किराये पर रहता है। उसकी बेटी हेलेन उससे मिलने उसके कमरे पर आती है। वह उसके कमरे को देख रही होती है। इसी क्रम में उसकी नज़र उसके पैरों पर जाती है- "उसने मेरी ख़ाली पैरों की तरफ़ देखा (मुझे घर के अंदर जूते पहनना बड़ा अजीब लगता है, मैं कमरे में आने से पहले हमेशा अपने जूते उतार दिया करता था।)"[35]

'सेक्सी' शीर्षक कहानी में जब मिरांडा अपने पड़ोसी दीक्षित के यहाँ उसकी बेटी के जन्मदिन पर जाती है तब वहाँ भी घर के बाहर उसे जूते का ढेर मिलता है। वही पर उसे एक अजीब-सी तस्वीर दिखती है: "एक नंगी औरत की तस्वीर थी, जिसके लाल चेहरे का आकार किसी सूरमा के ढाल जैसी थी।......... उसकी देह पर रक्त टपकाते मुण्डों की माला पॉपकॉर्न से बनी माला की तरह लटक रही थी। उसकी बाहर निकली जीभ मिरांडा की तरफ़ थी।

"यह देवी काली है।" मिसेज़ दीक्षित ने खूँटी को थोड़ा हिलाते हुए बताया।"[36]

धार्मिक आस्था व्यक्तिगत मामला है। लेकिन सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण देवी की तस्वीर जहाँ एक के मन में सिहरन और जुगुप्सा पैदा करती है वहीं दूसरे के मन में श्रद्वा और भक्ति।

एक संस्कृति से दुसरी संस्कृति के प्रवास में व्यक्ति को अकेलापन और यांत्रिकता की स्थिति को झेलना पड़ता है। बेगानेपन की यह स्थिति अनजानी जगह से जुड़ाव न पैदा हो पाने के कारण पैदा होता है। 'मिसेज़ सेन की कहानी' में मिसेज़ सेन एलियट को बताती है कि कैसे उसके घर पर लोग इकट्ठे होते हैं। किसी आयोजन पर लोग पूरी रात हँसी-मज़ाक़ करते हैं लेकिन यहाँ जैसे वह कट गयी है अपने परिचित परिवेश से– "उनकी बातों को सुनते हुए, उन रातों में सोना असंभव था। बैठक की खिड़की से उसके फ्रेम में जड़े पाईन के पेड़ को देखते हुए वह थोड़ी रूकी। यहाँ इस जगह , जहाँ मिस्टर सेन मुझे ले आए हैं, ऐसी ख़ामोशी में मैं कभी-कभी सो नहीं पाती।"[37]

एलियट भी अपने घर पर अकेलपन से जूझता था पर यह उसकी आदत में शुमार हो गया था।

'सेक्सी' में भी अकेलेपन की इस पीड़ा को दिखाया गया है। यह महानगरीय संस्कृति को अभिशाप है जिसे हर अकेले व्यक्ति को झेलना पड़ता है। हाँ, व्यक्ति और वर्ग के अनुसार इसके संदर्भ बदल जाते हैं। देव जब मिरांडा से कहता है कि उसे पता है कि अकेला रहना क्या होता है तब उसे लगता है कि देव उसे समझता है - "समझता है कि ट्यूब पर कुछ रातों में, अकेले सिनेमा देखने के बाद, किताब की दुकान पर मैगजीन पढ़ने के बाद ...... उसे कैसा लगता है।"[38]

'तीसरा और अंतिम महादेश' का कथानायक भी अमेरिका आने पर अकेलेपन को झेलता है। वहाँ पहुँच कर वाई.एम.सी.ए. में रुकने पर अकेलापन, शोर और थकान उसे परेशान करता है और इससे उसे घुटन भी महसूस होती है: "कार के तेज़ और लंबे हॉर्न एक-के-बाद-एक तेज़ आवाज़ में बजती थीं। पूरी रात सायरन वाली गाड़ियाँ, बसों

के काफ़िले के काफ़िले गुज़रते थे। उनके दरवाज़ों के खुलने और बंद होने, उनके इंजन गड़गड़ाने का शोर लगातार आता रहता था। यह शोर लगातार परेशान करने वाला था, कभी-कभी इससे घुटन-सी होती थी।"[39]

ऊपर के विश्लेषण से स्पष्ट है कि विवेच्य कहानियाँ महानगरीय संस्कृति के संदर्भ में उसकी विशिष्टताओं को उभारती हैं। एक वर्गीय संस्कृति जब एक बड़े महानगरीय संस्कृति से रू-ब-रू होती हैं तब दोनों की विशेषताएँ एक दूसरे को प्रभावित करती हैं।

इन कहानियों की सांस्कृतिक विशिष्टताओं को अनकूलन, भाषा, नॉस्टेल्जिया और आचार-व्यवहार, मानवीय संबंधों, खान-पान, वेश-भूषा, अकेलापन जैसी विशेषताओं के आधार पर उभारा गया है।

संदर्भ

---

[1] तीसरा और अंतिम महादेश, पृ. 22

[2] वही, पृ. 30

[3] www.kre.publisher.com <somdatta mandal>, पृ. 20

[4] असली दरबान, पृ. 62

[5] Prefatory note - Interpreter of maladies

[6] तीसरा और अंतिम महादेश, पृ. 28

[7] मिसेज़ सेन की कहानी, पृ. 48

[8] तीसरा और अंतिम महादेश, पृ. 25

[9] मिसेज़ सेन की कहानी, पृ. 33

[10] वही, पृ. 48

[11] वही, पृ. 45

[12] वही, पृ. 45

[13] तीसरा और अंतिम महादेश, पृ. 17

[14] असली दरबान, पृ. 73–74

[15] तीसरा और अंतिम महादेश, पृ. 29

[16] वही, पृ. 30

[17] वही, पृ. 23

[18] मिसेज़ सेन की कहानी, पृ. 46

[19] वही, पृ. 53

[20] वही, पृ. 45

[21] वही, पृ. 46

[22] वही, पृ. 45–46

[23] तीसरा और अंतिम महादेश, पृ. 25

[24] असली दरबान, पृ. 61

[25] वही, पृ. 61

[26] मिसेज़ सेन की कहानी, पृ. 38

[27] तीसरा और अंतिम महादेश, पृ. 18

[28] असली दरबान, पृ. 65

[29] तीसरा और अंतिम महादेश, पृ. 28

[30] मिसेज़ सेन की कहानी, पृ. 38

[31] वही, पृ. 39

[32] वही, पृ. 37

[33] वही, पृ. 33

[34] वही, पृ. 35

[35] तीसरा और अंतिम महादेश, पृ. 17

[36] सेक्सी, पृ. 90

[37] मिसेज़ सेन की कहानी, पृ. 37

[38] सेक्सी, पृ. 82

[39] तीसरा और अंतिम महादेश, पृ. 06

संदर्भ सूची

आधार ग्रन्थ

Jhumpa Lahiri : **Interpreter of Maladies**
stories of Bengal, boston and beyond
Harper Collins publishers India.
Thirty First Impression, 2006

सहायक सामग्री

- Bond without Bondage: Bharati Mukherjee and Jhumpalahiri - Sandeep Sareengi

  Contemporary Indian Writing in English Critical Perception

  Edit - N.D. R. Chandra

  Pub: Sam & Sons (ND)

  1st Edition 2005

- Jhumpa Lahiri's "Sexy": A Map of Misreadin

  Creative New Lit Series 67

  The Twentieth Century Indian Short Story in English

  Edit : Karmal Mehta

  Pub : Creative Books (ND)

  Edition : 2004

- Oriental essays on Indian English Writing.

O. Ramakrishna - Multiculturalism and Indian (English) Literature

Pub & Distribution : Atlantic

2005, New Delhi

- South Asian Literature in English An Encyclopedia Greenwood Press.

- That Third Space: Interrogating the Diasparic paradigm

  Authors, Text, issues essay on Indian Literature K. Satchedanendan,

  Pub- Rencraft International (ND)

  Edition- 1st 2003.

- Women in Interpreter of Maladies' by Jhumpa Lahiri

  -Dr. C.V.B.T. Sandari

  Indian Women writing in English New Perspective

  Edit: S. Prasauna Sree

  Pub: Samp and Sons (New Delhi)

  1st Edition 2005

Internet Sites

- cl.sage pub.com.
- krepublishers.com <oh calcutta.The New Bengal Movement in Diasporic Indian English- Somdutta Mandal
- www.bookshelved.org
- www.indiastar.com
- www.rigzin.freesewers.com
- www.salon.com/books/review

शब्दकोश

- **Bhargava's Pocket Dictionary of English Language**

  (Anglo-Hindi Edition)

  Bhargava book Depot.

- **Oxford Advanced Learner's dictionary**
  A S Hornby Oxford University Press
  Fifth edition, 1996

- **Sahni Advanced Dictionary, Sahni Brothers Agra, 2004**

- **The Oxford English minidictionary**
  Indian edition Fouth Edition
  Helen Liebeck Elaine Polland
  Oxford University Press

- **The Oxford Hindi-English Dictionary**
  R.S. McGregor
  Oxford University Press

- **चैंबर्स अंग्रजी -हिन्दी कोश**
  संपादक– डा. सुरोश अवस्थी
  डॉ. (श्रीमति) इंदुजा अवस्थी
  Allied Publishers Pvt Limited.

- **राजपाल हिन्दी शब्दकोश**
  हरदेव बाहरी
  राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1996

परिशिष्ट : मूल पाठ

A Real Durwan
Sexy
Mrs. Sen's
The Third and Final Continent

A Real Durwan

BOORI MA, sweeper of the stairwell, had not slept in two nights. So the morning before the third night she shook the mites out of her bedding. She shook the quilts once underneath the letter boxes where she lived, then once again at the mouth of the alley, causing the crows who were feeding on vegetable peels to scatter in several directions.

As she started up the four flights to the roof, Boori Ma kept one hand placed over the knee that swelled at the start of every rainy season. That meant that her bucket, quilts, and the bundle of reeds which served as her broom all had to be braced under one arm. Lately Boori Ma had been thinking that the stairs were getting steeper; climbing them felt more like climbing a ladder than a staircase. She was sixty-four years old, with hair in a knot no larger than a walnut, and she looked almost as narrow from the front as she did from the side.

In fact, the only thing that appeared three-dimensional about Boori Ma was her voice: brittle with sorrows, as tart as curds, and shrill enough to grate meat from a coconut. It was with this voice that she enumerated, twice a day as she swept the stairwell, the details of her plight and losses suffered since her deportation to Calcutta after Partition. At that time, she

maintained, the turmoil had separated her from a husband, four daughters, a two-story brick house, a rosewood *almari*, and a number of coffer boxes whose skeleton keys she still wore, along with her life savings, tied to the free end of her sari.

Aside from her hardships, the other thing Boori Ma liked to chronicle was easier times. And so, by the time she reached the second-floor landing, she had already drawn to the whole building's attention the menu of her third daughter's wedding night. "We married her to a school principal. The rice was cooked in rosewater. The mayor was invited. Everybody washed their fingers in pewter bowls." Here she paused, evened out her breath, and readjusted the supplies under her arm. She took the opportunity also to chase a cockroach out of the banister poles, then continued: "Mustard prawns were steamed in banana leaves. Not a delicacy was spared. Not that this was an extravagance for us. At our house, we ate goat twice a week. We had a pond on our property, full of fish."

By now Boori Ma could see some light from the roof spilling into the stairwell. And though it was only eight o'clock, the sun was already strong enough to warm the last of the cement steps under her feet. It was a very old building, the kind with bathwater that still had to be stored in drums, windows without glass, and privy scaffolds made of bricks.

"A man came to pick our dates and guavas. Another clipped hibiscus. Yes, there I tasted life. Here I eat my dinner from a rice pot." At this point in the recital Boori Ma's ears started to burn; a pain chewed through her swollen knee. "Have I mentioned that I crossed the border with just two bracelets on my wrist? Yet there was a day when my feet touched nothing but marble. Believe me, don't believe me, such comforts you cannot even dream them."

Whether there was any truth to Boori Ma's litanies no one

could be sure. For one thing, every day, the perimeters of her former estate seemed to double, as did the contents of her *almari* and coffer boxes. No one doubted she was a refugee; the accent in her Bengali made that clear. Still, the residents of this particular flat-building could not reconcile Boori Ma's claims to prior wealth alongside the more likely account of how she had crossed the East Bengal border, with the thousands of others, on the back of a truck, between sacks of hemp. And yet there were days when Boori Ma insisted that she had come to Calcutta on a bullock cart.

"Which was it, by truck or by cart?" the children sometimes asked her on their way to play cops and robbers in the alley. To which Boori Ma would reply, shaking the free end of her sari so that the skeleton keys rattled, "Why demand specifics? Why scrape lime from a betel leaf? Believe me, don't believe me. My life is composed of such griefs you cannot even dream them."

So she garbled facts. She contradicted herself. She embellished almost everything. But her rants were so persuasive, her fretting so vivid, that it was not so easy to dismiss her.

What kind of landowner ended up sweeping stairs? That was what Mr. Dalal of the third floor always wondered as he passed Boori Ma on his way to and from the office, where he filed receipts for a wholesale distributor of rubber tubes, pipes, and valve fittings in the plumbing district of College Street.

Bechareh, she probably constructs tales as a way of mourning the loss of her family, was the collective surmise of most of the wives.

And "Boori Ma's mouth is full of ashes, but she is the victim of changing times" was the refrain of old Mr. Chatterjee. He had neither strayed from his balcony nor opened a newspaper since Independence, but in spite of this fact, or maybe because of it, his opinions were always highly esteemed.

The theory eventually circulated that Boori Ma had once worked as hired help for a prosperous *zamindar* back east, and was therefore capable of exaggerating her past at such elaborate lengths and heights. Her throaty impostures hurt no one. All agreed that she was a superb entertainer. In exchange for her lodging below the letter boxes, Boori Ma kept their crooked stairwell spotlessly clean. Most of all, the residents liked that Boori Ma, who slept each night behind the collapsible gate, stood guard between them and the outside world.

No one in this particular flat-building owned much worth stealing. The second-floor widow, Mrs. Misra, was the only one with a telephone. Still, the residents were thankful that Boori Ma patrolled activities in the alley, screened the itinerant peddlers who came to sell combs and shawls from door to door, was able to summon a rickshaw at a moment's calling, and could, with a few slaps of her broom, rout any suspicious character who strayed into the area in order to spit, urinate, or cause some other trouble.

In short, over the years, Boori Ma's services came to resemble those of a real *durwan*. Though under normal circumstances this was no job for a woman, she honored the responsibility, and maintained a vigil no less punctilious than if she were the gatekeeper of a house on Lower Circular Road, or Jodhpur Park, or any other fancy neighborhood.

On the rooftop Boori Ma hung her quilts over the clothesline. The wire, strung diagonally from one corner of the parapet to the other, stretched across her view of television antennas, billboards, and the distant arches of Howrah Bridge. Boori Ma consulted the horizon on all four sides. Then she ran the tap at the base of the cistern. She washed her face, rinsed her feet, and rubbed two fingers over her teeth. After this she started to

beat the quilts on each side with her broom. Every now and then she stopped and squinted at the cement, hoping to identify the culprit of her sleepless nights. She was so absorbed in this process that it was some moments before she noticed Mrs. Dalal of the third floor, who had come to set a tray of salted lemon peels out to dry in the sun.

"Whatever is inside this quilt is keeping me awake at night," Boori Ma said. "Tell me, where do you see them?"

Mrs. Dalal had a soft spot for Boori Ma; occasionally she gave the old woman some ginger paste with which to flavor her stews. "I don't see anything," Mrs. Dalal said after a while. She had diaphanous eyelids and very slender toes with rings on them.

"Then they must have wings," Boori Ma concluded. She put down her broom and observed one cloud passing behind another. "They fly away before I can squash them. But just see my back. I must be purple from their bites."

Mrs. Dalal lifted the drape of Boori Ma's sari, a cheap white weave with a border the color of a dirty pond. She examined the skin above and below her blouse, cut in a style no longer sold in shops. Then she said, "Boori Ma, you are imagining things."

"I tell you, these mites are eating me alive."

"It could be a case of prickly heat," Mrs. Dalal suggested.

At this Boori Ma shook the free end of her sari and made her skeleton keys rattle. She said, "I know prickly heat. This is not prickly heat. I haven't slept in three, perhaps four days. Who can count? I used to keep a clean bed. Our linens were muslin. Believe me, don't believe me, our mosquito nets were as soft as silk. Such comforts you cannot even dream them."

"I cannot dream them," Mrs. Dalal echoed. She lowered her diaphanous eyelids and sighed. "I cannot dream them, Boori Ma. I live in two broken rooms, married to a man who sells

toilet parts." Mrs. Dalal turned away and looked at one of the quilts. She ran a finger over part of the stitching. Then she asked:

"Boori Ma, how long have you slept on this bedding?"

Boori Ma put a finger to her lips before replying that she could not remember.

"Then why no mention of it until today? Do you think it's beyond us to provide you with clean quilts? An oilcloth, for that matter?" She looked insulted.

"There is no need," Boori Ma said. "They are clean now. I beat them with my broom."

"I am hearing no arguments," Mrs. Dalal said. "You need a new bed. Quilts, a pillow. A blanket when winter comes." As she spoke Mrs. Dalal kept track of the necessary items by touching her thumb to the pads of her fingers.

"On festival days the poor came to our house to be fed," Boori Ma said. She was filling her bucket from the coal heap on the other side of the roof.

"I will have a word with Mr. Dalal when he returns from the office," Mrs. Dalal called back as she headed down the stairs. "Come in the afternoon. I will give you some pickles and some powder for your back."

"It's not prickly heat," Boori Ma said.

It was true that prickly heat was common during the rainy season. But Boori Ma preferred to think that what irritated her bed, what stole her sleep, what burned like peppers across her thinning scalp and skin, was of a less mundane origin.

She was ruminating on these things as she swept the stairwell — she always worked from top to bottom — when it started to rain. It came slapping across the roof like a boy in slippers too big for him and washed Mrs. Dalal's lemon peels into the gutter. Before pedestrians could open their umbrellas, it rushed down collars, pockets, and shoes. In that particular

beat the quilts on each side with her broom. Every now and then she stopped and squinted at the cement, hoping to identify the culprit of her sleepless nights. She was so absorbed in this process that it was some moments before she noticed Mrs. Dalal of the third floor, who had come to set a tray of salted lemon peels out to dry in the sun.

"Whatever is inside this quilt is keeping me awake at night," Boori Ma said. "Tell me, where do you see them?"

Mrs. Dalal had a soft spot for Boori Ma; occasionally she gave the old woman some ginger paste with which to flavor her stews. "I don't see anything," Mrs. Dalal said after a while. She had diaphanous eyelids and very slender toes with rings on them.

"Then they must have wings," Boori Ma concluded. She put down her broom and observed one cloud passing behind another. "They fly away before I can squash them. But just see my back. I must be purple from their bites."

Mrs. Dalal lifted the drape of Boori Ma's sari, a cheap white weave with a border the color of a dirty pond. She examined the skin above and below her blouse, cut in a style no longer sold in shops. Then she said, "Boori Ma, you are imagining things."

"I tell you, these mites are eating me alive."

"It could be a case of prickly heat," Mrs. Dalal suggested.

At this Boori Ma shook the free end of her sari and made her skeleton keys rattle. She said, "I know prickly heat. This is not prickly heat. I haven't slept in three, perhaps four days. Who can count? I used to keep a clean bed. Our linens were muslin. Believe me, don't believe me, our mosquito nets were as soft as silk. Such comforts you cannot even dream them."

"I cannot dream them," Mrs. Dalal echoed. She lowered her diaphanous eyelids and sighed. "I cannot dream them, Boori Ma. I live in two broken rooms, married to a man who sells

toilet parts." Mrs. Dalal turned away and looked at one of the quilts. She ran a finger over part of the stitching. Then she asked:

"Boori Ma, how long have you slept on this bedding?"

Boori Ma put a finger to her lips before replying that she could not remember.

"Then why no mention of it until today? Do you think it's beyond us to provide you with clean quilts? An oilcloth, for that matter?" She looked insulted.

"There is no need," Boori Ma said. "They are clean now. I beat them with my broom."

"I am hearing no arguments," Mrs. Dalal said. "You need a new bed. Quilts, a pillow. A blanket when winter comes." As she spoke Mrs. Dalal kept track of the necessary items by touching her thumb to the pads of her fingers.

"On festival days the poor came to our house to be fed," Boori Ma said. She was filling her bucket from the coal heap on the other side of the roof.

"I will have a word with Mr. Dalal when he returns from the office," Mrs. Dalal called back as she headed down the stairs. "Come in the afternoon. I will give you some pickles and some powder for your back."

"It's not prickly heat," Boori Ma said.

It was true that prickly heat was common during the rainy season. But Boori Ma preferred to think that what irritated her bed, what stole her sleep, what burned like peppers across her thinning scalp and skin, was of a less mundane origin.

She was ruminating on these things as she swept the stairwell — she always worked from top to bottom — when it started to rain. It came slapping across the roof like a boy in slippers too big for him and washed Mrs. Dalal's lemon peels into the gutter. Before pedestrians could open their umbrellas, it rushed down collars, pockets, and shoes. In that particular

flat-building and all the neighboring buildings, creaky shutters were closed and tied with petticoat strings to the window bars.

At the time, Boori Ma was working all the way down on the second-floor landing. She looked up the ladderlike stairs, and as the sound of falling water tightened around her she knew her quilts were turning into yogurt.

But then she recalled her conversation with Mrs. Dalal. And so she continued, at the same pace, to sweep the dust, cigarette ends, and lozenge wrappers from the rest of the steps, until she reached the letter boxes at the bottom. To keep out the wind, she rummaged through her baskets for some newspapers and crammed them into the diamond-shaped openings of the collapsible gate. Then on her bucket of coals she set her lunch to boil, and monitored the flame with a plaited palm fan.

That afternoon, as was her habit, Boori Ma reknotted her hair, untied the loose end of her sari, and counted out her life savings. She had just woken from a nap of twenty minutes, which she had taken on a temporary bed made from newspapers. The rain had stopped and now the sour smell that rises from wet mango leaves was hanging low over the alley.

On certain afternoons Boori Ma visited her fellow residents. She enjoyed drifting in and out of the various households. The residents, for their part, assured Boori Ma that she was always welcome; they never drew the latch bars across their doors except at night. They went about their business, scolding children or adding up expenses or picking stones out of the evening rice. From time to time she was handed a glass of tea, the cracker tin was passed in her direction, and she helped children shoot chips across the carom board. Knowing not to sit on the furniture, she crouched, instead, in doorways and hallways, and observed gestures and manners in the same way a person tends to watch traffic in a foreign city.

On this particular afternoon Boori Ma decided to accept Mrs. Dalal's invitation. Her back still itched, even after napping on the newspapers, and she was beginning to want some prickly-heat powder after all. She picked up her broom — she never felt quite herself without it — and was about to climb upstairs, when a rickshaw pulled up to the collapsible gate.

It was Mr. Dalal. The years he had spent filing receipts had left him with purple crescents under his eyes. But today his gaze was bright. The tip of his tongue played between his teeth, and in the clamp of his thighs he held two small ceramic basins.

"Boori Ma, I have a job for you. Help me carry these basins upstairs." He pressed a folded handkerchief to his forehead and throat and gave the rickshaw driver a coin. Then he and Boori Ma carried the basins all the way up to the third floor. It wasn't until they were inside the flat that he finally announced, to Mrs. Dalal, to Boori Ma, and to a few other residents who had followed them out of curiosity, the following things: That his hours filing receipts for a distributor of rubber tubes, pipes, and valve fittings had ended. That the distributor himself, who craved fresher air, and whose profits had doubled, was opening a second branch in Burdwan. And that, following an assessment of his sedulous performance over the years, the distributor was promoting Mr. Dalal to manage the College Street branch. In his excitement on his way home through the plumbing district, Mr. Dalal had bought two basins.

"What are we supposed to do with two basins in a two-room flat?" Mrs. Dalal demanded. She had already been sulking over her lemon peels. "Who ever heard of it? I still cook on kerosene. You refuse to apply for a phone. And I have yet to see the fridge you promised when we married. You expect two basins to make up for all that?"

The argument that followed was loud enough to be heard

all the way down to the letter boxes. It was loud enough, and long enough, to rise above a second spell of rain that fell after dark. It was loud enough even to distract Boori Ma as she swept the stairwell from top to bottom for the second time that day, and for this reason she spoke neither of her hardships, nor of easier times. She spent the night on a bed of newspapers.

The argument between Mr. and Mrs. Dalal was still more or less in effect early the next morning, when a barefoot team of workmen came to install the basins. After a night of tossing and pacing, Mr. Dalal had decided to install one basin in the sitting room of their flat, and the other one on the stairwell of the building, on the first-floor landing. "This way everyone can use it," he explained from door to door. The residents were delighted; for years they had all brushed their teeth with stored water poured from mugs.

Mr. Dalal, meanwhile, was thinking: A sink on the stairwell is sure to impress visitors. Now that he was a company manager, who could say who might visit the building?

The workmen toiled for several hours. They ran up and down the stairs and ate their lunches squatting against the banister poles. They hammered, shouted, spat, and cursed. They wiped their sweat with the ends of their turbans. In general, they made it impossible for Boori Ma to sweep the stairwell that day.

To occupy the time, Boori Ma retired to the rooftop. She shuffled along the parapets, but her hips were sore from sleeping on newspapers. After consulting the horizon on all four sides, she tore what was left of her quilts into several strips and resolved to polish the banister poles at a later time.

By early evening the residents gathered to admire the day's labors. Even Boori Ma was urged to rinse her hands under the clear running water. She sniffed. "Our bathwater was scented

with petals and attars. Believe me, don't believe me, it was a luxury you cannot dream."

Mr. Dalal proceeded to demonstrate the basin's various features. He turned each faucet completely on and completely off. Then he turned on both faucets at the same time, to illustrate the difference in water pressure. Lifting a small lever between the faucets allowed water to collect in the basin, if desired.

"The last word in elegance," Mr. Dalal concluded.

"A sure sign of changing times," Mr. Chatterjee reputedly admitted from his balcony.

Among the wives, however, resentment quickly brewed. Standing in line to brush their teeth in the mornings, each grew frustrated with having to wait her turn, for having to wipe the faucets after every use, and for not being able to leave her own soap and toothpaste tube on the basin's narrow periphery. The Dalals had their own sink; why did the rest of them have to share?

"Is it beyond us to buy sinks of our own?" one of them finally burst out one morning.

"Are the Dalals the only ones who can improve the conditions of this building?" asked another.

Rumors began spreading: that, following their argument, Mr. Dalal had consoled his wife by buying her two kilos of mustard oil, a Kashmiri shawl, a dozen cakes of sandalwood soap; that Mr. Dalal had filed an application for a telephone line; that Mrs. Dalal did nothing but wash her hands in her basin all day. As if this weren't enough, the next morning, a taxi bound for Howrah Station crammed its wheels into the alley; the Dalals were going to Simla for ten days.

"Boori Ma, I haven't forgotten. We will bring you back a sheep's-hair blanket made in the mountains," Mrs. Dalal said through the open window of the taxi. She was holding a

leather purse in her lap which matched the turquoise border of her sari.

"We will bring two!" cried Mr. Dalal, who was sitting beside his wife, checking his pockets to make sure his wallet was in place.

Of all the people who lived in that particular flat-building, Boori Ma was the only one who stood by the collapsible gate and wished them a safe journey.

As soon as the Dalals were gone, the other wives began planning renovations of their own. One decided to barter a stack of her wedding bracelets and commissioned a white-washer to freshen the walls of the stairwell. Another pawned her sewing machine and summoned an exterminator. A third went to the silversmith and sold back a set of pudding bowls; she intended to have the shutters painted yellow.

Workers began to occupy this particular flat-building night and day. To avoid the traffic, Boori Ma took to sleeping on the rooftop. So many people passed in and out of the collapsible gate, so many others clogged the alley at all times, that there was no point in keeping track of them.

After a few days Boori Ma moved her baskets and her cooking bucket to the rooftop as well. There was no need to use the basin downstairs, for she could just as easily wash, as she always had, from the cistern tap. She still planned to polish the banister poles with the strips she had torn from her quilts. She continued to sleep on her newspapers.

More rains came. Below the dripping awning, a newspaper pressed over her head, Boori Ma squatted and watched the monsoon ants as they marched along the clothesline, carrying eggs in their mouths. Damper winds soothed her back. Her newspapers were running low.

Her mornings were long, her afternoons longer. She could not remember her last glass of tea. Thinking neither of her

hardships nor of earlier times, she wondered when the Dalals would return with her new bedding.

She grew restless on the roof, and so for some exercise, Boori Ma started circling the neighborhood in the afternoons. Reed broom in hand, sari smeared with newsprint ink, she wandered through markets and began spending her life savings on small treats: today a packet of puffed rice, tomorrow some cashews, the day after that, a cup of sugarcane juice. One day she walked as far as the bookstalls on College Street. The next day she walked even farther, to the produce markets in Bow Bazaar. It was there, while she was standing in a shopping arcade surveying jackfruits and persimmons, that she felt something tugging on the free end of her sari. When she looked, the rest of her life savings and her skeleton keys were gone.

The residents were waiting for Boori Ma when she returned that afternoon at the collapsible gate. Baleful cries rang up and down the stairwell, all echoing the same news: the basin on the stairwell had been stolen. There was a big hole in the recently whitewashed wall, and a tangle of rubber tubes and pipes was sticking out of it. Chunks of plaster littered the landing. Boori Ma gripped her reed broom and said nothing.

In their haste the residents practically carried Boori Ma up the stairs to the roof, where they planted her on one side of the clothesline and started screaming at her from the other.

"This is all her doing," one of them hollered, pointing at Boori Ma. "She informed the robbers. Where was she when she was supposed to guard the gate?"

"For days she has been wandering the streets, speaking to strangers," another reported.

"We shared our coal, gave her a place to sleep. How could she betray us this way?" a third wanted to know.

Though none of them spoke directly to Boori Ma, she replied, "Believe me, believe me. I did not inform the robbers."

"For years we have put up with your lies," they retorted. "You expect us, now, to believe you?"

Their recriminations persisted. How would they explain it to the Dalals? Eventually they sought the advice of Mr. Chatterjee. They found him sitting on his balcony, watching a traffic jam.

One of the second-floor residents said, "Boori Ma has endangered the security of this building. We have valuables. The widow Mrs. Misra lives alone with her phone. What should we do?"

Mr. Chatterjee considered their arguments. As he thought things over, he adjusted the shawl that was wrapped around his shoulders and gazed at the bamboo scaffolding that now surrounded his balcony. The shutters behind him, colorless for as long as he could remember, had been painted yellow. Finally he said:

"Boori Ma's mouth is full of ashes. But that is nothing new. What is new is the face of this building. What a building like this needs is a real *durwan.*"

So the residents tossed her bucket and rags, her baskets and reed broom, down the stairwell, past the letter boxes, through the collapsible gate, and into the alley. Then they tossed out Boori Ma. All were eager to begin their search for a real *durwan.*

From the pile of belongings Boori Ma kept only her broom. "Believe me, believe me," she said once more as her figure began to recede. She shook the free end of her sari, but nothing rattled.

Sexy

IT WAS A WIFE'S WORST NIGHTMARE. After nine years of marriage, Laxmi told Miranda, her cousin's husband had fallen in love with another woman. He sat next to her on a plane, on a flight from Delhi to Montreal, and instead of flying home to his wife and son, he got off with the woman at Heathrow. He called his wife, and told her he'd had a conversation that had changed his life, and that he needed time to figure things out. Laxmi's cousin had taken to her bed.

"Not that I blame her," Laxmi said. She reached for the Hot Mix she munched throughout the day, which looked to Miranda like dusty orange cereal. "Imagine. An English girl, half his age." Laxmi was only a few years older than Miranda, but she was already married, and kept a photo of herself and her husband, seated on a white stone bench in front of the Taj Mahal, tacked to the inside of her cubicle, which was next to Miranda's. Laxmi had been on the phone for at least an hour, trying to calm her cousin down. No one noticed; they worked for a public radio station, in the fund-raising department, and were surrounded by people who spent all day on the phone, soliciting pledges.

"I feel worst for the boy," Laxmi added. "He's been at home for days. My cousin said she can't even take him to school."

"It sounds awful," Miranda said. Normally Laxmi's phone conversations — mainly to her husband, about what to cook for dinner — distracted Miranda as she typed letters, asking members of the radio station to increase their annual pledge in exchange for a tote bag or an umbrella. She could hear Laxmi clearly, her sentences peppered every now and then with an Indian word, through the laminated wall between their desks. But that afternoon Miranda hadn't been listening. She'd been on the phone herself, with Dev, deciding where to meet later that evening.

"Then again, a few days at home won't hurt him." Laxmi ate some more Hot Mix, then put it away in a drawer. "He's something of a genius. He has a Punjabi mother and a Bengali father, and because he learns French and English at school he already speaks four languages. I think he skipped two grades."

Dev was Bengali, too. At first Miranda thought it was a religion. But then he pointed it out to her, a place in India called Bengal, in a map printed in an issue of *The Economist.* He had brought the magazine specially to her apartment, for she did not own an atlas, or any other books with maps in them. He'd pointed to the city where he'd been born, and another city where his father had been born. One of the cities had a box around it, intended to attract the reader's eye. When Miranda asked what the box indicated, Dev rolled up the magazine, and said, "Nothing you'll ever need to worry about," and he tapped her playfully on the head.

Before leaving her apartment he'd tossed the magazine in the garbage, along with the ends of the three cigarettes he always smoked in the course of his visits. But after she watched his car disappear down Commonwealth Avenue, back to his

house in the suburbs, where he lived with his wife, Miranda retrieved it, and brushed the ashes off the cover, and rolled it in the opposite direction to get it to lie flat. She got into bed, still rumpled from their lovemaking, and studied the borders of Bengal. There was a bay below and mountains above. The map was connected to an article about something called the Gramin Bank. She turned the page, hoping for a photograph of the city where Dev was born, but all she found were graphs and grids. Still, she stared at them, thinking the whole while about Dev, about how only fifteen minutes ago he'd propped her feet on top of his shoulders, and pressed her knees to her chest, and told her that he couldn't get enough of her.

She'd met him a week ago, at Filene's. She was there on her lunch break, buying discounted pantyhose in the Basement. Afterward she took the escalator to the main part of the store, to the cosmetics department, where soaps and creams were displayed like jewels, and eye shadows and powders shimmered like butterflies pinned behind protective glass. Though Miranda had never bought anything other than a lipstick, she liked walking through the cramped, confined maze, which was familiar to her in a way the rest of Boston still was not. She liked negotiating her way past the women planted at every turn, who sprayed cards with perfume and waved them in the air; sometimes she would find a card days afterward, folded in her coat pocket, and the rich aroma, still faintly preserved, would warm her as she waited on cold mornings for the T.

That day, stopping to smell one of the more pleasing cards, Miranda noticed a man standing at one of the counters. He held a slip of paper covered in a precise, feminine hand. A saleswoman took one look at the paper and began to open drawers. She produced an oblong cake of soap in a black case, a hydrat-

ing mask, a vial of cell renewal drops, and two tubes of face cream. The man was tanned, with black hair that was visible on his knuckles. He wore a flamingo pink shirt, a navy blue suit, a camel overcoat with gleaming leather buttons. In order to pay he had taken off pigskin gloves. Crisp bills emerged from a burgundy wallet. He didn't wear a wedding ring.

"What can I get you, honey?" the saleswoman asked Miranda. She looked over the tops of her tortoiseshell glasses, assessing Miranda's complexion.

Miranda didn't know what she wanted. All she knew was that she didn't want the man to walk away. He seemed to be lingering, waiting, along with the saleswoman, for her to say something. She stared at some bottles, some short, others tall, arranged on an oval tray, like a family posing for a photograph.

"A cream," Miranda said eventually.

"How old are you?"

"Twenty-two."

The saleswoman nodded, opening a frosted bottle. "This may seem a bit heavier than what you're used to, but I'd start now. All your wrinkles are going to form by twenty-five. After that they just start showing."

While the saleswoman dabbed the cream on Miranda's face, the man stood and watched. While Miranda was told the proper way to apply it, in swift upward strokes beginning at the base of her throat, he spun the lipstick carousel. He pressed a pump that dispensed cellulite gel and massaged it into the back of his ungloved hand. He opened a jar, leaned over, and drew so close that a drop of cream flecked his nose.

Miranda smiled, but her mouth was obscured by a large brush that the saleswoman was sweeping over her face. "This is blusher Number Two," the woman said. "Gives you some color."

Miranda nodded, glancing at her reflection in one of the angled mirrors that lined the counter. She had silver eyes and skin as pale as paper, and the contrast with her hair, as dark and glossy as an espresso bean, caused people to describe her as striking, if not pretty. She had a narrow, egg-shaped head that rose to a prominent point. Her features, too, were narrow, with nostrils so slim that they appeared to have been pinched with a clothespin. Now her face glowed, rosy at the cheeks, smoky below the brow bone. Her lips glistened.

The man was glancing in a mirror, too, quickly wiping the cream from his nose. Miranda wondered where he was from. She thought he might be Spanish, or Lebanese. When he opened another jar, and said, to no one in particular, "This one smells like pineapple," she detected only the hint of an accent.

"Anything else for you today?" the saleswoman asked, accepting Miranda's credit card.

"No thanks."

The woman wrapped the cream in several layers of red tissue. "You'll be very happy with this product." Miranda's hand was unsteady as she signed the receipt. The man hadn't budged.

"I threw in a sample of our new eye gel," the saleswoman added, handing Miranda a small shopping bag. She looked at Miranda's credit card before sliding it across the counter. "Bye-bye, Miranda."

Miranda began walking. At first she sped up. Then, noticing the doors that led to Downtown Crossing, she slowed down.

"Part of your name is Indian," the man said, pacing his steps with hers.

She stopped, as did he, at a circular table piled with sweaters, flanked with pinecones and velvet bows. "Miranda?"

"Mira. I have an aunt named Mira."

His name was Dev. He worked in an investment bank back that way, he said, tilting his head in the direction of South Station. He was the first man with a mustache, Miranda decided, she found handsome.

They walked together toward Park Street station, past the kiosks that sold cheap belts and handbags. A fierce January wind spoiled the part in her hair. As she fished for a token in her coat pocket, her eyes fell to his shopping bag. "And those are for her?"

"Who?"

"Your Aunt Mira."

"They're for my wife." He uttered the words slowly, holding Miranda's gaze. "She's going to India for a few weeks." He rolled his eyes. "She's addicted to this stuff."

Somehow, without the wife there, it didn't seem so wrong. At first Miranda and Dev spent every night together, almost. He explained that he couldn't spend the whole night at her place, because his wife called every day at six in the morning, from India, where it was four in the afternoon. And so he left her apartment at two, three, often as late as four in the morning, driving back to his house in the suburbs. During the day he called her every hour, it seemed, from work, or from his cell phone. Once he learned Miranda's schedule he left her a message each evening at five-thirty, when she was on the T coming back to her apartment, just so, he said, she could hear his voice as soon as she walked through the door. "I'm thinking about you," he'd say on the tape. "I can't wait to see you." He told her he liked spending time in her apartment, with its kitchen counter no wider than a breadbox, and scratchy floors that sloped, and a buzzer in the lobby that always made a slightly

embarrassing sound when he pressed it. He said he admired her for moving to Boston, where she knew no one, instead of remaining in Michigan, where she'd grown up and gone to college. When Miranda told him it was nothing to admire, that she'd moved to Boston precisely for that reason, he shook his head. "I know what it's like to be lonely," he said, suddenly serious, and at that moment Miranda felt that he understood her — understood how she felt some nights on the T, after seeing a movie on her own, or going to a bookstore to read magazines, or having drinks with Laxmi, who always had to meet her husband at Alewife station in an hour or two. In less serious moments Dev said he liked that her legs were longer than her torso, something he'd observed the first time she walked across a room naked. "You're the first," he told her, admiring her from the bed. "The first woman I've known with legs this long."

Dev was the first to tell her that. Unlike the boys she dated in college, who were simply taller, heavier versions of the ones she dated in high school, Dev was the first always to pay for things, and hold doors open, and reach across a table in a restaurant to kiss her hand. He was the first to bring her a bouquet of flowers so immense she'd had to split it up into all six of her drinking glasses, and the first to whisper her name again and again when they made love. Within days of meeting him, when she was at work, Miranda began to wish that there were a picture of her and Dev tacked to the inside of her cubicle, like the one of Laxmi and her husband in front of the Taj Mahal. She didn't tell Laxmi about Dev. She didn't tell anyone. Part of her wanted to tell Laxmi, if only because Laxmi was Indian, too. But Laxmi was always on the phone with her cousin these days, who was still in bed, whose husband was still in London, and whose son still wasn't going to

school. "You must eat something," Laxmi would urge. "You mustn't lose your health." When she wasn't speaking to her cousin, she spoke to her husband, shorter conversations, in which she ended up arguing about whether to have chicken or lamb for dinner. "I'm sorry," Miranda heard her apologize at one point. "This whole thing just makes me a little paranoid."

Miranda and Dev didn't argue. They went to movies at the Nickelodeon and kissed the whole time. They ate pulled pork and cornbread in Davis Square, a paper napkin tucked like a cravat into the collar of Dev's shirt. They sipped sangria at the bar of a Spanish restaurant, a grinning pig's head presiding over their conversation. They went to the MFA and picked out a poster of water lilies for her bedroom. One Saturday, following an afternoon concert at Symphony Hall, he showed her his favorite place in the city, the Mapparium at the Christian Science center, where they stood inside a room made of glowing stained-glass panels, which was shaped like the inside of a globe, but looked like the outside of one. In the middle of the room was a transparent bridge, so that they felt as if they were standing in the center of the world. Dev pointed to India, which was red, and far more detailed than the map in *The Economist.* He explained that many of the countries, like Siam and Italian Somaliland, no longer existed in the same way; the names had changed by now. The ocean, as blue as a peacock's breast, appeared in two shades, depending on the depth of the water. He showed her the deepest spot on earth, seven miles deep, above the Mariana Islands. They peered over the bridge and saw the Antarctic archipelago at their feet, craned their necks and saw a giant metal star overhead. As Dev spoke, his voice bounced wildly off the glass, sometimes loud, sometimes soft, sometimes seeming to land in Miranda's chest,

sometimes eluding her ear altogether. When a group of tourists walked onto the bridge, she could hear them clearing their throats, as if through microphones. Dev explained that it was because of the acoustics.

Miranda found London, where Laxmi's cousin's husband was, with the woman he'd met on the plane. She wondered which of the cities in India Dev's wife was in. The farthest Miranda had ever been was to the Bahamas once when she was a child. She searched but couldn't find it on the glass panels. When the tourists left and she and Dev were alone again, he told her to stand at one end of the bridge. Even though they were thirty feet apart, Dev said, they'd be able to hear each other whisper.

"I don't believe you," Miranda said. It was the first time she'd spoken since they'd entered. She felt as if speakers were embedded in her ears.

"Go ahead," he urged, walking backward to his end of the bridge. His voice dropped to a whisper. "Say something." She watched his lips forming the words; at the same time she heard them so clearly that she felt them under her skin, under her winter coat, so near and full of warmth that she felt herself go hot.

"Hi," she whispered, unsure of what else to say.

"You're sexy," he whispered back.

At work the following week, Laxmi told Miranda that it wasn't the first time her cousin's husband had had an affair. "She's decided to let him come to his senses," Laxmi said one evening as they were getting ready to leave the office. "She says it's for the boy. She's willing to forgive him for the boy." Miranda waited as Laxmi shut off her computer. "He'll come crawling back, and she'll let him," Laxmi said, shaking her head. "Not

me. If my husband so much as looked at another woman I'd change the locks." She studied the picture tacked to her cubicle. Laxmi's husband had his arm draped over her shoulder, his knees leaning in toward her on the bench. She turned to Miranda. "Wouldn't you?"

She nodded. Dev's wife was coming back from India the next day. That afternoon he'd called Miranda at work, to say he had to go to the airport to pick her up. He promised he'd call as soon as he could.

"What's the Taj Mahal like?" she asked Laxmi.

"The most romantic spot on earth." Laxmi's face brightened at the memory. "An everlasting monument to love."

While Dev was at the airport, Miranda went to Filene's Basement to buy herself things she thought a mistress should have. She found a pair of black high heels with buckles smaller than a baby's teeth. She found a satin slip with scalloped edges and a knee-length silk robe. Instead of the pantyhose she normally wore to work, she found sheer stockings with a seam. She searched through piles and wandered through racks, pressing back hanger after hanger, until she found a cocktail dress made of a slinky silvery material that matched her eyes, with little chains for straps. As she shopped she thought about Dev, and about what he'd told her in the Mapparium. It was the first time a man had called her sexy, and when she closed her eyes she could still feel his whisper drifting through her body, under her skin. In the fitting room, which was just one big room with mirrors on the walls, she found a spot next to an older woman with a shiny face and coarse frosted hair. The woman stood barefoot in her underwear, pulling the black net of a body stocking taut between her fingers.

"Always check for snags," the woman advised.

Miranda pulled out the satin slip with scalloped edges. She held it to her chest.

The woman nodded with approval. "Oh yes."

"And this?" She held up the silver cocktail dress.

"Absolutely," the woman said. "He'll want to rip it right off you."

Miranda pictured the two of them at a restaurant in the South End they'd been to, where Dev had ordered foie gras and a soup made with champagne and raspberries. She pictured herself in the cocktail dress, and Dev in one of his suits, kissing her hand across the table. Only the next time Dev came to visit her, on a Sunday afternoon several days since the last time they'd seen each other, he was in gym clothes. After his wife came back, that was his excuse: on Sundays he drove into Boston and went running along the Charles. The first Sunday she opened the door in the knee-length robe, but Dev didn't even notice it; he carried her over to the bed, wearing sweatpants and sneakers, and entered her without a word. Later, she slipped on the robe when she walked across the room to get him a saucer for his cigarette ashes, but he complained that she was depriving him of the sight of her long legs, and demanded that she remove it. So the next Sunday she didn't bother. She wore jeans. She kept the lingerie at the back of a drawer, behind her socks and everyday underwear. The silver cocktail dress hung in her closet, the tag dangling from the seam. Often, in the morning, the dress would be in a heap on the floor; the chain straps always slipped off the metal hanger.

Still, Miranda looked forward to Sundays. In the mornings she went to a deli and bought a baguette and little containers of things Dev liked to eat, like pickled herring, and potato salad, and tortes of pesto and mascarpone cheese. They ate in

bed, picking up the herring with their fingers and ripping the baguette with their hands. Dev told her stories about his childhood, when he would come home from school and drink mango juice served to him on a tray, and then play cricket by a lake, dressed all in white. He told her about how, at eighteen, he'd been sent to a college in upstate New York during something called the Emergency, and about how it took him years to be able to follow American accents in movies, in spite of the fact that he'd had an English-medium education. As he talked he smoked three cigarettes, crushing them in a saucer by the side of her bed. Sometimes he asked her questions, like how many lovers she'd had (three) and how old she'd been the first time (nineteen). After lunch they made love, on sheets covered with crumbs, and then Dev took a nap for twelve minutes. Miranda had never known an adult who took naps, but Dev said it was something he'd grown up doing in India, where it was so hot that people didn't leave their homes until the sun went down. "Plus it allows us to sleep together," he murmured mischievously, curving his arm like a big bracelet around her body.

Only Miranda never slept. She watched the clock on her bedside table, or pressed her face against Dev's fingers, intertwined with hers, each with its half-dozen hairs at the knuckle. After six minutes she turned to face him, sighing and stretching, to test if he was really sleeping. He always was. His ribs were visible through his skin as he breathed, and yet he was beginning to develop a paunch. He complained about the hair on his shoulders, but Miranda thought him perfect, and refused to imagine him any other way.

At the end of twelve minutes Dev would open his eyes as if he'd been awake all along, smiling at her, full of a contentment she wished she felt herself. "The best twelve minutes of the

week." He'd sigh, running a hand along the backs of her calves. Then he'd spring out of bed, pulling on his sweatpants and lacing up his sneakers. He would go to the bathroom and brush his teeth with his index finger, something he told her all Indians knew how to do, to get rid of the smoke in his mouth. When she kissed him good-bye she smelled herself sometimes in his hair. But she knew that his excuse, that he'd spent the afternoon jogging, allowed him to take a shower when he got home, first thing.

Apart from Laxmi and Dev, the only Indians whom Miranda had known were a family in the neighborhood where she'd grown up, named the Dixits. Much to the amusement of the neighborhood children, including Miranda, but not including the Dixit children, Mr. Dixit would jog each evening along the flat winding streets of their development in his everyday shirt and trousers, his only concession to athletic apparel a pair of cheap Keds. Every weekend, the family — mother, father, two boys, and a girl — piled into their car and went away, to where nobody knew. The fathers complained that Mr. Dixit did not fertilize his lawn properly, did not rake his leaves on time, and agreed that the Dixits' house, the only one with vinyl siding, detracted from the neighborhood's charm. The mothers never invited Mrs. Dixit to join them around the Armstrongs' swimming pool. Waiting for the school bus with the Dixit children standing to one side, the other children would say "The Dixits dig shit," under their breath, and then burst into laughter.

One year, all the neighborhood children were invited to the birthday party of the Dixit girl. Miranda remembered a heavy aroma of incense and onions in the house, and a pile of shoes heaped by the front door. But most of all she remembered a

piece of fabric, about the size of a pillowcase, which hung from a wooden dowel at the bottom of the stairs. It was a painting of a naked woman with a red face shaped like a knight's shield. She had enormous white eyes that tilted toward her temples, and mere dots for pupils. Two circles, with the same dots at their centers, indicated her breasts. In one hand she brandished a dagger. With one foot she crushed a struggling man on the ground. Around her body was a necklace composed of bleeding heads, strung together like a popcorn chain. She stuck her tongue out at Miranda.

"It is the goddess Kali," Mrs. Dixit explained brightly, shifting the dowel slightly in order to straighten the image. Mrs. Dixit's hands were painted with henna, an intricate pattern of zigzags and stars. "Come please, time for cake."

Miranda, then nine years old, had been too frightened to eat the cake. For months afterward she'd been too frightened even to walk on the same side of the street as the Dixits' house, which she had to pass twice daily, once to get to the bus stop, and once again to come home. For a while she even held her breath until she reached the next lawn, just as she did when the school bus passed a cemetery.

It shamed her now. Now, when she and Dev made love, Miranda closed her eyes and saw deserts and elephants, and marble pavilions floating on lakes beneath a full moon. One Saturday, having nothing else to do, she walked all the way to Central Square, to an Indian restaurant, and ordered a plate of tandoori chicken. As she ate she tried to memorize phrases printed at the bottom of the menu, for things like "delicious" and "water" and "check, please." The phrases didn't stick in her mind, and so she began to stop from time to time in the foreign-language section of a bookstore in Kenmore Square, where she studied the Bengali alphabet in the Teach Yourself

series. Once she went so far as to try to transcribe the Indian part of her name, "Mira," into her Filofax, her hand moving in unfamiliar directions, stopping and turning and picking up her pen when she least expected to. Following the arrows in the book, she drew a bar from left to right from which the letters hung; one looked more like a number than a letter, another looked like a triangle on its side. It had taken her several tries to get the letters of her name to resemble the sample letters in the book, and even then she wasn't sure if she'd written Mira or Mara. It was a scribble to her, but somewhere in the world, she realized with a shock, it meant something.

During the week it wasn't so bad. Work kept her busy, and she and Laxmi had begun having lunch together at a new Indian restaurant around the corner, during which Laxmi reported the latest status of her cousin's marriage. Sometimes Miranda tried to change the topic; it made her feel the way she once felt in college, when she and her boyfriend at the time had walked away from a crowded house of pancakes without paying for their food, just to see if they could get away with it. But Laxmi spoke of nothing else. "If I were her I'd fly straight to London and shoot them both," she announced one day. She snapped a papadum in half and dipped it into chutney. "I don't know how she can just wait this way."

Miranda knew how to wait. In the evenings she sat at her dining table and coated her nails with clear nail polish, and ate salad straight from the salad bowl, and watched television, and waited for Sunday. Saturdays were the worst because by Saturday it seemed that Sunday would never come. One Saturday when Dev called, late at night, she heard people laughing and talking in the background, so many that she asked him if he

was at a concert hall. But he was only calling from his house in the suburbs. "I can't hear you that well," he said. "We have guests. Miss me?" She looked at the television screen, a sitcom that she'd muted with the remote control when the phone rang. She pictured him whispering into his cell phone, in a room upstairs, a hand on the doorknob, the hallway filled with guests. "Miranda, do you miss me?" he asked again. She told him that she did.

The next day, when Dev came to visit, Miranda asked him what his wife looked like. She was nervous to ask, waiting until he'd smoked the last of his cigarettes, crushing it with a firm twist into the saucer. She wondered if they'd quarrel. But Dev wasn't surprised by the question. He told her, spreading some smoked whitefish on a cracker, that his wife resembled an actress in Bombay named Madhuri Dixit.

For an instant Miranda's heart stopped. But no, the Dixit girl had been named something else, something that began with P. Still, she wondered if the actress and the Dixit girl were related. She'd been plain, wearing her hair in two braids all through high school.

A few days later Miranda went to an Indian grocery in Central Square which also rented videos. The door opened to a complicated tinkling of bells. It was dinnertime, and she was the only customer. A video was playing on a television hooked up in a corner of the store: a row of young women in harem pants were thrusting their hips in synchrony on a beach.

"Can I help you?" the man standing at the cash register asked. He was eating a samosa, dipping it into some dark brown sauce on a paper plate. Below the glass counter at his waist were trays of more plump samosas, and what looked like pale, diamond-shaped pieces of fudge covered with foil, and

some bright orange pastries floating in syrup. "You like some video?"

Miranda opened up her Filofax, where she had written "Mottery Dixit." She looked up at the videos on the shelves behind the counter. She saw women wearing skirts that sat low on the hips and tops that tied like bandannas between their breasts. Some leaned back against a stone wall, or a tree. They were beautiful, the way the women dancing on the beach were beautiful, with kohl-rimmed eyes and long black hair. She knew then that Madhuri Dixit was beautiful, too.

"We have subtitled versions, miss," the man continued. He wiped his fingertips quickly on his shirt and pulled out three titles.

"No," Miranda said. "Thank you, no." She wandered through the store, studying shelves lined with unlabeled packets and tins. The freezer case was stuffed with bags of pita bread and vegetables she didn't recognize. The only thing she recognized was a rack lined with bags and bags of the Hot Mix that Laxmi was always eating. She thought about buying some for Laxmi, then hesitated, wondering how to explain what she'd been doing in an Indian grocery.

"Very spicy," the man said, shaking his head, his eyes traveling across Miranda's body. "Too spicy for you."

By February, Laxmi's cousin's husband still hadn't come to his senses. He had returned to Montreal, argued bitterly with his wife for two weeks, packed two suitcases, and flown back to London. He wanted a divorce.

Miranda sat in her cubicle and listened as Laxmi kept telling her cousin that there were better men in the world, just waiting to come out of the woodwork. The next day the cousin said she and her son were going to her parents' house in Cali-

fornia, to try to recuperate. Laxmi convinced her to arrange a weekend layover in Boston. "A quick change of place will do you good," Laxmi insisted gently, "besides which, I haven't seen you in years."

Miranda stared at her own phone, wishing Dev would call. It had been four days since their last conversation. She heard Laxmi dialing directory assistance, asking for the number of a beauty salon. "Something soothing," Laxmi requested. She scheduled massages, facials, manicures, and pedicures. Then she reserved a table for lunch at the Four Seasons. In her determination to cheer up her cousin, Laxmi had forgotten about the boy. She rapped her knuckles on the laminated wall.

"Are you busy Saturday?"

The boy was thin. He wore a yellow knapsack strapped across his back, gray herringbone trousers, a red V-necked sweater, and black leather shoes. His hair was cut in a thick fringe over his eyes, which had dark circles under them. They were the first thing Miranda noticed. They made him look haggard, as if he smoked a great deal and slept very little, in spite of the fact that he was only seven years old. He clasped a large sketch pad with a spiral binding. His name was Rohin.

"Ask me a capital," he said, staring up at Miranda.

She stared back at him. It was eight-thirty on a Saturday morning. She took a sip of coffee. "A what?"

"It's a game he's been playing," Laxmi's cousin explained. She was thin like her son, with a long face and the same dark circles under her eyes. A rust-colored coat hung heavy on her shoulders. Her black hair, with a few strands of gray at the temples, was pulled back like a ballerina's. "You ask him a country and he tells you the capital."

"You should have heard him in the car," Laxmi said. "He's already memorized all of Europe."

"It's not a game," Rohin said. "I'm having a competition with a boy at school. We're competing to memorize all the capitals. I'm going to beat him."

Miranda nodded. "Okay. What's the capital of India?"

"That's no good." He marched away, his arms swinging like a toy soldier. Then he marched back to Laxmi's cousin and tugged at a pocket of her overcoat. "Ask me a hard one."

"Senegal," she said.

"Dakar!" Rohin exclaimed triumphantly, and began running in larger and larger circles. Eventually he ran into the kitchen. Miranda could hear him opening and closing the fridge.

"Rohin, don't touch without asking," Laxmi's cousin called out wearily. She managed a smile for Miranda. "Don't worry, he'll fall asleep in a few hours. And thanks for watching him."

"Back at three," Laxmi said, disappearing with her cousin down the hallway. "We're double-parked."

Miranda fastened the chain on the door. She went to the kitchen to find Rohin, but he was now in the living room, at the dining table, kneeling on one of the director's chairs. He unzipped his knapsack, pushed Miranda's basket of manicure supplies to one side of the table, and spread his crayons over the surface. Miranda stood over his shoulder. She watched as he gripped a blue crayon and drew the outline of an airplane.

"It's lovely," she said. When he didn't reply, she went to the kitchen to pour herself more coffee.

"Some for me, please," Rohin called out.

She returned to the living room. "Some what?"

"Some coffee. There's enough in the pot. I saw."

She walked over to the table and sat opposite him. At times

he nearly stood up to reach for a new crayon. He barely made a dent in the director's chair.

"You're too young for coffee."

Rohin leaned over the sketch pad, so that his tiny chest and shoulders almost touched it, his head tilted to one side. "The stewardess let me have coffee," he said. "She made it with milk and lots of sugar." He straightened, revealing a woman's face beside the plane, with long wavy hair and eyes like asterisks. "Her hair was more shiny," he decided, adding, "My father met a pretty woman on a plane, too." He looked at Miranda. His face darkened as he watched her sip. "Can't I have just a little coffee? Please?"

She wondered, in spite of his composed, brooding expression, if he were the type to throw a tantrum. She imagined his kicking her with his leather shoes, screaming for coffee, screaming and crying until his mother and Laxmi came back to fetch him. She went to the kitchen and prepared a cup for him as he'd requested. She selected a mug she didn't care for, in case he dropped it.

"Thank you," he said when she put it on the table. He took short sips, holding the mug securely with both hands.

Miranda sat with him while he drew, but when she attempted to put a coat of clear polish on her nails he protested. Instead he pulled out a paperback world almanac from his knapsack and asked her to quiz him. The countries were arranged by continent, six to a page, with the capitals in boldface, followed by a short entry on the population, government, and other statistics. Miranda turned to a page in the Africa section and went down the list.

"Mali," she asked him.

"Bamako," he replied instantly.

"Malawi."

"Lilongwe."

She remembered looking at Africa in the Mapparium. She remembered the fat part of it was green.

"Go on," Rohin said.

"Mauritania."

"Nouakchott."

"Mauritius."

He paused, squeezed his eyes shut, then opened them, defeated. "I can't remember."

"Port Louis," she told him.

"Port Louis." He began to say it again and again, like a chant under his breath.

When they reached the last of the countries in Africa, Rohin said he wanted to watch cartoons, telling Miranda to watch them with him. When the cartoons ended, he followed her to the kitchen, and stood by her side as she made more coffee. He didn't follow her when she went to the bathroom a few minutes later, but when she opened the door she was startled to find him standing outside.

"Do you need to go?"

He shook his head but walked into the bathroom anyway. He put the cover of the toilet down, climbed on top of it, and surveyed the narrow glass shelf over the sink which held Miranda's toothbrush and makeup.

"What's this for?" he asked, picking up the sample of eye gel she'd gotten the day she met Dev.

"Puffiness."

"What's puffiness?"

"Here," she explained, pointing.

"After you've been crying?"

"I guess so."

Rohin opened the tube and smelled it. He squeezed a drop

of it onto a finger, then rubbed it on his hand. "It stings." He inspected the back of his hand closely, as if expecting it to change color. "My mother has puffiness. She says it's a cold, but really she cries, sometimes for hours. Sometimes straight through dinner. Sometimes she cries so hard her eyes puff up like bullfrogs."

Miranda wondered if she ought to feed him. In the kitchen she discovered a bag of rice cakes and some lettuce. She offered to go out, to buy something from the deli, but Rohin said he wasn't very hungry, and accepted one of the rice cakes. "You eat one too," he said. They sat at the table, the rice cakes between them. He turned to a fresh page in his sketch pad. "You draw."

She selected a blue crayon. "What should I draw?"

He thought for a moment. "I know," he said. He asked her to draw things in the living room: the sofa, the director's chairs, the television, the telephone. "This way I can memorize it."

"Memorize what?"

"Our day together." He reached for another rice cake.

"Why do you want to memorize it?"

"Because we're never going to see each other, ever again."

The precision of the phrase startled her. She looked at him, feeling slightly depressed. Rohin didn't look depressed. He tapped the page. "Go on."

And so she drew the items as best as she could — the sofa, the director's chairs, the television, the telephone. He sidled up to her, so close that it was sometimes difficult to see what she was doing. He put his small brown hand over hers. "Now me."

She handed him the crayon.

He shook his head. "No, now draw me."

"I can't," she said. "It won't look like you."

The brooding look began to spread across Rohin's face again, just as it had when she'd refused him coffee. "Please?"

She drew his face, outlining his head and the thick fringe of hair. He sat perfectly still, with a formal, melancholy expression, his gaze fixed to one side. Miranda wished she could draw a good likeness. Her hand moved in conjunction with her eyes, in unknown ways, just as it had that day in the bookstore when she'd transcribed her name in Bengali letters. It looked nothing like him. She was in the middle of drawing his nose when he wriggled away from the table.

"I'm bored," he announced, heading toward her bedroom. She heard him opening the door, opening the drawers of her bureau and closing them.

When she joined him he was inside the closet. After a moment he emerged, his hair disheveled, holding the silver cocktail dress. "This was on the floor."

"It falls off the hanger."

Rohin looked at the dress and then at Miranda's body. "Put it on."

"Excuse me?"

"Put it on."

There was no reason to put it on. Apart from in the fitting room at Filene's she had never worn it, and as long as she was with Dev she knew she never would. She knew they would never go to restaurants, where he would reach across a table and kiss her hand. They would meet in her apartment, on Sundays, he in his sweatpants, she in her jeans. She took the dress from Rohin and shook it out, even though the slinky fabric never wrinkled. She reached into the closet for a free hanger.

"Please put it on," Rohin asked, suddenly standing behind

her. He pressed his face against her, clasping her waist with both his thin arms. "Please?"

"All right," she said, surprised by the strength of his grip.

He smiled, satisfied, and sat on the edge of her bed.

"You have to wait out there," she said, pointing to the door. "I'll come out when I'm ready."

"But my mother always takes her clothes off in front of me."

"She does?"

Rohin nodded. "She doesn't even pick them up afterward. She leaves them all on the floor by the bed, all tangled.

"One day she slept in my room," he continued. "She said it felt better than her bed, now that my father's gone."

"I'm not your mother," Miranda said, lifting him by the armpits off her bed. When he refused to stand, she picked him up. He was heavier than she expected, and he clung to her, his legs wrapped firmly around her hips, his head resting against her chest. She set him down in the hallway and shut the door. As an extra precaution she fastened the latch. She changed into the dress, glancing into the full-length mirror nailed to the back of the door. Her ankle socks looked silly, and so she opened a drawer and found the stockings. She searched through the back of the closet and slipped on the high heels with the tiny buckles. The chain straps of the dress were as light as paper clips against her collarbone. It was a bit loose on her. She could not zip it herself.

Rohin began knocking. "May I come in now?"

She opened the door. Rohin was holding his almanac in his hands, muttering something under his breath. His eyes opened wide at the sight of her. "I need help with the zipper," she said. She sat on the edge of the bed.

Rohin fastened the zipper to the top, and then Miranda

stood up and twirled. Rohin put down the almanac. "You're sexy," he declared.

"What did you say?"

"You're sexy."

Miranda sat down again. Though she knew it meant nothing, her heart skipped a beat. Rohin probably referred to all women as sexy. He'd probably heard the word on television, or seen it on the cover of a magazine. She remembered the day in the Mapparium, standing across the bridge from Dev. At the time she thought she knew what his words meant. At the time they'd made sense.

Miranda folded her arms across her chest and looked Rohin in the eyes. "Tell me something."

He was silent.

"What does it mean?"

"What?"

"That word. 'Sexy.' What does it mean?"

He looked down, suddenly shy. "I can't tell you."

"Why not?"

"It's a secret." He pressed his lips together, so hard that a bit of them went white.

"Tell me the secret. I want to know."

Rohin sat on the bed beside Miranda and began to kick the edge of the mattress with the backs of his shoes. He giggled nervously, his thin body flinching as if it were being tickled.

"Tell me," Miranda demanded. She leaned over and gripped his ankles, holding his feet still.

Rohin looked at her, his eyes like slits. He struggled to kick the mattress again, but Miranda pressed against him. He fell back on the bed, his back straight as a board. He cupped his hands around his mouth, and then he whispered, "It means loving someone you don't know."

Miranda felt Rohin's words under her skin, the same way

she'd felt Dev's. But instead of going hot she felt numb. It reminded her of the way she'd felt at the Indian grocery, the moment she knew, without even looking at a picture, that Madhuri Dixit, whom Dev's wife resembled, was beautiful.

"That's what my father did," Rohin continued. "He sat next to someone he didn't know, someone sexy, and now he loves her instead of my mother."

He took off his shoes and placed them side by side on the floor. Then he peeled back the comforter and crawled into Miranda's bed with the almanac. A minute later the book dropped from his hands, and he closed his eyes. Miranda watched him sleep, the comforter rising and falling as he breathed. He didn't wake up after twelve minutes like Dev, or even twenty. He didn't open his eyes as she stepped out of the silver cocktail dress and back into her jeans, and put the high-heeled shoes in the back of the closet, and rolled up the stockings and put them back in her drawer.

When she had put everything away she sat on the bed. She leaned toward him, close enough to see some white powder from the rice cakes stuck to the corners of his mouth, and picked up the almanac. As she turned the pages she imagined the quarrels Rohin had overheard in his house in Montreal. "Is she pretty?" his mother would have asked his father, wearing the same bathrobe she'd worn for weeks, her own pretty face turning spiteful. "Is she sexy?" His father would deny it at first, try to change the subject. "Tell me," Rohin's mother would shriek, "tell me if she's sexy." In the end his father would admit that she was, and his mother would cry and cry, in a bed surrounded by a tangle of clothes, her eyes puffing up like bullfrogs. "How could you," she'd ask, sobbing, "how could you love a woman you don't even know?"

As Miranda imagined the scene she began to cry a little herself. In the Mapparium that day, all the countries had seemed

close enough to touch, and Dev's voice had bounced wildly off the glass. From across the bridge, thirty feet away, his words had reached her ears, so near and full of warmth that they'd drifted for days under her skin. Miranda cried harder, unable to stop. But Rohin still slept. She guessed that he was used to it now, to the sound of a woman crying.

On Sunday, Dev called to tell Miranda he was on his way. "I'm almost ready. I'll be there at two."

She was watching a cooking show on television. A woman pointed to a row of apples, explaining which were best for baking. "You shouldn't come today."

"Why not?"

"I have a cold," she lied. It wasn't far from the truth; crying had left her congested. "I've been in bed all morning."

"You do sound stuffed up." There was a pause. "Do you need anything?"

"I'm all set."

"Drink lots of fluids."

"Dev?"

"Yes, Miranda?"

"Do you remember that day we went to the Mapparium?"

"Of course."

"Do you remember how we whispered to each other?"

"I remember," Dev whispered playfully.

"Do you remember what you said?"

There was a pause. "'Let's go back to your place.'" He laughed quietly. "Next Sunday, then?"

The day before, as she'd cried, Miranda had believed she would never forget anything — not even the way her name looked written in Bengali. She'd fallen asleep beside Rohin and when she woke up he was drawing an airplane on the copy of

The Economist she'd saved, hidden under the bed. "Who's Devajit Mitra?" he had asked, looking at the address label.

Miranda pictured Dev, in his sweatpants and sneakers, laughing into the phone. In a moment he'd join his wife downstairs, and tell her he wasn't going jogging. He'd pulled a muscle while stretching, he'd say, settling down to read the paper. In spite of herself, she longed for him. She would see him one more Sunday, she decided, perhaps two. Then she would tell him the things she had known all along: that it wasn't fair to her, or to his wife, that they both deserved better, that there was no point in it dragging on.

But the next Sunday it snowed, so much so that Dev couldn't tell his wife he was going running along the Charles. The Sunday after that, the snow had melted, but Miranda made plans to go to the movies with Laxmi, and when she told Dev this over the phone, he didn't ask her to cancel them. The third Sunday she got up early and went out for a walk. It was cold but sunny, and so she walked all the way down Commonwealth Avenue, past the restaurants where Dev had kissed her, and then she walked all the way to the Christian Science center. The Mapparium was closed, but she bought a cup of coffee nearby and sat on one of the benches in the plaza outside the church, gazing at its giant pillars and its massive dome, and at the clear-blue sky spread over the city.

Mrs. Sen's

ELIOT HAD BEEN GOING to Mrs. Sen's for nearly a month, ever since school started in September. The year before he was looked after by a university student named Abby, a slim, freckled girl who read books without pictures on their covers, and refused to prepare any food for Eliot containing meat. Before that an older woman, Mrs. Linden, greeted him when he came home each afternoon, sipping coffee from a thermos and working on crossword puzzles while Eliot played on his own. Abby received her degree and moved off to another university, while Mrs. Linden was, in the end, fired when Eliot's mother discovered that Mrs. Linden's thermos contained more whiskey than coffee. Mrs. Sen came to them in tidy ballpoint script, posted on an index card outside the supermarket: "Professor's wife, responsible and kind, I will care for your child in my home." On the telephone Eliot's mother told Mrs. Sen that the previous baby-sitters had come to their house. "Eliot is eleven. He can feed and entertain himself; I just want an adult in the house, in case of an emergency." But Mrs. Sen did not know how to drive.

* * *

"As you can see, our home is quite clean, quite safe for a child," Mrs. Sen had said at their first meeting. It was a university apartment located on the fringes of the campus. The lobby was tiled in unattractive squares of tan, with a row of mailboxes marked with masking tape or white labels. Inside, intersecting shadows left by a vacuum cleaner were frozen on the surface of a plush pear-colored carpet. Mismatched remnants of other carpets were positioned in front of the sofa and chairs, like individual welcome mats anticipating where a person's feet would contact the floor. White drum-shaped lampshades flanking the sofa were still wrapped in the manufacturer's plastic. The TV and the telephone were covered by pieces of yellow fabric with scalloped edges. There was tea in a tall gray pot, along with mugs, and butter biscuits on a tray. Mr. Sen, a short, stocky man with slightly protuberant eyes and glasses with black rectangular frames, had been there, too. He crossed his legs with some effort, and held his mug with both hands very close to his mouth, even when he wasn't drinking. Neither Mr. nor Mrs. Sen wore shoes; Eliot noticed several pairs lined on the shelves of a small bookcase by the front door. They wore flip-flops. "Mr. Sen teaches mathematics at the university," Mrs. Sen had said by way of introduction, as if they were only distantly acquainted.

She was about thirty. She had a small gap between her teeth and faded pockmarks on her chin, yet her eyes were beautiful, with thick, flaring brows and liquid flourishes that extended beyond the natural width of the lids. She wore a shimmering white sari patterned with orange paisleys, more suitable for an evening affair than for that quiet, faintly drizzling August afternoon. Her lips were coated in a complementary coral gloss, and a bit of the color had strayed beyond the borders.

Yet it was his mother, Eliot had thought, in her cuffed, beige shorts and her rope-soled shoes, who looked odd. Her cropped

hair, a shade similar to her shorts, seemed too lank and sensible, and in that room where all things were so carefully covered, her shaved knees and thighs too exposed. She refused a biscuit each time Mrs. Sen extended the plate in her direction, and asked a long series of questions, the answers to which she recorded on a steno pad. Would there be other children in the apartment? Had Mrs. Sen cared for children before? How long had she lived in this country? Most of all she was concerned that Mrs. Sen did not know how to drive. Eliot's mother worked in an office fifty miles north, and his father, the last she had heard, lived two thousand miles west.

"I have been giving her lessons, actually," Mr. Sen said, setting his mug on the coffee table. It was the first time he had spoken. "By my estimate Mrs. Sen should have her driver's license by December."

"Is that so?" Eliot's mother noted the information on her pad.

"Yes, I am learning," Mrs. Sen said. "But I am a slow student. At home, you know, we have a driver."

"You mean a chauffeur?"

Mrs. Sen glanced at Mr. Sen, who nodded.

Eliot's mother nodded, too, looking around the room. "And that's all . . . in India?"

"Yes," Mrs. Sen replied. The mention of the word seemed to release something in her. She neatened the border of her sari where it rose diagonally across her chest. She, too, looked around the room, as if she noticed in the lampshades, in the teapot, in the shadows frozen on the carpet, something the rest of them could not. "Everything is there."

Eliot didn't mind going to Mrs. Sen's after school. By September the tiny beach house where he and his mother lived year-round was already cold; Eliot and his mother had to bring a

portable heater along whenever they moved from one room to another, and to seal the windows with plastic sheets and a hair drier. The beach was barren and dull to play on alone; the only neighbors who stayed on past Labor Day, a young married couple, had no children, and Eliot no longer found it interesting to gather broken mussel shells in his bucket, or to stroke the seaweed, strewn like strips of emerald lasagna on the sand. Mrs. Sen's apartment was warm, sometimes too warm; the radiators continuously hissed like a pressure cooker. Eliot learned to remove his sneakers first thing in Mrs. Sen's doorway, and to place them on the bookcase next to a row of Mrs. Sen's slippers, each a different color, with soles as flat as cardboard and a ring of leather to hold her big toe.

He especially enjoyed watching Mrs. Sen as she chopped things, seated on newspapers on the living room floor. Instead of a knife she used a blade that curved like the prow of a Viking ship, sailing to battle in distant seas. The blade was hinged at one end to a narrow wooden base. The steel, more black than silver, lacked a uniform polish, and had a serrated crest, she told Eliot, for grating. Each afternoon Mrs. Sen lifted the blade and locked it into place, so that it met the base at an angle. Facing the sharp edge without ever touching it, she took whole vegetables between her hands and hacked them apart: cauliflower, cabbage, butternut squash. She split things in half, then quarters, speedily producing florets, cubes, slices, and shreds. She could peel a potato in seconds. At times she sat cross-legged, at times with legs splayed, surrounded by an array of colanders and shallow bowls of water in which she immersed her chopped ingredients.

While she worked she kept an eye on the television and an eye on Eliot, but she never seemed to keep an eye on the blade. Nevertheless she refused to let Eliot walk around when she

was chopping. "Just sit, sit please, it will take just two more minutes," she said, pointing to the sofa, which was draped at all times with a green and black bedcover printed with rows of elephants bearing palanquins on their backs. The daily procedure took about an hour. In order to occupy Eliot she supplied him with the comics section of the newspaper, and crackers spread with peanut butter, and sometimes a Popsicle, or carrot sticks sculpted with her blade. She would have roped off the area if she could. Once, though, she broke her own rule; in need of additional supplies, and reluctant to rise from the catastrophic mess that barricaded her, she asked Eliot to fetch something from the kitchen. "If you don't mind, there is a plastic bowl, large enough to hold this spinach, in the cabinet next to the fridge. Careful, oh dear, be careful," she cautioned as he approached. "Just leave it, thank you, on the coffee table, I can reach."

She had brought the blade from India, where apparently there was at least one in every household. "Whenever there is a wedding in the family," she told Eliot one day, "or a large celebration of any kind, my mother sends out word in the evening for all the neighborhood women to bring blades just like this one, and then they sit in an enormous circle on the roof of our building, laughing and gossiping and slicing fifty kilos of vegetables through the night." Her profile hovered protectively over her work, a confetti of cucumber, eggplant, and onion skins heaped around her. "It is impossible to fall asleep those nights, listening to their chatter." She paused to look at a pine tree framed by the living room window. "Here, in this place where Mr. Sen has brought me, I cannot sometimes sleep in so much silence."

Another day she sat prying the pimpled yellow fat off chicken parts, then dividing them between thigh and leg. As

the bones cracked apart over the blade her golden bangles jostled, her forearms glowed, and she exhaled audibly through her nose. At one point she paused, gripping the chicken with both hands, and stared out the window. Fat and sinew clung to her fingers.

"Eliot, if I began to scream right now at the top of my lungs, would someone come?"

"Mrs. Sen, what's wrong?"

"Nothing. I am only asking if someone would come."

Eliot shrugged. "Maybe."

"At home that is all you have to do. Not everybody has a telephone. But just raise your voice a bit, or express grief or joy of any kind, and one whole neighborhood and half of another has come to share the news, to help with arrangements."

By then Eliot understood that when Mrs. Sen said home, she meant India, not the apartment where she sat chopping vegetables. He thought of his own home, just five miles away, and the young married couple who waved from time to time as they jogged at sunset along the shore. On Labor Day they'd had a party. People were piled on the deck, eating, drinking, the sound of their laughter rising above the weary sigh of the waves. Eliot and his mother weren't invited. It was one of the rare days his mother had off, but they didn't go anywhere. She did the laundry, and balanced the checkbook, and, with Eliot's help, vacuumed the inside of the car. Eliot had suggested that they go through the car wash a few miles down the road as they did every now and then, so that they could sit inside, safe and dry, as soap and water and a circle of giant canvas ribbons slapped the windshield, but his mother said she was too tired, and sprayed the car with a hose. When, by evening, the crowd on the neighbors' deck began dancing, she looked up their number in the phone book and asked them to keep it down.

"They might call you," Eliot said eventually to Mrs. Sen. "But they might complain that you were making too much noise."

From where Eliot sat on the sofa he could detect her curious scent of mothballs and cumin, and he could see the perfectly centered part in her braided hair, which was shaded with crushed vermilion and therefore appeared to be blushing. At first Eliot had wondered if she had cut her scalp, or if something had bitten her there. But then one day he saw her standing before the bathroom mirror, solemnly applying, with the head of a thumbtack, a fresh stroke of scarlet powder, which she stored in a small jam jar. A few grains of the powder fell onto the bridge of her nose as she used the thumbtack to stamp a dot above her eyebrows. "I must wear the powder every day," she explained when Eliot asked her what it was for, "for the rest of the days that I am married."

"Like a wedding ring, you mean?"

"Exactly, Eliot, exactly like a wedding ring. Only with no fear of losing it in the dishwater."

By the time Eliot's mother arrived at twenty past six, Mrs. Sen always made sure all evidence of her chopping was disposed of. The blade was scrubbed, rinsed, dried, folded, and stowed away in a cupboard with the aid of a stepladder. With Eliot's help the newspapers were crushed with all the peels and seeds and skins inside them. Brimming bowls and colanders lined the countertop, spices and pastes were measured and blended, and eventually a collection of broths simmered over periwinkle flames on the stove. It was never a special occasion, nor was she ever expecting company. It was merely dinner for herself and Mr. Sen, as indicated by the two plates and two glasses she set, without napkins or silverware, on the square Formica table at one end of the living room.

As he pressed the newspapers deeper into the garbage pail,

Eliot felt that he and Mrs. Sen were disobeying some unspoken rule. Perhaps it was because of the urgency with which Mrs. Sen accomplished everything, pinching salt and sugar between her fingernails, running water through lentils, sponging all imaginable surfaces, shutting cupboard doors with a series of successive clicks. It gave him a little shock to see his mother all of a sudden, in the transparent stockings and shoulder-padded suits she wore to her job, peering into the corners of Mrs. Sen's apartment. She tended to hover on the far side of the door frame, calling to Eliot to put on his sneakers and gather his things, but Mrs. Sen would not allow it. Each evening she insisted that his mother sit on the sofa, where she was served something to eat: a glass of bright pink yogurt with rose syrup, breaded mincemeat with raisins, a bowl of semolina halvah.

"Really, Mrs. Sen. I take a late lunch. You shouldn't go to so much trouble."

"It is no trouble. Just like Eliot. No trouble at all."

His mother nibbled Mrs. Sen's concoctions with eyes cast upward, in search of an opinion. She kept her knees pressed together, the high heels she never removed pressed into the pear-colored carpet. "It's delicious," she would conclude, setting down the plate after a bite or two. Eliot knew she didn't like the tastes; she'd told him so once in the car. He also knew she didn't eat lunch at work, because the first thing she did when they were back at the beach house was pour herself a glass of wine and eat bread and cheese, sometimes so much of it that she wasn't hungry for the pizza they normally ordered for dinner. She sat at the table as he ate, drinking more wine and asking how his day was, but eventually she went to the deck to smoke a cigarette, leaving Eliot to wrap up the leftovers.

* * *

Each afternoon Mrs. Sen stood in a grove of pine trees by the main road where the school bus dropped off Eliot along with two or three other children who lived nearby. Eliot always sensed that Mrs. Sen had been waiting for some time, as if eager to greet a person she hadn't seen in years. The hair at her temples blew about in the breeze, the column of vermilion fresh in her part. She wore navy blue sunglasses a little too big for her face. Her sari, a different pattern each day, fluttered below the hem of a checkered all-weather coat. Acorns and caterpillars dotted the asphalt loop that framed the complex of about a dozen brick buildings, all identical, embedded in a communal expanse of log chips. As they walked back from the bus stop she produced a sandwich bag from her pocket, and offered Eliot the peeled wedges of an orange, or lightly salted peanuts, which she had already shelled.

They proceeded directly to the car, and for twenty minutes Mrs. Sen practiced driving. It was a toffee-colored sedan with vinyl seats. There was an AM radio with chrome buttons, and on the ledge over the back seat, a box of Kleenex and an ice scraper. Mrs. Sen told Eliot she didn't feel right leaving him alone in the apartment, but Eliot knew she wanted him sitting beside her because she was afraid. She dreaded the roar of the ignition, and placed her hands over her ears to block out the sound as she pressed her slippered feet to the gas, revving the engine.

"Mr. Sen says that once I receive my license, everything will improve. What do you think, Eliot? Will things improve?"

"You could go places," Eliot suggested. "You could go anywhere."

"Could I drive all the way to Calcutta? How long would that take, Eliot? Ten thousand miles, at fifty miles per hour?"

Eliot could not do the math in his head. He watched Mrs.

Sen adjust the driver's seat, the rearview mirror, the sunglasses on top of her head. She tuned the radio to a station that played symphonies. "Is it Beethoven?" she asked once, pronouncing the first part of the composer's name not "bay," but "bee," like the insect. She rolled down the window on her side, and asked Eliot to do the same. Eventually she pressed her foot to the brake pedal, manipulated the automatic gear shift as if it were an enormous, leaky pen, and backed inch by inch out of the parking space. She circled the apartment complex once, then once again.

"How am I doing, Eliot? Am I going to pass?"

She was continuously distracted. She stopped the car without warning to listen to something on the radio, or to stare at something, anything, in the road. If she passed a person, she waved. If she saw a bird twenty feet in front of her, she beeped the horn with her index finger and waited for it to fly away. In India, she said, the driver sat on the right side, not the left. Slowly they crept past the swing set, the laundry building, the dark green trash bins, the rows of parked cars. Each time they approached the grove of pine trees where the asphalt loop met the main road, she leaned forward, pinning all her weight against the brake as cars hurtled past. It was a narrow road painted with a solid yellow stripe, with one lane of traffic in either direction.

"Impossible, Eliot. How can I go there?"

"You need to wait until no one's coming."

"Why will not anybody slow down?"

"No one's coming now."

"But what about the car from the right, do you see? And look, a truck is behind it. Anyway, I am not allowed on the main road without Mr. Sen."

"You have to turn and speed up fast," Eliot said. That was the way his mother did it, as if without thinking. It seemed so

simple when he sat beside his mother, gliding in the evenings back to the beach house. Then the road was just a road, the other cars merely part of the scenery. But when he sat with Mrs. Sen, under an autumn sun that glowed without warmth through the trees, he saw how that same stream of cars made her knuckles pale, her wrists tremble, and her English falter.

"Everyone, this people, too much in their world."

Two things, Eliot learned, made Mrs. Sen happy. One was the arrival of a letter from her family. It was her custom to check the mailbox after driving practice. She would unlock the box, but she would ask Eliot to reach inside, telling him what to look for, and then she would shut her eyes and shield them with her hands while he shuffled through the bills and magazines that came in Mr. Sen's name. At first Eliot found Mrs. Sen's anxiety incomprehensible; his mother had a p.o. box in town, and she collected mail so infrequently that once their electricity was cut off for three days. Weeks passed at Mrs. Sen's before he found a blue aerogram, grainy to the touch, crammed with stamps showing a bald man at a spinning wheel, and blackened by postmarks.

"Is this it, Mrs. Sen?"

For the first time she embraced him, clasping his face to her sari, surrounding him with her odor of mothballs and cumin. She seized the letter from his hands.

As soon as they were inside the apartment she kicked off her slippers this way and that, drew a wire pin from her hair, and slit the top and sides of the aerogram in three strokes. Her eyes darted back and forth as she read. As soon as she was finished, she cast aside the embroidery that covered the telephone, dialed, and asked, "Yes, is Mr. Sen there, please? It is Mrs. Sen and it is very important."

Subsequently she spoke in her own language, rapid and

riotous to Eliot's ears; it was clear that she was reading the contents of the letter, word by word. As she read her voice was louder and seemed to shift in key. Though she stood plainly before him, Eliot had the sensation that Mrs. Sen was no longer present in the room with the pear-colored carpet.

Afterward the apartment was suddenly too small to contain her. They crossed the main road and walked a short distance to the university quadrangle, where bells in a stone tower chimed on the hour. They wandered through the student union, and dragged a tray together along the cafeteria ledge, and ate french fries heaped in a cardboard boat among students chatting at circular tables. Eliot drank soda from a paper cup, Mrs. Sen steeped a tea bag with sugar and cream. After eating they explored the art building, looking at sculptures and silk screens in cool corridors thick with the fragrance of wet paint and clay. They walked past the mathematics building, where Mr. Sen taught his classes.

They ended up in the noisy, chlorine-scented wing of the athletic building where, through a wide window on the fourth floor, they watched swimmers crossing from end to end in glaring turquoise pools. Mrs. Sen took the aerogram from India out of her purse and studied the front and back. She unfolded it and reread to herself, sighing every now and then. When she had finished she gazed for some time at the swimmers.

"My sister has had a baby girl. By the time I see her, depending if Mr. Sen gets his tenure, she will be three years old. Her own aunt will be a stranger. If we sit side by side on a train she will not know my face." She put away the letter, then placed a hand on Eliot's head. "Do you miss your mother, Eliot, these afternoons with me?"

The thought had never occurred to him.

"You must miss her. When I think of you, only a boy, separated from your mother for so much of the day, I am ashamed."

"I see her at night."

"When I was your age I was without knowing that one day I would be so far. You are wiser than that, Eliot. You already taste the way things must be."

The other thing that made Mrs. Sen happy was fish from the seaside. It was always a whole fish she desired, not shellfish, or the fillets Eliot's mother had broiled one night a few months ago when she'd invited a man from her office to dinner — a man who'd spent the night in his mother's bedroom, but whom Eliot never saw again. One evening when Eliot's mother came to pick him up, Mrs. Sen served her a tuna croquette, explaining that it was really supposed to be made with a fish called bhetki. "It is very frustrating," Mrs. Sen apologized, with an emphasis on the second syllable of the word. "To live so close to the ocean and not to have so much fish." In the summer, she said, she liked to go to a market by the beach. She added that while the fish there tasted nothing like the fish in India, at least it was fresh. Now that it was getting colder, the boats were no longer going out regularly, and sometimes there was no whole fish available for weeks at a time.

"Try the supermarket," his mother suggested.

Mrs. Sen shook her head. "In the supermarket I can feed a cat thirty-two dinners from one of thirty-two tins, but I can never find a single fish I like, never a single." Mrs. Sen said she had grown up eating fish twice a day. She added that in Calcutta people ate fish first thing in the morning, last thing before bed, as a snack after school if they were lucky. They ate the tail,

the eggs, even the head. It was available in any market, at any hour, from dawn until midnight. "All you have to do is leave the house and walk a bit, and there you are."

Every few days Mrs. Sen would open up the yellow pages, dial a number that she had ticked in the margin, and ask if there was any whole fish available. If so, she would ask the market to hold it. "Under Sen, yes, S as in Sam, N as in New York. Mr. Sen will be there to pick it up." Then she would call Mr. Sen at the university. A few minutes later Mr. Sen would arrive, patting Eliot on the head but not kissing Mrs. Sen. He read his mail at the Formica table and drank a cup of tea before heading out; half an hour later he would return, carrying a paper bag with a smiling lobster drawn on the front of it, and hand it to Mrs. Sen, and head back to the university to teach his evening class. One day, when he handed Mrs. Sen the paper bag, he said, "No more fish for a while. Cook the chicken in the freezer. I need to start holding office hours."

For the next few days, instead of calling the fish market, Mrs. Sen thawed chicken legs in the kitchen sink and chopped them with her blade. One day she made a stew with green beans and tinned sardines. But the following week the man who ran the fish market called Mrs. Sen; he assumed she wanted the fish, and said he would hold it until the end of the day under her name. She was flattered. "Isn't that nice of him, Eliot? The man said he looked up my name in the telephone book. He said there is only one Sen. Do you know how many Sens are in the Calcutta telephone book?"

She told Eliot to put on his shoes and his jacket, and then she called Mr. Sen at the university. Eliot tied his sneakers by the bookcase and waited for her to join him, to choose from her row of slippers. After a few minutes he called out her name. When Mrs. Sen did not reply, he untied his sneakers and

returned to the living room, where he found her on the sofa, weeping. Her face was in her hands and tears dripped through her fingers. Through them she murmured something about a meeting Mr. Sen was required to attend. Slowly she stood up and rearranged the cloth over the telephone. Eliot followed her, walking for the first time in his sneakers across the pear-colored carpet. She stared at him. Her lower eyelids were swollen into thin pink crests. "Tell me, Eliot. Is it too much to ask?"

Before he could answer, she took him by the hand and led him to the bedroom, whose door was normally kept shut. Apart from the bed, which lacked a headboard, the only other things in the room were a side table with a telephone on it, an ironing board, and a bureau. She flung open the drawers of the bureau and the door of the closet, filled with saris of every imaginable texture and shade, brocaded with gold and silver threads. Some were transparent, tissue thin, others as thick as drapes, with tassels knotted along the edges. In the closet they were on hangers; in the drawers they were folded flat, or wound tightly like thick scrolls. She sifted through the drawers, letting saris spill over the edges. "When have I ever worn this one? And this? And this?" She tossed the saris one by one from the drawers, then pried several from their hangers. They landed like a pile of tangled sheets on the bed. The room was filled with an intense smell of mothballs.

"'Send pictures,' they write. 'Send pictures of your new life.' What picture can I send?" She sat, exhausted, on the edge of the bed, where there was now barely room for her. "They think I live the life of a queen, Eliot." She looked around the blank walls of the room. "They think I press buttons and the house is clean. They think I live in a palace."

The phone rang. Mrs. Sen let it ring several times before

picking up the extension by the bed. During the conversation she seemed only to be replying to things, and wiping her face with the ends of one of the saris. When she got off the phone she stuffed the saris without folding them back into the drawers, and then she and Eliot put on their shoes and went to the car, where they waited for Mr. Sen to meet them.

"Why don't you drive today?" Mr. Sen asked when he appeared, rapping on the hood of the car with his knuckles. They always spoke to each other in English when Eliot was present.

"Not today. Another day."

"How do you expect to pass the test if you refuse to drive on a road with other cars?"

"Eliot is here today."

"He is here every day. It's for your own good. Eliot, tell Mrs. Sen it's for her own good."

She refused.

They drove in silence, along the same roads that Eliot and his mother took back to the beach house each evening. But in the back seat of Mr. and Mrs. Sen's car the ride seemed unfamiliar, and took longer than usual. The gulls whose tedious cries woke him each morning now thrilled him as they dipped and flapped across the sky. They passed one beach after another, and the shacks, now locked up, that sold frozen lemonade and quahogs in summer. Only one of the shacks was open. It was the fish market.

Mrs. Sen unlocked her door and turned toward Mr. Sen, who had not yet unfastened his seat belt. "Are you coming?"

Mr. Sen handed her some bills from his wallet. "I have a meeting in twenty minutes," he said, staring at the dashboard as he spoke. "Please don't waste time."

Eliot accompanied her into the dank little shop, whose walls were festooned with nets and starfish and buoys. A group of tourists with cameras around their necks huddled by the

counter, some sampling stuffed clams, others pointing to a large chart illustrating fifty different varieties of North Atlantic fish. Mrs. Sen took a ticket from the machine at the counter and waited in line. Eliot stood by the lobsters, which stirred one on top of another in their murky tank, their claws bound by yellow rubber bands. He watched as Mrs. Sen laughed and chatted, when it was her turn in line, with a man with a bright red face and yellow teeth, dressed in a black rubber apron. In either hand he held a mackerel by the tail.

"You are sure what you sell me is very fresh?"

"Any fresher and they'd answer that question themselves."

The dial shivered toward its verdict on the scale.

"You want this cleaned, Mrs. Sen?"

She nodded. "Leave the heads on, please."

"You got cats at home?"

"No cats. Only a husband."

Later, in the apartment, she pulled the blade out of the cupboard, spread newspapers across the carpet, and inspected her treasures. One by one she drew them from the paper wrapping, wrinkled and tinged with blood. She stroked the tails, prodded the bellies, pried apart the gutted flesh. With a pair of scissors she clipped the fins. She tucked a finger under the gills, a red so bright they made her vermilion seem pale. She grasped the body, lined with inky streaks, at either end, and notched it at intervals against the blade.

"Why do you do that?" Eliot asked.

"To see how many pieces. If I cut properly, from this fish I will get three meals." She sawed off the head and set it on a pie plate.

In November came a series of days when Mrs. Sen refused to practice driving. The blade never emerged from the cupboard, newspapers were not spread on the floor. She did not call the

fish store, nor did she thaw chicken. In silence she prepared crackers with peanut butter for Eliot, then sat reading old aerograms from a shoebox. When it was time for Eliot to leave she gathered together his things without inviting his mother to sit on the sofa and eat something first. When, eventually, his mother asked him in the car if he'd noticed a change in Mrs. Sen's behavior, he said he hadn't. He didn't tell her that Mrs. Sen paced the apartment, staring at the plastic-covered lampshades as if noticing them for the first time. He didn't tell her she switched on the television but never watched it, or that she made herself tea but let it grow cold on the coffee table. One day she played a tape of something she called a raga; it sounded a little bit like someone plucking very slowly and then very quickly on a violin, and Mrs. Sen said it was supposed to be heard only in the late afternoon, as the sun was setting. As the music played, for nearly an hour, she sat on the sofa with her eyes closed. Afterward she said, "It is more sad even than your Beethoven, isn't it?" Another day she played a cassette of people talking in her language — a farewell present, she told Eliot, that her family had made for her. As the succession of voices laughed and said their bit, Mrs. Sen identified each speaker. "My third uncle, my cousin, my father, my grandfather." One speaker sang a song. Another recited a poem. The final voice on the tape belonged to Mrs. Sen's mother. It was quieter and sounded more serious than the others. There was a pause between each sentence, and during this pause Mrs. Sen translated for Eliot: "The price of goat rose two rupees. The mangoes at the market are not very sweet. College Street is flooded." She turned off the tape. "These are things that happened the day I left India." The next day she played the same cassette all over again. This time, when her grandfather was speaking, she stopped the tape. She

told Eliot she'd received a letter over the weekend. Her grandfather was dead.

A week later Mrs. Sen began cooking again. One day as she sat slicing cabbage on the living room floor, Mr. Sen called. He wanted to take Eliot and Mrs. Sen to the seaside. For the occasion Mrs. Sen put on a red sari and red lipstick; she freshened the vermilion in her part and rebraided her hair. She knotted a scarf under her chin, arranged her sunglasses on top of her head, and put a pocket camera in her purse. As Mr. Sen backed out of the parking lot, he put his arm across the top of the front seat, so that it looked as if he had his arm around Mrs. Sen. "It's getting too cold for that top coat," he said to her at one point. "We should get you something warmer." At the shop they bought mackerel, and butterfish, and sea bass. This time Mr. Sen came into the shop with them. It was Mr. Sen who asked whether the fish was fresh and to cut it this way or that way. They bought so much fish that Eliot had to hold one of the bags. After they put the bags in the trunk, Mr. Sen announced that he was hungry, and Mrs. Sen agreed, so they crossed the street to a restaurant where the take-out window was still open. They sat at a picnic table and ate two baskets of clam cakes. Mrs. Sen put a good deal of Tabasco sauce and black pepper on hers. "Like pakoras, no?" Her face was flushed, her lipstick faded, and she laughed at everything Mr. Sen said.

Behind the restaurant was a small beach, and when they were done eating they walked for a while along the shore, into a wind so strong that they had to walk backward. Mrs. Sen pointed to the water, and said that at a certain moment, each wave resembled a sari drying on a clothesline. "Impossible!" she shouted eventually, laughing as she turned back, her eyes

teary. "I cannot move." Instead she took a picture of Eliot and Mr. Sen standing on the sand. "Now one of us," she said, pressing Eliot against her checkered coat and giving the camera to Mr. Sen. Finally the camera was given to Eliot. "Hold it steady," said Mr. Sen. Eliot looked through the tiny window in the camera and waited for Mr. and Mrs. Sen to move closer together, but they didn't. They didn't hold hands or put their arms around each other's waists. Both smiled with their mouths closed, squinting into the wind, Mrs. Sen's red sari leaping like flames under her coat.

In the car, warm at last and exhausted from the wind and the clam cakes, they admired the dunes, the ships they could see in the distance, the view of the lighthouse, the peach and purple sky. After a while Mr. Sen slowed down and stopped by the side of the road.

"What's wrong?" Mrs. Sen asked.

"You are going to drive home today."

"Not today."

"Yes, today." Mr. Sen stepped out of the car and opened the door on Mrs. Sen's side. A fierce wind blew into the car, accompanied by the sound of waves crashing on the shore. Finally she slid over to the driver's side, but spent a long time adjusting her sari and her sunglasses. Eliot turned and looked through the back window. The road was empty. Mrs. Sen turned on the radio, filling up the car with violin music.

"There's no need," Mr. Sen said, clicking it off.

"It helps me to concentrate," Mrs. Sen said, and turned the radio on again.

"Put on your signal," Mr. Sen directed.

"I know what to do."

For about a mile she was fine, though far slower than the other cars that passed her. But when the town approached, and

traffic lights loomed on wires in the distance, she went even slower.

"Switch lanes," Mr. Sen said. "You will have to bear left at the rotary."

Mrs. Sen did not.

"Switch lanes, I tell you." He shut off the radio. "Are you listening to me?"

A car beeped its horn, then another. She beeped defiantly in response, stopped, then pulled without signaling to the side of the road. "No more," she said, her forehead resting against the top of the steering wheel. "I hate it. I hate driving. I won't go on."

She stopped driving after that. The next time the fish store called she did not call Mr. Sen at his office. She had decided to try something new. There was a town bus that ran on an hourly schedule between the university and the seaside. After the university it made two stops, first at a nursing home, then at a shopping plaza without a name, which consisted of a bookstore, a shoe store, a drugstore, a pet store, and a record store. On benches under the portico, elderly women from the nursing home sat in pairs, in knee-length overcoats with oversized buttons, eating lozenges.

"Eliot," Mrs. Sen asked him while they were sitting on the bus, "will you put your mother in a nursing home when she is old?"

"Maybe," he said. "But I would visit every day."

"You say that now, but you will see, when you are a man your life will be in places you cannot know now." She counted on her fingers: "You will have a wife, and children of your own, and they will want to be driven to different places at the same time. No matter how kind they are, one day they will complain

about visiting your mother, and you will get tired of it too, Eliot. You will miss one day, and another, and then she will have to drag herself onto a bus just to get herself a bag of lozenges."

At the fish shop the ice beds were nearly empty, as were the lobster tanks, where rust-colored stains were visible through the water. A sign said the shop would be closing for winter at the end of the month. There was only one person working behind the counter, a young boy who did not recognize Mrs. Sen as he handed her a bag reserved under her name.

"Has it been cleaned and scaled?" Mrs. Sen asked.

The boy shrugged. "My boss left early. He just said to give you this bag."

In the parking lot Mrs. Sen consulted the bus schedule. They would have to wait forty-five minutes for the next one, and so they crossed the street and bought clam cakes at the take-out window they had been to before. There was no place to sit. The picnic tables were no longer in use, their benches chained upside down on top of them.

On the way home an old woman on the bus kept watching them, her eyes shifting from Mrs. Sen to Eliot to the blood-lined bag between their feet. She wore a black overcoat, and in her lap she held, with gnarled, colorless hands, a crisp white bag from the drugstore. The only other passengers were two college students, boyfriend and girlfriend, wearing matching sweatshirts, their fingers linked, slouched in the back seat. In silence Eliot and Mrs. Sen ate the last few clam cakes in the bag. Mrs. Sen had forgotten napkins, and traces of fried batter dotted the corners of her mouth. When they reached the nursing home the woman in the overcoat stood up, said something to the driver, then stepped off the bus. The driver turned his head and glanced back at Mrs. Sen. "What's in the bag?"

Mrs. Sen looked up, startled.

"Speak English?" The bus began to move again, causing the driver to look at Mrs. Sen and Eliot in his enormous rearview mirror.

"Yes, I can speak."

"Then what's in the bag?"

"A fish," Mrs. Sen replied.

"The smell seems to be bothering the other passengers. Kid, maybe you should open her window or something."

One afternoon a few days later the phone rang. Some very tasty halibut had arrived on the boats. Would Mrs. Sen like to pick one up? She called Mr. Sen, but he was not at his desk. A second time she tried calling, then a third. Eventually she went to the kitchen and returned to the living room with the blade, an eggplant, and some newspapers. Without having to be told Eliot took his place on the sofa and watched as she sliced the stems off the eggplant. She divided it into long, slender strips, then into small squares, smaller and smaller, as small as sugar cubes.

"I am going to put these in a very tasty stew with fish and green bananas," she announced. "Only I will have to do without the green bananas."

"Are we going to get the fish?"

"We are going to get the fish."

"Is Mr. Sen going to take us?"

"Put on your shoes."

They left the apartment without cleaning up. Outside it was so cold that Eliot could feel the chill on his teeth. They got in the car, and Mrs. Sen drove around the asphalt loop several times. Each time she paused by the grove of pine trees to observe the traffic on the main road. Eliot thought she was just

practicing while they waited for Mr. Sen. But then she gave a signal and turned.

The accident occurred quickly. After about a mile Mrs. Sen took a left before she should have, and though the oncoming car managed to swerve out of her way, she was so startled by the horn that she lost control of the wheel and hit a telephone pole on the opposite corner. A policeman arrived and asked to see her license, but she did not have one to show him. "Mr. Sen teaches mathematics at the university" was all she said by way of explanation.

The damage was slight. Mrs. Sen cut her lip, Eliot complained briefly of a pain in his ribs, and the car's fender would have to be straightened. The policeman thought Mrs. Sen had also cut her scalp, but it was only the vermilion. When Mr. Sen arrived, driven by one of his colleagues, he spoke at length with the policeman as he filled out some forms, but he said nothing to Mrs. Sen as he drove them back to the apartment. When they got out of the car, Mr. Sen patted Eliot's head. "The policeman said you were lucky. Very lucky to come out without a scratch."

After taking off her slippers and putting them on the bookcase, Mrs. Sen put away the blade that was still on the living room floor and threw the eggplant pieces and the newspapers into the garbage pail. She prepared a plate of crackers with peanut butter, placed them on the coffee table, and turned on the television for Eliot's benefit. "If he is still hungry give him a Popsicle from the box in the freezer," she said to Mr. Sen, who sat at the Formica table sorting through the mail. Then she went into her bedroom and shut the door. When Eliot's mother arrived at quarter to six, Mr. Sen told her the details of the accident and offered a check reimbursing November's payment. As he wrote out the check he apologized on behalf of

Mrs. Sen. He said she was resting, though when Eliot had gone to the bathroom he'd heard her crying. His mother was satisfied with the arrangement, and in a sense, she confessed to Eliot as they drove home, she was relieved. It was the last afternoon Eliot spent with Mrs. Sen, or with any baby-sitter. From then on his mother gave him a key, which he wore on a string around his neck. He was to call the neighbors in case of an emergency, and to let himself into the beach house after school. The first day, just as he was taking off his coat, the phone rang. It was his mother calling from her office. "You're a big boy now, Eliot," she told him. "You okay?" Eliot looked out the kitchen window, at gray waves receding from the shore, and said that he was fine.

The Third and Final Continent

I LEFT INDIA IN 1964 with a certificate in commerce and the equivalent, in those days, of ten dollars to my name. For three weeks I sailed on the SS *Roma*, an Italian cargo vessel, in a third-class cabin next to the ship's engine, across the Arabian Sea, the Red Sea, the Mediterranean, and finally to England. I lived in north London, in Finsbury Park, in a house occupied entirely by penniless Bengali bachelors like myself, at least a dozen and sometimes more, all struggling to educate and establish ourselves abroad.

I attended lectures at LSE and worked at the university library to get by. We lived three or four to a room, shared a single, icy toilet, and took turns cooking pots of egg curry, which we ate with our hands on a table covered with newspapers. Apart from our jobs we had few responsibilities. On weekends we lounged barefoot in drawstring pajamas, drinking tea and smoking Rothmans, or set out to watch cricket at Lord's. Some weekends the house was crammed with still more Bengalis, to whom we had introduced ourselves at the

greengrocer, or on the Tube, and we made yet more egg curry, and played Mukhesh on a Grundig reel-to-reel, and soaked our dirty dishes in the bathtub. Every now and then someone in the house moved out, to live with a woman whom his family back in Calcutta had determined he was to wed. In 1969, when I was thirty-six years old, my own marriage was arranged. Around the same time I was offered a full-time job in America, in the processing department of a library at MIT. The salary was generous enough to support a wife, and I was honored to be hired by a world-famous university, and so I obtained a sixth-preference green card, and prepared to travel farther still.

By now I had enough money to go by plane. I flew first to Calcutta, to attend my wedding, and a week later I flew to Boston, to begin my new job. During the flight I read *The Student Guide to North America,* a paperback volume that I'd bought before leaving London, for seven shillings six pence on Tottenham Court Road, for although I was no longer a student I was on a budget all the same. I learned that Americans drove on the right side of the road, not the left, and that they called a lift an elevator and an engaged phone busy. "The pace of life in North America is different from Britain as you will soon discover," the guidebook informed me. "Everybody feels he must get to the top. Don't expect an English cup of tea." As the plane began its descent over Boston Harbor, the pilot announced the weather and time, and that President Nixon had declared a national holiday: two American men had landed on the moon. Several passengers cheered. "God bless America!" one of them hollered. Across the aisle, I saw a woman praying.

I spent my first night at the YMCA in Central Square, Cambridge, an inexpensive accommodation recommended by my guidebook. It was walking distance from MIT, and steps from the post office and a supermarket called Purity Supreme. The

room contained a cot, a desk, and a small wooden cross on one wall. A sign on the door said cooking was strictly forbidden. A bare window overlooked Massachusetts Avenue, a major thoroughfare with traffic in both directions. Car horns, shrill and prolonged, blared one after another. Flashing sirens heralded endless emergencies, and a fleet of buses rumbled past, their doors opening and closing with a powerful hiss, throughout the night. The noise was constantly distracting, at times suffocating. I felt it deep in my ribs, just as I had felt the furious drone of the engine on the SS *Roma*. But there was no ship's deck to escape to, no glittering ocean to thrill my soul, no breeze to cool my face, no one to talk to. I was too tired to pace the gloomy corridors of the YMCA in my drawstring pajamas. Instead I sat at the desk and stared out the window, at the city hall of Cambridge and a row of small shops. In the morning I reported to my job at the Dewey Library, a beige fortlike building by Memorial Drive. I also opened a bank account, rented a post office box, and bought a plastic bowl and a spoon at Woolworth's, a store whose name I recognized from London. I went to Purity Supreme, wandering up and down the aisles, converting ounces to grams and comparing prices to things in England. In the end I bought a small carton of milk and a box of cornflakes. This was my first meal in America. I ate it at my desk. I preferred it to hamburgers or hot dogs, the only alternative I could afford in the coffee shops on Massachusetts Avenue, and, besides, at the time I had yet to consume any beef. Even the simple chore of buying milk was new to me; in London we'd had bottles delivered each morning to our door.

In a week I had adjusted, more or less. I ate cornflakes and milk, morning and night, and bought some bananas for variety, slicing them into the bowl with the edge of my spoon. In addi-

tion I bought tea bags and a flask, which the salesman in Woolworth's referred to as a thermos (a flask, he informed me, was used to store whiskey, another thing I had never consumed). For the price of one cup of tea at a coffee shop, I filled the flask with boiling water on my way to work each morning, and brewed the four cups I drank in the course of a day. I bought a larger carton of milk, and learned to leave it on the shaded part of the windowsill, as I had seen another resident at the YMCA do. To pass the time in the evenings I read the *Boston Globe* downstairs, in a spacious room with stained-glass windows. I read every article and advertisement, so that I would grow familiar with things, and when my eyes grew tired I slept. Only I did not sleep well. Each night I had to keep the window wide open; it was the only source of air in the stifling room, and the noise was intolerable. I would lie on the cot with my fingers pressed into my ears, but when I drifted off to sleep my hands fell away, and the noise of the traffic would wake me up again. Pigeon feathers drifted onto the windowsill, and one evening, when I poured milk over my cornflakes, I saw that it had soured. Nevertheless I resolved to stay at the YMCA for six weeks, until my wife's passport and green card were ready. Once she arrived I would have to rent a proper apartment, and from time to time I studied the classified section of the newspaper, or stopped in at the housing office at MIT during my lunch break, to see what was available in my price range. It was in this manner that I discovered a room for immediate occupancy, in a house on a quiet street, the listing said, for eight dollars per week. I copied the number into my guidebook and dialed from a pay telephone, sorting through the coins with which I was still unfamiliar, smaller and lighter than shillings, heavier and brighter than *paisas*.

"Who is speaking?" a woman demanded. Her voice was bold and clamorous.

"Yes, good afternoon, madame. I am calling about the room for rent."

"Harvard or Tech?"

"I beg your pardon?"

"Are you from Harvard or Tech?"

Gathering that Tech referred to the Massachusetts Institute of Technology, I replied, "I work at Dewey Library," adding tentatively, "at Tech."

"I only rent rooms to boys from Harvard or Tech!"

"Yes, madame."

I was given an address and an appointment for seven o'clock that evening. Thirty minutes before the hour I set out, my guidebook in my pocket, my breath fresh with Listerine. I turned down a street shaded with trees, perpendicular to Massachusetts Avenue. Stray blades of grass poked between the cracks of the footpath. In spite of the heat I wore a coat and a tie, regarding the event as I would any other interview; I had never lived in the home of a person who was not Indian. The house, surrounded by a chain-link fence, was off-white with dark brown trim. Unlike the stucco row house I'd lived in in London, this house, fully detached, was covered with wooden shingles, with a tangle of forsythia bushes plastered against the front and sides. When I pressed the calling bell, the woman with whom I had spoken on the phone hollered from what seemed to be just the other side of the door, "One minute, please!"

Several minutes later the door was opened by a tiny, extremely old woman. A mass of snowy hair was arranged like a small sack on top of her head. As I stepped into the house she sat down on a wooden bench positioned at the bottom of a narrow carpeted staircase. Once she was settled on the bench, in a small pool of light, she peered up at me with undivided attention. She wore a long black skirt that spread like a stiff

tent to the floor, and a starched white shirt edged with ruffles at the throat and cuffs. Her hands, folded together in her lap, had long pallid fingers, with swollen knuckles and tough yellow nails. Age had battered her features so that she almost resembled a man, with sharp, shrunken eyes and prominent creases on either side of her nose. Her lips, chapped and faded, had nearly disappeared, and her eyebrows were missing altogether. Nevertheless she looked fierce.

"Lock up!" she commanded. She shouted even though I stood only a few feet away. "Fasten the chain and firmly press that button on the knob! This is the first thing you shall do when you enter, is that clear?"

I locked the door as directed and examined the house. Next to the bench on which the woman sat was a small round table, its legs fully concealed, much like the woman's, by a skirt of lace. The table held a lamp, a transistor radio, a leather change purse with a silver clasp, and a telephone. A thick wooden cane coated with a layer of dust was propped against one side. There was a parlor to my right, lined with bookcases and filled with shabby claw-footed furniture. In the corner of the parlor I saw a grand piano with its top down, piled with papers. The piano's bench was missing; it seemed to be the one on which the woman was sitting. Somewhere in the house a clock chimed seven times.

"You're punctual!" the woman proclaimed. "I expect you shall be so with the rent!"

"I have a letter, madame." In my jacket pocket was a letter confirming my employment from MIT, which I had brought along to prove that I was indeed from Tech.

She stared at the letter, then handed it back to me carefully, gripping it with her fingers as if it were a dinner plate heaped with food instead of a sheet of paper. She did not wear glasses, and I wondered if she'd read a word of it. "The last boy was

always late! Still owes me eight dollars! Harvard boys aren't what they used to be! Only Harvard and Tech in this house! How's Tech, boy?"

"It is very well."

"You checked the lock?"

"Yes, madame."

She slapped the space beside her on the bench with one hand, and told me to sit down. For a moment she was silent. Then she intoned, as if she alone possessed this knowledge:

"There is an American flag on the moon!"

"Yes, madame." Until then I had not thought very much about the moon shot. It was in the newspaper, of course, article upon article. The astronauts had landed on the shores of the Sea of Tranquillity, I had read, traveling farther than anyone in the history of civilization. For a few hours they explored the moon's surface. They gathered rocks in their pockets, described their surroundings (a magnificent desolation, according to one astronaut), spoke by phone to the president, and planted a flag in lunar soil. The voyage was hailed as man's most awesome achievement. I had seen full-page photographs in the *Globe,* of the astronauts in their inflated costumes, and read about what certain people in Boston had been doing at the exact moment the astronauts landed, on a Sunday afternoon. A man said that he was operating a swan boat with a radio pressed to his ear; a woman had been baking rolls for her grandchildren.

The woman bellowed, "A flag on the moon, boy! I heard it on the radio! Isn't that splendid?"

"Yes, madame."

But she was not satisfied with my reply. Instead she commanded, "Say 'splendid'!"

I was both baffled and somewhat insulted by the request. It

reminded me of the way I was taught multiplication tables as a child, repeating after the master, sitting cross-legged, without shoes or pencils, on the floor of my one-room Tollygunge school. It also reminded me of my wedding, when I had repeated endless Sanskrit verses after the priest, verses I barely understood, which joined me to my wife. I said nothing.

"Say 'splendid'!" the woman bellowed once again.

"Splendid," I murmured. I had to repeat the word a second time at the top of my lungs, so she could hear. I am soft-spoken by nature and was especially reluctant to raise my voice to an elderly woman whom I had met only moments ago, but she did not appear to be offended. If anything the reply pleased her because her next command was:

"Go see the room!"

I rose from the bench and mounted the narrow carpeted staircase. There were five doors, two on either side of an equally narrow hallway, and one at the opposite end. Only one door was partly open. The room contained a twin bed under a sloping ceiling, a brown oval rug, a basin with an exposed pipe, and a chest of drawers. One door, painted white, led to a closet, another to a toilet and a tub. The walls were covered with gray and ivory striped paper. The window was open; net curtains stirred in the breeze. I lifted them away and inspected the view: a small back yard, with a few fruit trees and an empty clothesline. I was satisfied. From the bottom of the stairs I heard the woman demand, "What is your decision?"

When I returned to the foyer and told her, she picked up the leather change purse on the table, opened the clasp, fished about with her fingers, and produced a key on a thin wire hoop. She informed me that there was a kitchen at the back of the house, accessible through the parlor. I was welcome to use the stove as long as I left it as I found it. Sheets and towels were

provided, but keeping them clean was my own responsibility. The rent was due Friday mornings on the ledge above the piano keys. "And no lady visitors!"

"I am a married man, madame." It was the first time I had announced this fact to anyone.

But she had not heard. "No lady visitors!" she insisted. She introduced herself as Mrs. Croft.

My wife's name was Mala. The marriage had been arranged by my older brother and his wife. I regarded the proposition with neither objection nor enthusiasm. It was a duty expected of me, as it was expected of every man. She was the daughter of a schoolteacher in Beleghata. I was told that she could cook, knit, embroider, sketch landscapes, and recite poems by Tagore, but these talents could not make up for the fact that she did not possess a fair complexion, and so a string of men had rejected her to her face. She was twenty-seven, an age when her parents had begun to fear that she would never marry, and so they were willing to ship their only child halfway across the world in order to save her from spinsterhood.

For five nights we shared a bed. Each of those nights, after applying cold cream and braiding her hair, which she tied up at the end with a black cotton string, she turned from me and wept; she missed her parents. Although I would be leaving the country in a few days, custom dictated that she was now a part of my household, and for the next six weeks she was to live with my brother and his wife, cooking, cleaning, serving tea and sweets to guests. I did nothing to console her. I lay on my own side of the bed, reading my guidebook by flashlight and anticipating my journey. At times I thought of the tiny room on the other side of the wall which had belonged to my mother. Now the room was practically empty; the wooden

pallet on which she'd once slept was piled with trunks and old bedding. Nearly six years ago, before leaving for London, I had watched her die on that bed, had found her playing with her excrement in her final days. Before we cremated her I had cleaned each of her fingernails with a hairpin, and then, because my brother could not bear it, I had assumed the role of eldest son, and had touched the flame to her temple, to release her tormented soul to heaven.

The next morning I moved into the room in Mrs. Croft's house. When I unlocked the door I saw that she was sitting on the piano bench, on the same side as the previous evening. She wore the same black skirt, the same starched white blouse, and had her hands folded together the same way in her lap. She looked so much the same that I wondered if she'd spent the whole night on the bench. I put my suitcase upstairs, filled my flask with boiling water in the kitchen, and headed off to work. That evening when I came home from the university, she was still there.

"Sit down, boy!" She slapped the space beside her.

I perched beside her on the bench. I had a bag of groceries with me — more milk, more cornflakes, and more bananas, for my inspection of the kitchen earlier in the day had revealed no spare pots, pans, or cooking utensils. There were only two saucepans in the refrigerator, both containing some orange broth, and a copper kettle on the stove.

"Good evening, madame."

She asked me if I had checked the lock. I told her I had.

For a moment she was silent. Then suddenly she declared, with the equal measures of disbelief and delight as the night before, "There's an American flag on the moon, boy!"

"Yes, madame."

"A flag on the moon! Isn't that splendid?"

I nodded, dreading what I knew was coming. "Yes, madame."

"Say 'splendid'!"

This time I paused, looking to either side in case anyone were there to overhear me, though I knew perfectly well that the house was empty. I felt like an idiot. But it was a small enough thing to ask. "Splendid!" I cried out.

Within days it became our routine. In the mornings when I left for the library Mrs. Croft was either hidden away in her bedroom, on the other side of the staircase, or she was sitting on the bench, oblivious to my presence, listening to the news or classical music on the radio. But each evening when I returned the same thing happened: she slapped the bench, ordered me to sit down, declared that there was a flag on the moon, and declared that it was splendid. I said it was splendid, too, and then we sat in silence. As awkward as it was, and as endless as it felt to me then, the nightly encounter lasted only about ten minutes; inevitably she would drift off to sleep, her head falling abruptly toward her chest, leaving me free to retire to my room. By then, of course, there was no flag on the moon. The astronauts, I had read in the paper, had taken it down before flying back to Earth. But I did not have the heart to tell her.

Friday morning, when my first week's rent was due, I went to the piano in the parlor to place my money on the ledge. The piano keys were dull and discolored. When I pressed one, it made no sound at all. I had put eight one-dollar bills in an envelope and written Mrs. Croft's name on the front of it. I was not in the habit of leaving money unmarked and unattended. From where I stood I could see the profile of her

tent-shaped skirt. She was sitting on the bench, listening to the radio. It seemed unnecessary to make her get up and walk all the way to the piano. I never saw her walking about, and assumed, from the cane always propped against the round table at her side, that she did so with difficulty. When I approached the bench she peered up at me and demanded:

"What is your business?"

"The rent, madame."

"On the ledge above the piano keys!"

"I have it here." I extended the envelope toward her, but her fingers, folded together in her lap, did not budge. I bowed slightly and lowered the envelope, so that it hovered just above her hands. After a moment she accepted, and nodded her head.

That night when I came home, she did not slap the bench, but out of habit I sat beside her as usual. She asked me if I had checked the lock, but she mentioned nothing about the flag on the moon. Instead she said:

"It was very kind of you!"

"I beg your pardon, madame?"

"Very kind of you!"

She was still holding the envelope in her hands.

On Sunday there was a knock on my door. An elderly woman introduced herself: she was Mrs. Croft's daughter, Helen. She walked into the room and looked at each of the walls as if for signs of change, glancing at the shirts that hung in the closet, the neckties draped over the doorknob, the box of cornflakes on the chest of drawers, the dirty bowl and spoon in the basin. She was short and thick-waisted, with cropped silver hair and bright pink lipstick. She wore a sleeveless summer dress, a row of white plastic beads, and spectacles on a chain that hung like a swing against her chest. The backs of her legs

were mapped with dark blue veins, and her upper arms sagged like the flesh of a roasted eggplant. She told me she lived in Arlington, a town farther up Massachusetts Avenue. "I come once a week to bring Mother groceries. Has she sent you packing yet?"

"It is very well, madame."

"Some of the boys run screaming. But I think she likes you. You're the first boarder she's ever referred to as a gentleman."

"Not at all, madame."

She looked at me, noticing my bare feet (I still felt strange wearing shoes indoors, and always removed them before entering my room). "Are you new to Boston?"

"New to America, madame."

"From?" She raised her eyebrows.

"I am from Calcutta, India."

"Is that right? We had a Brazilian fellow, about a year ago. You'll find Cambridge a very international city."

I nodded, and began to wonder how long our conversation would last. But at that moment we heard Mrs. Croft's electrifying voice rising up the stairs. When we stepped into the hallway we heard her hollering:

"You are to come downstairs immediately!"

"What is it?" Helen hollered back.

"Immediately!"

I put on my shoes at once. Helen sighed.

We walked down the staircase. It was too narrow for us to descend side by side, so I followed Helen, who seemed to be in no hurry, and complained at one point that she had a bad knee. "Have you been walking without your cane?" Helen called out. "You know you're not supposed to walk without that cane." She paused, resting her hand on the banister, and looked back at me. "She slips sometimes."

For the first time Mrs. Croft seemed vulnerable. I pictured her on the floor in front of the bench, flat on her back, staring at the ceiling, her feet pointing in opposite directions. But when we reached the bottom of the staircase she was sitting there as usual, her hands folded together in her lap. Two grocery bags were at her feet. When we stood before her she did not slap the bench, or ask us to sit down. She glared.

"What is it, Mother?"

"It's improper!"

"What's improper?"

"It is improper for a lady and gentleman who are not married to one another to hold a private conversation without a chaperone!"

Helen said she was sixty-eight years old, old enough to be my mother, but Mrs. Croft insisted that Helen and I speak to each other downstairs, in the parlor. She added that it was also improper for a lady of Helen's station to reveal her age, and to wear a dress so high above the ankle.

"For your information, Mother, it's 1969. What would you do if you actually left the house one day and saw a girl in a miniskirt?"

Mrs. Croft sniffed. "I'd have her arrested."

Helen shook her head and picked up one of the grocery bags. I picked up the other one, and followed her through the parlor and into the kitchen. The bags were filled with cans of soup, which Helen opened up one by one with a few cranks of a can opener. She tossed the old soup in the saucepans into the sink, rinsed the pans under the tap, filled them with soup from the newly opened cans, and put them back in the refrigerator. "A few years ago she could still open the cans herself," Helen said. "She hates that I do it for her now. But the piano killed her hands." She put on her spectacles, glanced at the cupboards, and spotted my tea bags. "Shall we have a cup?"

I filled the kettle on the stove. "I beg your pardon, madame. The piano?"

"She used to give lessons. For forty years. It was how she raised us after my father died." Helen put her hands on her hips, staring at the open refrigerator. She reached into the back, pulled out a wrapped stick of butter, frowned, and tossed it into the garbage. "That ought to do it," she said, and put the unopened cans of soup in the cupboard. I sat at the table and watched as Helen washed the dirty dishes, tied up the garbage bag, watered a spider plant over the sink, and poured boiling water into two cups. She handed one to me without milk, the string of the tea bag trailing over the side, and sat down at the table.

"Excuse me, madame, but is it enough?"

Helen took a sip of her tea. Her lipstick left a smiling pink stain on the inside rim of the cup. "Is what enough?"

"The soup in the pans. Is it enough food for Mrs. Croft?"

"She won't eat anything else. She stopped eating solids after she turned one hundred. That was, let's see, three years ago."

I was mortified. I had assumed Mrs. Croft was in her eighties, perhaps as old as ninety. I had never known a person who had lived for over a century. That this person was a widow who lived alone mortified me further still. It was widowhood that had driven my own mother insane. My father, who worked as a clerk at the General Post Office of Calcutta, died of encephalitis when I was sixteen. My mother refused to adjust to life without him; instead she sank deeper into a world of darkness from which neither I, nor my brother, nor concerned relatives, nor psychiatric clinics on Rashbihari Avenue could save her. What pained me most was to see her so unguarded, to hear her burp after meals or expel gas in front of company without the slightest embarrassment. After my father's death my brother abandoned his schooling and began to work in the jute

mill he would eventually manage, in order to keep the household running. And so it was my job to sit by my mother's feet and study for my exams as she counted and recounted the bracelets on her arm as if they were the beads of an abacus. We tried to keep an eye on her. Once she had wandered half naked to the tram depot before we were able to bring her inside again.

"I am happy to warm Mrs. Croft's soup in the evenings," I suggested, removing the tea bag from my cup and squeezing out the liquor. "It is no trouble."

Helen looked at her watch, stood up, and poured the rest of her tea into the sink. "I wouldn't if I were you. That's the sort of thing that would kill her altogether."

That evening, when Helen had gone back to Arlington and Mrs. Croft and I were alone again, I began to worry. Now that I knew how very old she was, I worried that something would happen to her in the middle of the night, or when I was out during the day. As vigorous as her voice was, and imperious as she seemed, I knew that even a scratch or a cough could kill a person that old; each day she lived, I knew, was something of a miracle. Although Helen had seemed friendly enough, a small part of me worried that she might accuse me of negligence if anything were to happen. Helen didn't seem worried. She came and went, bringing soup for Mrs. Croft, one Sunday after the next.

In this manner the six weeks of that summer passed. I came home each evening, after my hours at the library, and spent a few minutes on the piano bench with Mrs. Croft. I gave her a bit of my company, and assured her that I had checked the lock, and told her that the flag on the moon was splendid. Some evenings I sat beside her long after she had drifted off to

sleep, still in awe of how many years she had spent on this earth. At times I tried to picture the world she had been born into, in 1866 — a world, I imagined, filled with women in long black skirts, and chaste conversations in the parlor. Now, when I looked at her hands with their swollen knuckles folded together in her lap, I imagined them smooth and slim, striking the piano keys. At times I came downstairs before going to sleep, to make sure she was sitting upright on the bench, or was safe in her bedroom. On Fridays I made sure to put the rent in her hands. There was nothing I could do for her beyond these simple gestures. I was not her son, and apart from those eight dollars, I owed her nothing.

At the end of August, Mala's passport and green card were ready. I received a telegram with her flight information; my brother's house in Calcutta had no telephone. Around that time I also received a letter from her, written only a few days after we had parted. There was no salutation; addressing me by name would have assumed an intimacy we had not yet discovered. It contained only a few lines. "I write in English in preparation for the journey. Here I am very much lonely. Is it very cold there. Is there snow. Yours, Mala.

I was not touched by her words. We had spent only a handful of days in each other's company. And yet we were bound together; for six weeks she had worn an iron bangle on her wrist, and applied vermilion powder to the part in her hair, to signify to the world that she was a bride. In those six weeks I regarded her arrival as I would the arrival of a coming month, or season — something inevitable, but meaningless at the time. So little did I know her that, while details of her face sometimes rose to my memory, I could not conjure up the whole of it.

A few days after receiving the letter, as I was walking to work in the morning, I saw an Indian woman on the other side of Massachusetts Avenue, wearing a sari with its free end nearly dragging on the footpath, and pushing a child in a stroller. An American woman with a small black dog on a leash was walking to one side of her. Suddenly the dog began barking. From the other side of the street I watched as the Indian woman, startled, stopped in her path, at which point the dog leapt up and seized the end of the sari between its teeth. The American woman scolded the dog, appeared to apologize, and walked quickly away, leaving the Indian woman to fix her sari in the middle of the footpath, and quiet her crying child. She did not see me standing there, and eventually she continued on her way. Such a mishap, I realized that morning, would soon be my concern. It was my duty to take care of Mala, to welcome her and protect her. I would have to buy her her first pair of snow boots, her first winter coat. I would have to tell her which streets to avoid, which way the traffic came, tell her to wear her sari so that the free end did not drag on the footpath. A five-mile separation from her parents, I recalled with some irritation, had caused her to weep.

Unlike Mala, I was used to it all by then: used to cornflakes and milk, used to Helen's visits, used to sitting on the bench with Mrs. Croft. The only thing I was not used to was Mala. Nevertheless I did what I had to do. I went to the housing office at MIT and found a furnished apartment a few blocks away, with a double bed and a private kitchen and bath, for forty dollars a week. One last Friday I handed Mrs. Croft eight one-dollar bills in an envelope, brought my suitcase downstairs, and informed her that I was moving. She put my key into her change purse. The last thing she asked me to do was hand her the cane propped against the table, so that she could

walk to the door and lock it behind me. "Good-bye, then," she said, and retreated back into the house. I did not expect any display of emotion, but I was disappointed all the same. I was only a boarder, a man who paid her a bit of money and passed in and out of her home for six weeks. Compared to a century, it was no time at all.

At the airport I recognized Mala immediately. The free end of her sari did not drag on the floor, but was draped in a sign of bridal modesty over her head, just as it had draped my mother until the day my father died. Her thin brown arms were stacked with gold bracelets, a small red circle was painted on her forehead, and the edges of her feet were tinted with a decorative red dye. I did not embrace her, or kiss her, or take her hand. Instead I asked her, speaking Bengali for the first time in America, if she was hungry.

She hesitated, then nodded yes.

I told her I had prepared some egg curry at home. "What did they give you to eat on the plane?"

"I didn't eat."

"All the way from Calcutta?"

"The menu said oxtail soup."

"But surely there were other items."

"The thought of eating an ox's tail made me lose my appetite."

When we arrived home, Mala opened up one of her suitcases, and presented me with two pullover sweaters, both made with bright blue wool, which she had knitted in the course of our separation, one with a V neck, the other covered with cables. I tried them on; both were tight under the arms. She had also brought me two new pairs of drawstring pajamas, a letter from my brother, and a packet of loose Darjeeling tea.

I had no present for her apart from the egg curry. We sat at a bare table, each of us staring at our plates. We ate with our hands, another thing I had not yet done in America.

"The house is nice," she said. "Also the egg curry." With her left hand she held the end of her sari to her chest, so it would not slip off her head.

"I don't know many recipes."

She nodded, peeling the skin off each of her potatoes before eating them. At one point the sari slipped to her shoulders. She readjusted it at once.

"There is no need to cover your head," I said. "I don't mind. It doesn't matter here."

She kept it covered anyway.

I waited to get used to her, to her presence at my side, at my table and in my bed, but a week later we were still strangers. I still was not used to coming home to an apartment that smelled of steamed rice, and finding that the basin in the bathroom was always wiped clean, our two toothbrushes lying side by side, a cake of Pears soap from India resting in the soap dish. I was not used to the fragrance of the coconut oil she rubbed every other night into her scalp, or the delicate sound her bracelets made as she moved about the apartment. In the mornings she was always awake before I was. The first morning when I came into the kitchen she had heated up the leftovers and set a plate with a spoonful of salt on its edge on the table, assuming I would eat rice for breakfast, as most Bengali husbands did. I told her cereal would do, and the next morning when I came into the kitchen she had already poured the cornflakes into my bowl. One morning she walked with me down Massachusetts Avenue to MIT, where I gave her a short tour of the campus. On the way we stopped at a hardware store and I made a copy of the key, so that she could let herself

into the apartment. The next morning before I left for work she asked me for a few dollars. I parted with them reluctantly, but I knew that this, too, was now normal. When I came home from work there was a potato peeler in the kitchen drawer, and a tablecloth on the table, and chicken curry made with fresh garlic and ginger on the stove. We did not have a television in those days. After dinner I read the newspaper, while Mala sat at the kitchen table, working on a cardigan for herself with more of the bright blue wool, or writing letters home.

At the end of our first week, on Friday, I suggested going out. Mala set down her knitting and disappeared into the bathroom. When she emerged I regretted the suggestion; she had put on a clean silk sari and extra bracelets, and coiled her hair with a flattering side part on top of her head. She was prepared as if for a party, or at the very least for the cinema, but I had no such destination in mind. The evening air was balmy. We walked several blocks down Massachusetts Avenue, looking into the windows of restaurants and shops. Then, without thinking, I led her down the quiet street where for so many nights I had walked alone.

"This is where I lived before you came," I said, stopping at Mrs. Croft's chain-link fence.

"In such a big house?"

"I had a small room upstairs. At the back."

"Who else lives there?"

"A very old woman."

"With her family?"

"Alone."

"But who takes care of her?"

I opened the gate. "For the most part she takes care of herself."

I wondered if Mrs. Croft would remember me; I wondered

if she had a new boarder to sit with her on the bench each evening. When I pressed the bell I expected the same long wait as that day of our first meeting, when I did not have a key. But this time the door was opened almost immediately, by Helen. Mrs. Croft was not sitting on the bench. The bench was gone.

"Hello there," Helen said, smiling with her bright pink lips at Mala. "Mother's in the parlor. Will you be visiting awhile?"

"As you wish, madame."

"Then I think I'll run to the store, if you don't mind. She had a little accident. We can't leave her alone these days, not even for a minute."

I locked the door after Helen and walked into the parlor. Mrs. Croft was lying flat on her back, her head on a peach-colored cushion, a thin white quilt spread over her body. Her hands were folded together on top of her chest. When she saw me she pointed at the sofa, and told me to sit down. I took my place as directed, but Mala wandered over to the piano and sat on the bench, which was now positioned where it belonged.

"I broke my hip!" Mrs. Croft announced, as if no time had passed.

"Oh dear, madame."

"I fell off the bench!"

"I am so sorry, madame."

"It was the middle of the night! Do you know what I did, boy?"

I shook my head.

"I called the police!"

She stared up at the ceiling and grinned sedately, exposing a crowded row of long gray teeth. Not one was missing. "What do you say to that, boy?"

As stunned as I was, I knew what I had to say. With no hesitation at all, I cried out, "Splendid!"

Mala laughed then. Her voice was full of kindness, her eyes bright with amusement. I had never heard her laugh before, and it was loud enough so that Mrs. Croft had heard, too. She turned to Mala and glared.

"Who is she, boy?"

"She is my wife, madame."

Mrs. Croft pressed her head at an angle against the cushion to get a better look. "Can you play the piano?"

"No, madame," Mala replied.

"Then stand up!"

Mala rose to her feet, adjusting the end of her sari over her head and holding it to her chest, and, for the first time since her arrival, I felt sympathy. I remembered my first days in London, learning how to take the Tube to Russell Square, riding an escalator for the first time, being unable to understand that when the man cried "piper" it meant "paper," being unable to decipher, for a whole year, that the conductor said "mind the gap" as the train pulled away from each station. Like me, Mala had traveled far from home, not knowing where she was going, or what she would find, for no reason other than to be my wife. As strange as it seemed, I knew in my heart that one day her death would affect me, and stranger still, that mine would affect her. I wanted somehow to explain this to Mrs. Croft, who was still scrutinizing Mala from top to toe with what seemed to be placid disdain. I wondered if Mrs. Croft had ever seen a woman in a sari, with a dot painted on her forehead and bracelets stacked on her wrists. I wondered what she would object to. I wondered if she could see the red dye still vivid on Mala's feet, all but obscured by the bottom edge of her sari. At last Mrs. Croft declared, with the equal measures of disbelief and delight I knew well:

"She is a perfect lady!"

Now it was I who laughed. I did so quietly, and Mrs. Croft did not hear me. But Mala had heard, and, for the first time, we looked at each other and smiled.

I like to think of that moment in Mrs. Croft's parlor as the moment when the distance between Mala and me began to lessen. Although we were not yet fully in love, I like to think of the months that followed as a honeymoon of sorts. Together we explored the city and met other Bengalis, some of whom are still friends today. We discovered that a man named Bill sold fresh fish on Prospect Street, and that a shop in Harvard Square called Cardullo's sold bay leaves and cloves. In the evenings we walked to the Charles River to watch sailboats drift across the water, or had ice cream cones in Harvard Yard. We bought an Instamatic camera with which to document our life together, and I took pictures of her posing in front of the Prudential building, so that she could send them to her parents. At night we kissed, shy at first but quickly bold, and discovered pleasure and solace in each other's arms. I told her about my voyage on the SS *Roma*, and about Finsbury Park and the YMCA, and my evenings on the bench with Mrs. Croft. When I told her stories about my mother, she wept. It was Mala who consoled me when, reading the *Globe* one evening, I came across Mrs. Croft's obituary. I had not thought of her in several months — by then those six weeks of the summer were already a remote interlude in my past — but when I learned of her death I was stricken, so much so that when Mala looked up from her knitting she found me staring at the wall, the newspaper neglected in my lap, unable to speak. Mrs. Croft's was the first death I mourned in America, for hers was the first life I had admired; she had left this world at last, ancient and alone, never to return.

As for me, I have not strayed much farther. Mala and I live in a town about twenty miles from Boston, on a tree-lined street much like Mrs. Croft's, in a house we own, with a garden that saves us from buying tomatoes in summer, and room for guests. We are American citizens now, so that we can collect social security when it is time. Though we visit Calcutta every few years, and bring back more drawstring pajamas and Darjeeling tea, we have decided to grow old here. I work in a small college library. We have a son who attends Harvard University. Mala no longer drapes the end of her sari over her head, or weeps at night for her parents, but occasionally she weeps for our son. So we drive to Cambridge to visit him, or bring him home for a weekend, so that he can eat rice with us with his hands, and speak in Bengali, things we sometimes worry he will no longer do after we die.

Whenever we make that drive, I always make it a point to take Massachusetts Avenue, in spite of the traffic. I barely recognize the buildings now, but each time I am there I return instantly to those six weeks as if they were only the other day, and I slow down and point to Mrs. Croft's street, saying to my son, here was my first home in America, where I lived with a woman who was 103. "Remember?" Mala says, and smiles, amazed, as I am, that there was ever a time that we were strangers. My son always expresses his astonishment, not at Mrs. Croft's age, but at how little I paid in rent, a fact nearly as inconceivable to him as a flag on the moon was to a woman born in 1866. In my son's eyes I see the ambition that had first hurled me across the world. In a few years he will graduate and pave his way, alone and unprotected. But I remind myself that he has a father who is still living, a mother who is happy and strong. Whenever he is discouraged, I tell him that if I can survive on three continents, then there is no obstacle he can-

not conquer. While the astronauts, heroes forever, spent mere hours on the moon, I have remained in this new world for nearly thirty years. I know that my achievement is quite ordinary. I am not the only man to seek his fortune far from home, and certainly I am not the first. Still, there are times I am bewildered by each mile I have traveled, each meal I have eaten, each person I have known, each room in which I have slept. As ordinary as it all appears, there are times when it is beyond my imagination.

Jawaharlal Nehru University Library